View metadata, citation and similar papers at core.ac.uk

brought to you by CORE

provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Gohil, Vakhatsinh, 2006, "*कथाकार हरिशंकर परसाई : एक अध्ययन*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/682

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) की
उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध–प्रबन्ध

✦✦✦

कथाकार हरिशंकर परसाई : एक अध्ययन

✦✦✦

❀ प्रस्तुत कर्ता ❀
प्रा. वखतसिंह गोहिल
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग एवं कार्यकारी प्राचार्य
श्री आर्टस एवं कोमर्स कोलेज
मालिया हाटीना

✦✦✦

❀ निर्देशक ❀
डॉ. भोपालसिंह राठौर
प्राचार्य
श्री वी. एम. मेहता म्युनिसिपल कोलेज
जामनगर

वर्ष – २००६

प्रथम – अध्याय
हरिशंकर परसाई व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- विषय प्रवेश
- जन्म, जाति एवं परिवार
- शिक्षा एवं व्यवसाय
- जीवन–संघर्ष तथा दुर्बलपक्ष
- अंतिम समय
- परसाईजी का व्यक्तित्व
- संपादक, लेखक एवं व्यंग्यकार
- उपाधियाँ एवं पुरस्कार
- सृजन के प्रेरणास्त्रोत एवं प्रभाव
- परसाईजी का कृतित्व
    - परसाई रचनावली
    - परसाईजी की अन्य रचनाएँ
- परसाईजी का कथा साहित्य
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

प्रथम – अध्याय
हरिशंकर परसाई व्यक्तित्व एवं कृतित्व

❀ विषय प्रवेश

आधुनिक भारतीय साहित्य के इतिहास में श्री हरिशंकर परसाई का नाम एक ऐसा महत्त्वपूर्ण नाम है कि जिसे जाने बिना हम स्वातंत्र्योत्तर भारत को नहीं जान सकते । श्री परसाईजी ने हिन्दी साहित्य में 'व्यंग्य' नामक स्वतंत्र विधा का सूत्रपात किया है । परसाईजी जहाँ एक और जागरूक, सजग और सचेत व्यंग्यकार हैं, वहीं दूसरी और स्वातंत्र्योत्तर कथा–साहित्य के प्रतिभा संपन्न लेखक भी है । परसाइजी एक ऐसे कथाकार है, जो केवल मनोरंजन हेतु साहित्य नहीं लिखते, अपितु उनकी एक एक कथन साद्देश्य एवं सार्थकता से पूर्ण है । व्यंग्य के माध्यम से परसाईजी ने उच्च कोटि का साहित्य सृजन किया है । उनका साहित्य परिवर्तित समाज की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण है । उनकी संवेदना एवं शिल्प के कारण परसाईजी ने हिन्दी कथा साहित्य में अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है । ऐसे मूर्धन्य साहित्यकार का जीवन अनेक चढाव – उतार से भरा हुआ है और उनका साहित्य आधुनिक युग की अमूल्य निधि है ।

❀ जन्म :

परसाईजी का जन्म मध्यप्रदेश में होशंगाबाद जिले के जमानी नामक गाँव (इटारसी के पास) में २२ अगस्त, सन् १६२२ में हुआ था । हालाकि परसाईजी के जन्म की इस तारीख को लेकर कुछ विवाद भी है, क्योंकि अन्य विद्वान इनका जन्म २२ अगस्त, सन् १६२४ बताते है । स्वयं परसाईजी ने अपनी अंतिम पुस्तक 'ऐसा भी सोचा जाता है' में अपने जन्म के सम्बन्ध में लिखा है, – ''मेरी जन्म तारीख २२ अगस्त १६२४ छपती है, यह भूल है ।

तारीख ठीक है, सन गलत है । सही सन् १९२२ है । मुजे पता नहीं, मैट्रिक के सर्टिफिकेट में क्या है ? मेरे पिताने स्कुल में मेरी उम्र दो साल कम लिखापाई थी, इस कारण कि सरकारी नोकरी के लिये मैं जल्दी 'ओव्हर एज' नहीं हो जाऊ" ।[१]

इस बात का समर्थन श्री कांतिकुमार जैन भी करते है, जो उनके मित्र एवं छोटेभाई के समान है । वे लिखते है – "२२ अगस्त को ठीक है, पर यह सन गलत है । प्रारंभ में परसाईजी ने अपने जन्म के सन के १९२४ होने का प्रतिवाद नहीं किया पर जब शासकीय सेवा से उन्होंनें त्यागपत्र दे दिया तो इस बात का कोई महत्त्व नहीं रह गया कि उनका जन्म सन १९२२ का है या १९२४ का । उसका महत्त्व उनके संभावित सेवा निवृत होने के समय की उम्र के कारण था । जब उन्हें सेवा निवृत होना ही नहीं है, तो वे पिताजी के स्कूल में नाम लिखवाते समय प्रदर्शित भविष्यवादी वात्सल्य का बचाव क्यों करे ? क्यों न अपनी वास्तविक जन्मतिथि बताकर सत्यवादी होने की वाहवाही लूटे ?"[२]

उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि परसाईजी का जन्मवर्ष १९२४ नहीं, बलिक १९२२ हैं ।

❀ जाति एवं उपनाम

परसाईजी गंगाबीबी ब्राह्मण जाति के थे । इनके पिता का नाम झूमकलाल परसाई था और माता का नाम चंपाबाई था । 'गंगाबीबी ब्राह्मण' जाति गंगाबीबी नामक एक ब्राह्मण स्त्री से मानी जाती है । गंगाबाई नामक एक ब्राह्मण विधवा एक अंग्रेज कलेक्टर से विवाह करकें गंगाबीबी बन जाती है । बाद में उसकी जो संताने हुई, उन सबका विवाह भारतीय ब्राह्मण जाति में हुआ और उनका जो वंश आगे बढा, वह गंगाबीबी ब्राह्मण के नाम से जाना जाता है । परसाईजी इसी वंश के है । इस बात की पुष्टि श्री कांतिकुमार जैन की पुस्तक 'तुम्हारा परसाई' में पायी जाती है । उन्होंने एक

जगह लिखा है, – ''गंगाबीबी ब्राह्मण बस नर्मदा की उपत्यका में ही पाये जाते हैं, वह भी होशंगाबाद, हरदा जिलो में । वे जुझौतिया भी होते, सनाढय भी, नार्मदीय भी । असल में गंगाबीबी ब्राह्मणों का संबंध गंगा से नहीं, गंगाबीबी से है ।''[३]

आगे चलकर वे एक जगह लिखते है, ''हरिशंकर परसाई की रगो में गंगाबीबी का खून था, फिर वह नर्मदा के तट का था ।''[४]

इस प्रकार परसाईजी गंगाबीबी ब्राह्मण जाति के थे, पर ब्राह्मण होते हुए भी उनके परिवार में कोई पौराहित्य नहीं करता था । पलाश के पेड को बुंदेली में कहीं कहीं परसा कहते है । कहा जाता है कि इसी परसा से परसाईजी एवं उनके पूर्वजो को 'परसाई' नाम मिला है । इसका संकेत श्री कांतिकुमार जैन इस प्रकार देते है – ''लगता है जब परसाई के पूर्वज जमानी आये होंगे, तो उन्होंने जिस भूमि पर अपना मकान बनाया होगा, वह गाँव के सीमान्त पर होगी, जहाँ से पलाशवन का प्रारंभ होता होगा । इसलिए गाँववालो ने उन्हें नाम दिया परसावारे – धीरे धीरे परसाई ।''[५]

परसाईजी के पिता कोयले की ठेकेदारी करते थे । वे जंगल के पेड काटने का ठेका लेते और कटे पेडों का कोयला बनवाते । इस प्रकार परसाईजी का जन्म एक श्रमजीवी व्यक्ति के घर में हुआ था ।

❀ परिवार

एक सामान्य मध्यवर्गीय कुटुम्ब में जन्मे परसाईजी के परिवार में उनके अलावा एक भाई गौरीशंकर एवं तीन बहने रुक्मणि, सीता और मोहिनी, माता–पिता, चाचा श्यामलाल और बुआ बटेश्वरी इत्यादि थे । परसाईजी सभी भाई–बहनो में बड़े थे । हरिशंकर परसाई जब ४ साल के थे, तब सन १९२६ में वे नर्मदा की बाढ में डूबते–डूबते बच गये थे । तब उनकी माता ने उन्हे बचा लिया था । परसाईजी के पिता तो दिनभर जंगल में रहते थे, इसी कारण सभी भाई–बहन की देखभाल एवं परवरिश माता के हाथो में होती

थी । लेकिन दुर्भाग्यवश जब परसाईजी संभवतः आठवी कक्षा में थे, सन १९३६ या ३७ का समय था, तब होशंगाबाद जिले में प्लेग की बीमारी फैल गयी, उनके कस्बे में भी प्लेग आ पड़ी । इसी प्लेग में उनकी माता चल बसी । पाँच बच्चों का भार अकेले पिता पर आने से वे टूट–से गये । स्वयं परसाईजी ने लिखा है – "वह टूट गये थे । वह इसके बाद भी ५–६ साल जिए, लेकिन लगातार बीमार, हताश, निष्क्रिय और अपने से ही डरते हुए । धंधा ठप्प । जमा–पूँजी खाने लगे ।"[६]

परिवार में हरिशंकर बड़े होने के कारण घर की सभी जिम्मेदारियाँ उन पर आ गयी । बीमारी की हालत में भी उनके पिताजी ने एक बहन का विवाह सम्पन्न कर दिया था । बाद में बड़े भाई के नाते से परसाईजी ने दोनों बहनो और एक छोटे भाई के विवाह इत्यादि के कर्तव्य निभाये । आगे चलकर एक विधवा बहन एवं उनके परिवार की जिम्मेदारियाँ उठाकर भांजे, भांजियाँ आदि सभी के प्रति अपने कर्तव्य को उन्होंने पूर्ण किया । जीवन की इसी जिम्मेदारियों के बोझ को वहन करने हेतु वे स्वयं आजीवन अविवाहित रहे ।

❀ शिक्षा

परसाईजी की प्रारंभिक शिक्षा कहाँ और कब शुरू हुई, इसके सन्दर्भ में विद्वानों के कथन में मतभेद है । परसाईजी के अंतरंग मित्र श्री रामशंकर मिश्र का कहना है "रैहटगाँव में प्रायमरी स्कूल था । परसाई प्रायमरी स्कूल में पढ़ने की उम्र में आ गये थे । यह शायद १९३१ का वर्ष था ।"[७] अर्थात् इनके कथनानुसार सन १९३१ में परसाईजी ने रैहटगाँव से शिक्षा का प्रारंभ किया । जब कि श्री कांतिकुमार जैन का कहना है कि "पिता झूमकलाल परसाई अपनी उँगली पकड़ाकर हरी को टिमरनी की प्राथमिक शाला में नाम लिखवाने पहुँचे है । बड़े परसाई (झूमकलाल) दो साल पहिले रहटगाँव से टिमरनी आ गए थे ।"[८]

कांतिकुमारजी परसाईजी की प्रारंभिक शिक्षा का समय १९२६ बताते है । इस तरह इन दोनों विद्वानों के मंतव्य में मतभेद है । इस सन्दर्भ में संभवतः यह बात सत्य हो सकती है कि परसाईजी ने रहटगाँव से प्रारंभिक शिक्षा का प्रारंभ किया हो, क्योंकि इनके पिता का व्यवसाय कोयले की ठेकेदारी का था, अतः इस व्यवसाय में अनेक जगह घुमना पड़ता है । इसी कारण वे जमानी से क्रमशः खिडकिया, मरदानपुर और फिर रेहटगाँव एवं बाद में टिमरनी आये होंगे । इनमें रेहटगाँव में प्रायमरी स्कूल था । अतः हो सकता है कि तब परसाईजी की शिक्षा वहाँ से ही प्रारंभ हुई हो ।

एक बात यह भी ध्यानाकर्षक है कि कांतिकुमारजी परसाईजी का जन्म समय १९२२ बताते है, स्वयं परसाईजी का भी यही कहना है कि उनका जन्म सन् १९२२ में हुआ है, पर उनके पिता ने उनका जन्म समय स्कूल में १९२४ लिखवाया है । तब सन १९२६ में स्कूल में दाखिला लेनेवाला लड़का हरिशंकर केवल दो वर्ष का ही हो, यह अतिश्योक्तिपूर्ण लगता है । इसी कारण १९२६ में उनकी शिक्षा का प्रारंभ होना थोडा असंदिग्ध प्रतीत होता है । फिर परसाईजी प्लेग की बीमारी का समय लगभग १९३६ का ३७ बताते है और तब अपने को शायद आठवी कक्षा का छात्र बतलाते है । परिणामतः उपर्युक्त सभी बाते एक दूसरे से विरुद्ध दृष्टिगोचर होती है । फलतः इन सब कारणों से उनकी शिक्षा का सही प्रारंभ समय बताना कठीन है, फिर भी उपर्युक्त विधानो के आधार पर संभव है कि उनकी प्रारंभिक शिक्षा का समय शायद सन् १९२८ या '२९ रहा हों । हालाकि यह कहना भी सम्पूर्ण सत्य ही है ऐसा नहीं माना जा सकता । श्रीरामकुमार मिश्र के अनुसार – ''रेहटगाँव एक बड़ा कसबा था । होशंगाबाद जिले की हरदा तहसील में बसा हुआ एक बड़ा गाँव, जहाँ हिन्दी की सातवीं कक्षा तक का सकूल था ।[९] परसाईजी के पिता रैहटगाँव में पहले बसे हुए थे, बाद में टिमरनी गये और रैहटगांव की प्रायमरी स्कूल में हिन्दी की सातवी कक्षा तक का शिक्षण था । अतः हो

सकता है कि परसाईजी ने अपनी प्रायमरी स्कूल की शिक्षा वहीं पर समाप्त की हो ।

प्राइमरी स्कूल का शिक्षण पूर्ण करके परसाईजी ने टिमरनी में हाईस्कूल का शिक्षण लिया । फिर उन्हेंाने नागपुर बोर्ड से मैट्रिक की परीक्षा उतीर्ण की । परसाईजी ने मैट्रिक की परीक्षा कब उत्तीर्ण की, इस विषय में भी उपर्युक्त दोनों विद्वानो के कथनो में मतभेद है । रामशंकरजी सन् १९३९ बताते है, जबकि कांतिकमारजी सन् १९४० बताते है । क्रमशः दोनों विद्वानों के मंतव्य यहाँ प्रस्तुत है । ''यह १९३९ की बात थी और इसी वर्ष परसाई ने मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी ।''[१०] ''नागरपुर बोर्ड का मैट्रिक का परीक्षाफल आ गया है । हरिशंकर मेट्रिक पास हो गया है । द्वितीय क्षेणी में । सन् ४० में ।''[११] यदि प्लेग का समय सन् १९३६ माना जाय, तो रामशंकरजी का कथन सत्य है और यदि प्लेग का समय सन् १९३७ माना जाय, तो कांतिकुमारजी का कहना सत्य प्रतीत होता है । अतः इस मतभेद के विषय में अंतिम रूप से कहना कठीन है ।

मैट्रिक उत्तीर्ण करने के बाद परसाईजी के जीवन में अनेक संघर्ष एवं कठिन परिस्थितियाँ सामने आती है । इन सब संघर्ष एवं परिस्थितियों से लड़ते हुए उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. किया । इसके अतिरिक्त इन्होंने जबलपुर में स्पेन्स ट्रेनिंग कोलेज में 'डिप्लोमा इन टीचिंग' का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया । इसके पश्चात उन्होंने अपनी समग्र शक्ति साहित्य को समर्पित कर दी ।

❀ व्यवसाय

परसाईजी मैट्रिक की परीक्षा में उतीर्ण हो गये । आगे पढ़ना उनके लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितना नोकरी करना । परिवार की जिम्मेदारियाँ उन पर थी, पिताजी बीमार थे, उनके मैट्रिक होने की आशा लगाये सभी बैठे थे । इसी कारण मैट्रिक होने के बाद परसाईजी जगह जगह नोकरी के लिए

प्रयत्न करते है । पहली नोकरी जंगल विभाग में सन १६४० के सितम्बर में मिली । इटारसी के पास 'ताकू' नामक स्थल पर । यहाँ पर परसाईजी जमादार के पद पर थे । यह नोकरी उन्हें छः मास के लिए ही मिली थी । जंगल विभाग की नोकरी छोडने के बाद परसाईजी को अपने गुरु श्री बग्गासाहब की कृपा से 'न्यू हाईस्कूल खंडवा' में अध्यापक की नोकरी मिल गयी । सन् १६४१ में । परसाईजी ने यह नोकरी सात महीने तक की । फिर इसी स्कूल से उनको स्पेन्स ट्रेनिंग कोलेज में 'डिप्लोमा इन टीचिंग' करने के लिए जबलपुर भेजा गया । अतः परसाईजी अध्यापन का प्रशिक्षण लेने हेतु जबलपुर आते है ।

परसाईजी जबलपुर कब आये ? इस विषय में कुछ विवाद है । रामशंकर मिश्र एवं कांतिकुमार जैन के मतानुसार परसाईजी सन् १६४२ में जबलपुर आये, क्योंकि इसी वर्ष उनको ट्रेनिंग कोलेज में जाना था, जबकि परसाईजी के अन्य अंतरंग मित्र श्री हनुमान प्रसाद वर्मा का कथन है – "मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब १६४४ या १६४५ के करीब जबलपुर में परसाई आये, तो एक कस्बाई या ग्रामिण व्यक्तित्व लेकर आये ।"[१२] इस विषय में श्री मनोहर देवलिया लिखते है – "दो वर्ष (१६४१–४३) जबलपुर के स्पेन्स ट्रेनिंग कोलेज में शिक्षण कार्य का अध्ययन.... ।"[१३] अर्थात् देवलियाजी के मतानुसार परसाईजी १६४१ में जबलपुर आये और हनुमान प्रसादजी का कहना है कि परसाईजी १६४४ या '४५ में जबलपुर आये । जुलाई १६४२ में ट्रेनिंग कोलेज खुलते थे । इस बात को आधार बनाकर देखे, तो हो सकता है कि परसाईजी संभवतः सन् १६४२ में ही जबलपुर आये हो ।

जबलपुर में 'डिप्लोमा इन टीचिंग' का प्रशिक्षण लेने के बाद परसाईजी को ट्रेनिंग कोलेज के प्राचार्य श्री वाई. जी. रानाडेसाहब ने जबलपुर में ही मोडल हाईस्कूल में अध्यापक की नोकरी पर सन् १६४३ में लगा दिया । यह नोकरी परसाईजी ने १६५२ तक की । बाद में इस्तीफा दे दिया और फिर सन् १६५३ से सन १६५७ तक वे क्रमशः 'नवीन विद्या भवन' 'डी.एन.

हाईस्कूल' और 'डी.एन. कोलेज' में अध्यापक के रूप में कार्य करते रहे । सन् १९५७ से आजीवन लेखन कार्य करते रहे और स्वयं को साहित्य की सेवा में समर्पित कर दिया ।

❀ जीवन संघर्ष

परसाईजी का संपूर्ण जीवन संघर्ष से भरा हुआ था । स्वयं जब किशोरावस्था में थे, तब प्लेग में उनकी माता की मृत्यु हो गयी । सभी भाई–बहन में परसाईजी बड़े थे । अतः सबकी जिम्मेदारियाँ उन पर आ गयी । वे समय से पहले परिपक्व हो गये । फिर उनके पिताजी का बिगड़ता हुआ स्वास्थ्य एवं असाध्य बीमारी की परिस्थिति में भी पढ़ाई का कार्य करना और जब वे मैट्रिक उत्तीर्ण करके नोकरी में थोडे बहुत स्थिर हुए ही थे कि सन् १९४३ में पिताजी का साथ भी सदा के लिए छूट गया । एक बहन रुक्मनी का विवाह पिताजी ने किसी तरह से कर दिया था । अभी भी परसाईजी पर दो बहन और एक छोटे भाई की जिम्मेदारियाँ थी । परसाईजी ने दुःख एवं अनिश्चय की ऐसी गंभीर परिस्थिति में भी जीना सीखा और अपने कर्तव्य का पालन किया ।

परसाईजी ने शुरूआत में जंगल की नोकरी करते समय जो परेशानियाँ उठायी थी, उसका वर्णन वे इस प्रकार करते है – ''जंगल में सरकारी टपरे में रहता । इँटे रखकर उन पर पटिए जमाकर बिस्तर लगाता, नीचे जमीन चूहोंने पोली कर दी थी । रात–भर नीचे चूहें धमाचौकडी करते रहते और में सोता रहता । कभी चूहे ऊपर आ जाते तो नींद टूट जाती, पर में फिर सो जाता । छह महीने धमाचौकडी करते चूहों पर मैं सोया ।''[१४]

ऐसे संघर्ष के दिन व्यतीत करते हुए अत्यन्त विकट आर्थिक परिस्थिति में भी उन्होंने अपनी दोनों बहनो सीता एवं मोहिनी तथा भाई गौरीशंकर तीनों के विवाह की जिम्मेदारी को पूर्ण किया । दुःख एवं संघर्ष इतने पर भी रूके नहीं और दुर्भाग्यवश रुक्मिनी बहन के पति मिश्रीलाल दूबे और सीताबहन के

पति देवकीनंदन का निधन हो जाता है । परसाईजी ने रुक्मनी बहन के परिवार का भरण–पोषण करने का कर्तव्य–निभाया और सीताबहन और उनके चार बच्चे तीन भांजे एवं एक भांजी को वे जबलपुर अपने साथ रहने के लिए ले आये । बहनें, भांजे, भांजियाँ, छोटाभाई एवं उसका परिवार – सभी स्नेहीजनों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने हेतु परसाईजी ने अपने जीवन के सुख, स्वप्न, इच्छाएँ इत्यादि सब कुछ समर्पित कर दिया । यहाँ तक कि स्वयं आजीवन अविवाहित रहे ।

जीवन में अपनी नियति से कम दुःख मिले थे, जो बाहर की दुनिया में बसनेवाले मनुष्यों ने भी उनको नहीं छोडा । सन् १९७३ में आर.एस.एस. के कुछ लोगों ने परसाईजी के घर में घुसकर हमला किया और उनको पीटा, इस घटना से परसाईजी के जीवन में बहुत निराशा छा जाती है । वे भीतर ही भीतर टूटने लगते है । इस सदमें से थोडे बाहर ही निकले थे कि सन् १९७६ में बाथरूप में फिसल जाने से उनके पेर में फेक्चर हो जाता है और पैर में थोडी खोट रह जाती है । इस परिस्थिति में उन्होंने शायद प्रंद्रह वर्ष से भी अधिक समय बिस्तर में व्यतीत किया था । शारीरिक कमजोरी होते हुए भी परसाईजी ने सागर विश्वविद्यालय में स्थापित 'मुक्तिबोध पीठ' का अध्यक्षपद स्वीकार किया और वे उसी प्रकार संघर्षो से लड़ते हुए सागर पहुँचे । लेकिन नियति ने यहाँ भी उनको चैन से रहने नहीं दिया । केवल सात महीने रह पाये, क्योंकि उनको 'प्लूरिसी' नामक बीमारी हो जाने के कारण भोपाल हमीदिया अस्पताल में कुछ समय व्यतीत करना पड़ता है । बाद में स्वास्थ्य ठीक हो जाने पर उन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया । आगे चलकर आँख में मोतिया बिन्दु हो जाने से ऑपरेशन करवाना पड़ता है । लेकिन यहाँ भी दुर्भाग्य के कारण आँख में इन्फेक्शन हो जाता है और उनकी एक आँख सदा के लिए साथ छोड जाती है ।

सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक एवं शारीरिक परिस्थितियाँ इतनी विकट एवं यातनापूर्ण होते हुए भी परसाईजी ने अपने भांजे राजकुमार, विद्याभुषण,

प्रकाशचन्द्र, भांजी – साधना एवं अपने भाई के परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व को बड़ी ही निष्ठा से निभाया । आज ये सभी अपने अपने जीवन में सुख एवं शांति से है । परसाईजी ने कभी भी अपने कर्तव्य से मुँह नहीं मोडा, सदैव कर्तव्य को पूर्ण किया है । इस विषय में श्री रामशंकर मिश्र कहते है – ''जिन मित्रों का उनके पास तीस–चालीस साल से उठना बैठना था, वे भी कहते है कि परसाईजी किसी भी दायित्व से विमुख नहीं रहे । चाहे परिवार का दायित्व हो और चाहे एक समाजधर्मी लेखक होने का दायित्व ।''[१५]

अपने जीवन में आये संघर्ष एवं संकटों के विषय में परसाईजी का दृष्टिकोण देखिए – ''गर्दिश कभी थी, अब नहीं है, आगे नहीं होगी यह गलत है । गर्दिश का सिलसिला बदस्तुर है, मै निहायत बेचैन मन का संवेदनशील आदमी हूँ । मूझे चैन कभी मिल ही नहीं सकता, इसलिए गर्दिश नियति है ।''[१६] गर्दिश रूपी इस नियति का परसाईजी यह कहते हुए सामना करते है कि ''मेंने तय किया – परसाई, डरो किसी से मत । डरे कि मरे । सीने को ऊपर ऊपर कड़ा कर लो । भीतर तुम जो भी । जिम्मेदारी को गेर–जिम्मेदारी के साथ निभाओ । जिम्मेदारी को अगर जिम्मेदारी के साथ निभाओगे तो नष्ट हो जाओगे और अपने से बाहर निकलकर सब में मिल जाने से व्यक्तित्व और विशिष्टता की हानि नहीं होती । लाभ ही होता है । अपने से बाहर निकलो । देखो, समझो और हसो ।''[१७]

अपने संघर्ष के प्रारंभिक दिनों में परसाईजी आर्थिक दृष्टि से इतने पीड़ित थे कि नोकरी की तलाश में जाने के लिए उनके पास पैसे भी नहीं होते और वे अधिकतर बिना टिकट ही सफर करते । जब पकडे जाने का डर रहता तब अंग्रेजी बोलने लगते । अंग्रेजी की कृपा से वे छुट भी जाते थे । ऐसे ही जीवन में उन्हें मित्रों से उधार पैसे भी बहुत माँगने पड़े । परिवार में पैसे की कमी इतनी अधिक रहती कि परसाईजी को मित्रो का साथ लेना पड़ता था । जीवन–संघर्ष से लड़ने की प्रेरणा परसाईजी को अपनी बुआ

से मिली थी । उनकी बुआ का एक ही मंत्र था – कोई चिंता नहीं । घर में कुछ हो या न हो, कैसी भी स्थिति हो, वे सदा यही कहती – कोई चिंता नहीं । उनका यही जीवनमंत्र परसाईजी ने अपनाया और उसी प्रकार संघर्षो से सामना किया । वे कहते भी है कि – ‘‘उसका यह वाक्य मेरे लिए ताकत बना – ‘कोई चिन्ता नहीं’ ।’’[१८] बुआ से जीवनमंत्र पाकर अपनी लेखनी को आधार बनाकर परसाईजी ने अपने गर्दिश से भरे जीवन को अत्यन्त बेफिक्री से बिताया । यही कहा कि जो होना होगा होगा, क्या होगा ? ठीक ही होगा ।

परसाईजी के जीवन के विषय में श्री मनोहर देवलिया का यह कहना कितना सार्थक प्रतीत होता है– ‘‘परसाई को उनके माता–पिता तथा परिवेश ने एक आजाद नागरिक की तरह तैयार किया था । साफ–साफ देखना, कहना और सबके साथ भाईचारा निभाना, श्रम की शक्ति से बड़ी किसी को न समझना, किसी को न बड़ा समझना न छोटा और भविष्य की चिंता में घुट–घुटकर न मरना ।’’[१९]

दुःख, पीडा, संघर्ष, गर्दिश परसाईजी के जीवन के पर्याय रहे है ।

❀ जीवन का दुर्बल पक्ष –

जीवन में आये हुए संघर्षो का हिंमत से सामना करते हुए परसाईजी कहीं टूट भी गये है, वहाँ पर उनके व्यक्तित्व का दुर्बलपक्ष उभरकर सामने आ जाता है । परसाईजी को एक–दो मित्रो के साथ रहते हुए शराब पीने की आदत पड़ जाती है । यह आदत उनके व्यक्तित्व को कितना कमजोर बना देती है, उसका उल्लेख उन्हीं के परम मित्र श्री मायाराम सुरजन इस प्रकार करते है – ‘‘यों ऊपरी तोर पर परसाई बहुत संतुलित और स्वस्थ दिखते है, लेकिन भीतर ही भीतर कोई कचोट उन्हे भेद रही है, यह कम लोग ही समझ पाये है । दरअसल वे अपनी बात किसी से कहते नहीं है और उनके अत्यन्त निकटस्थ मित्र भी नहीं जानते कि वे अन्दर ही अन्दर किस पीडा के शिकार हो रहे है । बहिनो और उनके परिवार पालने के लिए उन्होंने विवाह नहीं

किया । कमजोरी के ऐसे ही किसी क्षण में अपना गम गलत करने के लिए उन्होंने शराब पीना शुरू कर दिया । पहले वे दूसरों के खर्च पर शराब लिया करते थे, वह भी कभी कभार । पर फिर शराब पीना नियमित हो गया । मित्रों ने किनाराकशी की तो अपने पैसों से शुरू कर दिया । जब खुद की हालत खस्ता होने लगी तो 'देसी' पर उतर आये ।''[२०]

आर.एस.एस. के लोगो ने जब परसाईजी को पीटा, तब उनको बहुत आघात पहुँचा और उनका शराब पीना अधिक बढ गया । आगे चलकर उनकी हालत इस आदत के कारण इतनी खराब हो जाती है कि लीवर की तकलीफ और 'सिरोसिस' होने का भय बना । मित्रो ने उनका विवाह कर देने का निश्चय किया, लेकिन परसाईजी ने इस सुझाव को द्रढता से अस्वीकार कर दिया । शराब की आदत परसाईजी को इतनी लग जाती है कि वे दिनरात शराब पीने लगते है और इसी दुर्बलता के कारण वे सन् १९७६ में बाथरूम में गिर जाते है और अपनी टाँग की बलि दे बैठते है और स्वयं को बिस्तर का साथी बना देते है । उस समय शराब के कारण परसाईजी अपने साहित्य में भी कोई नवीनता नहीं ला पा रहे थे ।

परसाईजी के जीवन में शराब का जो दुष्प्रभाव पड़ा है, इसके संदर्भ में उनके मित्र डॉ. रामशंकर मिश्र ने इस प्रकार लिखा है – ''जीवन की इस लम्बी यात्रा में उनके सत्रह – अठारह ऐसे वर्ष भी शामिल हैं, जब वे पैर टूटने के कारण बिस्तर पर पड़े रहे । जुलाई १९७६ में उनका पैर टूटा । सन् १९७२ से लेकर जुलाई १९७६ अर्थात् टाँग के टूटने तक का समय, परसाई की रचना धर्मिता का काल अ–प्रश्न, अ–उत्तर और अ–संयम का काल रहा है । एक–दो मित्रो ने शराब पीने की आदत डाल दी । परसाई तो हर अतिरंजना का अंतिम छोर पाने का प्रयत्न करते रहते थे । पीने के इसी अतिरेक ने उनकी टाँग का बलिदान ले लिया । घरवाले दुःखी हो गये । मित्र दुःखी हुए । केवल एक मित्र कों छोडकर जिसे वे अपना छोटाभाई मानते थे । टाँग के टूटने का समाचार मिलने पर उसके मुख से निकला 'बहुत

अच्छा हुआ टाँग टूट गई । चलने में असमर्थता आ जायगी । अब बाहर जा नहीं पायेंगे । खत्म होने की कगार पर खडा, उनका जीवन अब बच गया ।' इस पीडा में भी इस छोटे मित्रने सुख का अनुभव किया और शुभता के संकेत देखे ।"[२१] परसाईजी के वह छोटे मित्र श्री मायाराम सुरजन है, उनका इस प्रकार कहना भविष्य में सत्य सिद्ध होता है । टाँग के टूटने के बाद परसाईजी ने कभी शराब को हाथ नहीं लगाया और जीवन के अंत तक शराब से दूर रहे । श्री मायाराम सुरजन परसाईजी पर लिखे अपने एक लेख में इस प्रकार कहते है, "अब परसाई का जबलपुर से बाहर निकलना नहीं होता । जिस दिन मुझे उनके पैर टूटने की खबर मिली, उस क्षण सचमुच ही में दुःखी था । लेकिन तब ही मैंने उस आघात को आभार माना कि शायद परसाई अपने पुराने फार्म में आ जायें । उनके वर्तमान लेखन में ताजगी है, क्या वह मेरे इस विश्वास की साक्षी नहीं है ?"[२२]

यह बात शत-प्रतिशत सत्य है कि परसाईजी के शराब छोड देने के बाद उनके लेखन में प्रवर्तमान युग की परिस्थितियों पर जो कलम चली है, वह आज के युग का प्रतिबिम्ब ही है, जिसे जानकर ही आज के युग की पहचान मिल पाती है । परसाईजी ने अपने इरादों की सच्चाई एवं अपनी हिंमत की बुलंदियों से अपने व्यक्तित्व के इस दुर्बल पक्ष को सदा के लिए मिटा दिया था, क्योंकि वे खुद भी इस दुर्बलता के कारण दुःखी थे और पश्चाताप के रूप में उन्होंने स्वयं यही कहा था कि – "मेरे जीवन का बहुत-सा समय पीने में और बीमारी में जाया हो गया ।"[२३]

❀ अविवाहित जीवन

परसाईजी आजीवन अविवाहित रहे । वे अपने भाई, बहनों, आदि सबके परिवार की जिम्मेदारियाँ उठाने के लिए, उन सबके सुख के लिए स्वयं सुख से दूर रहे और अपना संपूर्ण जीवन सबकी सेवा करने में बिता दिया । कभी अपने जीवन के विषय में कुछ भी सोचा नहीं परसाईजी के जीवन में भले ही

कोई स्त्री आ नहीं पायी, पर समाज में एक स्त्री ऐसी भी थी, जो परसाईजी को पति–रूप में पाना चाहती थी । उनका नाम सुश्री शकुन्तला तिवारी है । आगे जहाँ उल्लेख किया है कि परसाईजी की शराब छुडवाने के लिए उनके सभी मित्र उनका विवाह करवाने का निश्चय करते है । मायाराम सुरजनने अपने परसाईजी सम्बन्धित लेख 'विषवमनधर्मी रचनाकार' ('आँखन देखी') में जिनका उल्लेख किया है, वे सुश्री शकुन्तला तिवारी ही है । यह बात और है कि परसाईजी विवाह करने के लिए तैयार नहीं हुए, पर शकुन्तलाजी ने भी एक तपस्विनी की भाँति परसाईजी के लिए अपने जीवन का तीन दशक से भी ज्यादा समय इंतजार एवं स्वप्न को पूर्ण होने की आशा में बिताया । इस विषय में परसाईजी के एक मित्र श्री कामरेड महेन्द्र बाजपेयी अपने एक लेख में कहते है – ''परसाईजी अदम्य जिजीविषा रखते थे और द्रढ इच्छाशक्ति के धनी थे । इस इच्छाशक्ति का एक रूप हमे इस मायने में भी देखने को मिलता है कि स्वाभाविक तोर पर उनकी तरफ एक आकर्षण शकुन्तला तिवारीजी का बढा जो शिक्षिका है और अपने मन में परसाईजी के प्रति एक लम्बे अरसे से प्यार पाले हुई थी, लेकिन परसाईजी का पूरा जीवन लेखन के अलावा अपनी विधवा बहन और उनके बच्चों के लालन–पोषण को समर्पित था । इसीलिए उन्होंने स्वयं के लिए कभी कोई आरामदेह जीवन की कल्पना नहीं की । संघर्ष का और अभाव का जीवन वे एक लम्बे अरसे तक जीते रहे ।''[२४]

शकुन्तलाजी के परसाईजी एवं उनकी बहन सीताजी के साथ बड़े ही आत्मीय सम्बन्ध थे । वे अक्सर उनके घर आती और उन सबका हाल पूछती, बाते करती । लेकिन परसाईजी के साथ उनके ये आत्मीय सम्बन्ध कभी वैवाहिक जीवन में बदल न सके । जब सन् १९७६ में परसाईजी दुर्घटनाग्रस्त हो गये और महीनो अस्पताल में भर्ती रहे । उस समय भी शकुन्तलाजी ने एक बार फिर परसाईजी को कहा कि 'अब जो आपकी स्थिति है, आप चलने–फिरने में असमर्थ है, प्रणय सम्बन्ध में या दाम्पत्य जीवन में तो हम

नहीं बंध सके, लेकिन इस हालत में यह मोका हमे दीजिये कि हम आपके सुख दुःख के भागी बन सके, आपकी सेवा कर सकें, आपसे प्रेरणा ले सके ।' शकुन्तलाजी की इस बात का उत्तर परसाईजी इस प्रकार देते है कि 'जब मैं शारीरिक रूप से पूरी तरह सक्षम था, चल फिर सकता था, सारे कार्य कर सकता था, तब मैं यह नहीं कर सका, तो अब जब कि मैं आंशिक तौर से विकलांग हूँ, तब यह सोचना तो बहुत दूर की बात होगी । यह हमारे सोच के परे है कि मैं किसी के जीवन को, जो एक सुखमय जीवन हो सकता हो, उसे इस तरह प्रभावित करुँ कि अपने साथ एक व्यक्ति को बाँध लूं । यह मेरे जैसे व्यक्ति के लिये संभव नहीं है और में नहीं करुँगा । तो जिस तरह के आत्मीय सम्बन्ध हमारे और आपके बीच बने रहे है, यह सम्बन्ध बने रहे, इसी की कामना आप भी करिये और में भी करता हूँ ।'

इस बात से परसाईजी के जीवन का यह उज्ज्वल पक्ष और ज्यादा उभरकर सामने आता है कि उनका सम्पूर्ण जीवन बेदाग रहा है और कही उनकी अनुभूति किसी के बारे में पैदा भी हुई, तो वे उस बिन्दु तक नहीं पहुँची कि प्रणय सम्बन्ध स्थापित हो सके या दाम्पत्यजीवन की वे कल्पना करे अथवा किसी किस्म की लघुता के शिकार हो । विवाह का प्रस्ताव रखनेवाले अपने मित्र मायाराम सुरजन को भी परसाईजी इस प्रकार स्पष्ट उत्तर देते हैं, ''यार तुम मुझको इतना बेवकुफ मत समझो कि तुम्हारी चिकनी चुपड़ी में फंस जाऊँगा, यह भी तो हो सकता है कि एक अच्छी खाती-कमाती लड़की का जीवन और दुःखी हो जाये ।''[२५]

ये सारी बाते अंततः यही सिद्ध करती है कि परसाईजी भले ही आजीवन अविवाहित रहे, अपितु उनका जीवन एक संघर्षपूर्ण एवं दृढ इच्छाशक्ति के जीवन के साथ ही साथ एक पवित्र और उज्जवल जीवन रहा है ।

❀ अंतिम समय

हिन्दी साहित्य के अद्वितीय व्यंग्यकार जीवन में अनगिनत संघर्ष एवं दुःखो को झेलनेवाले मूर्धन्य व्यक्ति, वैज्ञानिक चिंतन एवं ऐतिहासिक समझ से परिपूर्ण विस्तृत साहित्य की रचना करनेवाले रचनाकार, आधुनिक–युग के कबीर के समान श्री हरिशंकर परसाई १० अगस्त, सन १९९५ के रक्षाबंधन के दिन इस संसार को सदा सदा के लिए छोडकर चले गये । उस समय पृथ्वी पर अतिवृष्टि हो रही थी । नर्मदा में बाढ आयी हुई थी, चारो और पानी ही पानी बह रहा था । ऐसे प्रलय जैसे वातावरण में परसाईजी कभी न टूटनेवाली निंद्रा में सो गये थे । सूर्योदय का जब समय हुआ, तब पता चला कि भारतवर्ष का वह महामानव सदा के लिए परमात्मा से भेंट करने के लिए प्रयाण कर चुका था ।

प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व के धनी परसाईजी का अंतिम संस्कार उनकी प्रिय पतित–पावनी नर्मदामैया के तट पर पूरे राजकीय सम्मान के साथ शाम साढे चार बजे किया गया । इस प्रकार सरस्वती देवी के ये सुपुत्र सदैव के लिए इस संसार से विदा हो गए ।

❀ परसाईजी का व्यक्तित्व

संसार में अनेक व्यक्ति जन्म लेते है । हर इन्सान की अपनी अलग पहचान होती है । हर एक व्यक्ति के अलग नाम, चेहरे, विचार, मान्यता, वेश अलग अलग होते है । व्यक्ति की समस्त मानसिक शक्तियों एवं प्रवृतियों की पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रियाओं की समन्वित इकाई व्यक्तित्व है । व्यक्तित्व व्यक्ति की वह विशेषता है, जो उसे अन्य व्यक्तियों से भिन्न बताती है ।

हर एक व्यक्ति का अपना अलग अलग व्यक्तित्व होता है । व्यक्तित्व का मुख्य रूप से दो रूप होते है, (१) बाह्य व्यक्तित्व (२) आंतरिक व्यक्तित्व । इन व्यक्तित्व के दोनों रूपों के माध्यम से हम हरिशंकर परसाईजी के व्यक्तित्व को जानेंगे । जो इस प्रकार है ।

➢ बाह्य व्यक्तित्व

हर एक व्यक्ति का बाह्य व्यक्तित्व होता है । वैसे ही हरिशंकर परसाईजी का बाह्य व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार का है । उनका जीवन सादगी से भरा हुआ था । घर में कुर्ता एवं बनियान और पायजामा पहनते थे और सर्दी के दिनों में शाल लपेटली – यही उनका पहनावा था । सभा, संमेलनो एवं अधिवेशनों में कभी कभार कालरवाला कोट, शर्ट और पेंट पहन लेते थे ।

परसाईजी को अध्ययन का बहुत ही शौक था । वे हर प्रकार के साहित्य को पढ़ते थे । उनमें उन्हें जो अच्छा लगा, उसका स्वागत किया और जो कुछ बुरा लगा उनकी आलोचना करते हुए व्यंग्य से प्रहार किया । परसाईजी को झूठी सहानुभूति से नफरत थी । दुःख पड़ने पर दिखाऊ झूठी सहानुभूति के लिए तो कई लोग आते है, पर उन किसी में भी आत्मीयता या सच्चापन नहीं होता । इसी कारण परसाईजी को ऐसे लोगों के झूठे भावों से धृणा थी । इस तरह परसाईजी का बाह्य व्यक्तित्व निराला था । वे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व के धनी थे । अब उनके आंतरिक व्यक्तित्व की चर्चा करें ।

➢ आंतरिक व्यक्तित्व

व्यक्तित्व के घर, परिवार, वंशीय लक्षण, खुद के अनुभव, समाज आदि सब आंतरिक व्यक्तित्व के जिम्मेदार है, जो व्यक्तित्व को अच्छा या बुरा बनाते है । परसाईजी स्वभाव से बेफिक्र एवं अल्हड व्यक्ति थे । उनके ऊपर बहुत ही कम उम्र में पारिवारिक जिम्मेदारियाँ आ गयी थी । उनका स्वभाव था – साफ साफ देखना, कहना और सबके साथ भाईचारा निभाना, श्रम की शक्ति से बड़ी शक्ति किसी को न समझना और न ही किसी को बड़ा या किसी को छोटा समझना और भविष्य की कभी भी चिंता न करना उनके अपने स्वभाव में था । सभी व्यक्ति के जीवन में युवावस्था का बड़ा महत्त्व होता है । उसी अवस्था में व्यक्ति नये नये स्वप्न देखता है । पर परसाईजी ने इसी अवस्था में कर्तव्य एवं जिम्मेदारियों का बोझ संभाला था ।

परसाईजी बचपन से ही नीडर थे । निर्भयता उनकी रग–रग में भरी थी । अपनी इसी निर्भिकता को उन्होंने हर क्षेत्र में प्रयोग किया । परसाईजी के व्यक्तित्व की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि परसाईजी स्पष्ट वक्ता थे । वे जो कुछ भी देखते थे, अच्छा लगे या बुरा लगे वह किसी को भी स्पष्ट कह देते थे । उनको स्पष्ट बोलने से कोई रोक नहीं सकता था । इसी गुण के कारण वे अपने बारे में भी कोई भी बात क्यों न हो, स्पष्ट रूप से लिखते थे या फिर समाज के सामने प्रत्यक्ष रूप से कह भी देते थे ।

इस तरह से परसाईजी का आंतरिक व्यक्तित्व भी अनोखा था । उनका व्यक्तित्व जीवनगत संघर्षो से बना है । उन्होंने अपने भीतर और बाहर के व्यक्तित्व को अलग नहीं रखा है । लेखक एक स्थिति में साधारण सा व्यक्ति होता है, किन्तु वही साधारण–सा व्यक्ति अंतःस्थल में समष्टिगत संवेदना का सुर अपने कृतित्व के द्वारा लहराकर असाधारण बन जाता है । परसाईजी इसका साक्षात दृष्टांत है । उनका आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार का व्यक्तित्व अदभुत एवं असाधारण था ।

❀ संपादक एवं लेखक

सन् १९५७ के बाद परसाईजी ने स्वयं को साहित्य की सेवा में समर्पित कर दिया । फिर जीवन के अंत तक लिखते रहे । वे एक सफल लेखक तो थे ही, साथ में एक सफल संपादक भी रह चुके थे । सन् १९५६ में उन्होंने ‘वसुधा’ नामक यशस्वी साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन एवं संपादन किया । इस पत्रिका को उन्होंने बहुत ही नुकशान उठाते हुए भी सन् १९५८ तक चलाया । फिर उसे बंद कर दिया गया । पर आज इस पत्रिका का संपादन डॉ. कमला प्रसादजी कर रहे है । लेखक के रूप में परसाईजी ने बहुत कुछ लिखा है, निबन्ध, कहानी, लघुकथा, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र एवं अनेक पत्रिकाओं में स्तम्भलेखन ।

उनकी सबसे पहली रचना सन् १९४७ में 'प्रहरी' नामक साहित्यिक पत्रिका में 'दुसरों की चमक–दमक' नाम से छपी, जो बाद में रचनावली में 'पैसों का खेल' नाम से छपी है । परसाईजी प्रहरी, नई दुनिया, कल्पना, नवीन दुनिया, देशबन्धु, जनयुग, सारिका, कथायात्रा, परिवर्तन, करंट, गंगा इत्यादि पत्र–पत्रिकाओं में अपने लेख एवं स्तम्भ लिखते रहे । उनके 'सुनो भाई साधो' (नई दुनिया) 'और अंत में' (कल्पना), 'ये माजरा क्या है' (जनयुग), 'कबीरा खडा बाजार में' (सारिका), 'रिटायर्ड भगवान की कथा' (कथायात्रा), 'अरस्तू की चिट्ठी' (परिवर्तन), 'देख कबीरा रोया' और 'माटी कहे कुम्हार से' (करंट), 'तुलसीदास चंदन घिसे' (सारिका) इत्यादि सभी स्तम्भ एवं लेख बहुत ही प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हुए है ।

साहित्य की सभी विधाओं पर परसाईजी ने कलम चलायी हैं । शुरू में कुछ कवितायें भी लिखी, फिर समझ गये कि कविता के द्वारा वे वह नहीं कह पायेंगे, जो कहना चाहते है । अतः उन्होंने गद्य का सहारा लिया और फिर गद्य में अपनी कलम से यथार्थ एवं सत्यसाहित्य समाज के सामने प्रस्तुत कर दिया । 'वसुधा' पत्रिका का जब पुनः प्रकाशन किया गया, तब भी परसाईजी ने अपने अनुभव से डॉ. कमला प्रसादजी एवं उनके अन्य सहयोगियों को उचित परामर्श दिये ।

इस प्रकार परसाईजी संपादक एवं लेखक दोनों ही रूपों में सफलता एवं प्रसिद्धि पाते है । लेखक परसाई की रचनाओं की चर्चा आगे उनके कृतित्व में करेंगे ।

❀ सफल व्यंग्यकार

परसाईजी हिन्दी जगत में एक सशक्त व्यंग्यकार के रूप में पहचाने जाते है । उनकी यह पहचान सही भी है, क्योंकि उनकी रचना–शीलता ने व्यंग्य–विद्या को माध्यम के रूप में अपनाते हुए ही अपना परिचय हिन्दी जगत को दिया है । परसाईजी सफल व्यंग्यकार माने जाते है, क्योंकि रचनाकार के

रूप में उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया है । व्यंग्य वस्तुतः कथन की प्रकृति है, कथ्य की नहीं कथ्य तो हर रचना में चयन की प्राथमिकता और वर्ग रूचि के अनुरूप होता है । उसे रचना के रूप में आकृति देने के लिए कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास या निबन्ध का सहारा लिया जाता है । परसाईजी ने जब लिखना शुरू किया था, तब व्यंग्य विधा के रूप में स्वीकृत नहीं था । जैसे हास्य विधा नहीं है, उसी प्रकार व्यंग्य को भी विधा नहीं माना जाता था । तब परसाईजी ने विधा के रूप में कहानी, उपन्यास या निबन्ध लिखे और इनमें कथन की प्रकृति व्यंग्य को बनाया । उनकी यह व्यंग्य प्रकृति इतनी धारदार, पैनी, उत्तेजक एवं कायाकल्प करती है कि वह एक रचना के रूप में छा जाती है । व्यंग्य के प्रभाव के कारण रचना गौण बन जाती है और व्यंग्य ही प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होता है । उनका लेखन इतना प्रभावशाली रहा है कि आज व्यंग्य को साहित्य में एक विधा के रूप में सम्मानित किया गया है ।

परसाईजी के व्यंग्य सामाजिक यथार्थ से सम्बन्धित है । यह यथार्थ कहीं भी अमूर्त नहीं है, मूर्त एवं वास्तविक है । उनमें दैनिक जीवन के कष्टों, आडम्बरों और अनीतियों का उपहास है, जो लेखक की दूरगामी दृष्टि के कारण पाठक को झकझोर कर रख देता है । परसाईजी के व्यंग्य की चोट दुष्ट और भ्रष्ट समाज–व्यवस्था को नकारकर, उसकी जगह मानवीय समाज की स्थापना से सम्बन्धित है । अपने व्यंग्य–लेखन के विषय में परसाईजी कहते है, ‘‘मैंने केवल मनोरंजन के लिए कभी नहीं लिखा । मेरी रचनाएँ पढ़कर हँसी आ जाना प्रासंगिक है – मेरा यथेष्ट नहीं । और चीजो की तरह में व्यंग्य को उपहास, मखोल न मानकर, एक गंभीर ‘चीज’ मानता हूँ । साहित्य के मूल्यजीवन–मूल्यों से बनते है । वे रचनाकार के एकदम अंतर से पेदा नहीं होते । जो दावा करते है कि उनके अंतर से ही सब मूल्य पैदा होते हैं, वे पता नहीं किस दुनिया में रहते हैं । तो जीवन जैसा है, उससे बेहतर होना चाहिए । तो फिर जो जीवन लेखक देखता है, उसमें कहाँ कहाँ खोट है, कहाँ

कहाँ एकदम परिवर्तन चाहिए, कौन से मूल्य गलत है और उन्हें नष्ट होना चाहिए । किन परंपराओं को हम कैन्सर की तरह पाले हैं, कहाँ विसंगति अन्याय, मिथ्याचार, शोषण, पाखण्ड, दोमुहापन आदि है । में कोशिश करता हूँ कि इन्हें देखूँ, गहरे जाकर इनका अन्वेषण करुँ, उन्हें अर्थ दूँ, कारण खोजूँ और फिर ऐसे अनुभव को, विश्लेषित करके रचनात्मक चेतना का अंग बनाकर कुछ इस तरह से कह दूँ कि एक तथ्य ताकात के साथ उद्घाटित हो जाये ।''[२६]

परसाईजी ने राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सभी जगहो पर अपनी लेखनी के माध्यम से समाज पर करारा व्यंग्य किया है । श्री धनन्जय वर्मा व्यंग्यकार परसाईजी एवं उनके व्यंग्य के विषय में कहते है, ''परसाई का व्यंग्य जितना वेधक और तिलमिला देनेवाला होता है, उससे आम अनुमान यही होता है कि यह आदमी बेहद कठोर और निर्मम होगा, लेकिन असलियत इसके बिलकुल विपरीत है । वह आदमी औसत से ज्यादा संवेदनशील है, जो उसके व्यंग्य ही बताते है । शायद इसीलिए आदमी के वजूद पर मँडराते किसी भी संकट के प्रति उसकी चोकन्नी आँख सबसे पहले उठती है और उसकी विकृत्तियों और हास्यस्पदताओं पर भी सबसे करारी चोट उसी की होती है ।''[२७]

परसाईजी का व्यंग्य दरबारी–व्यंग्य नहीं है, जो मात्र गुदगुदा देता है । वह बहुत गहरे भीतर से उबाल की तरह आनेवाला व्यंग्य है । बेशर्मी, अन्याय, पाखण्ड, अनैतिकता, अवसरवाद आदि को लेकर उस में इतना तीखा आक्रोश समाया रहता है कि वह बौद्धिक आग का पर्याय बन जाता है । विडम्बनाओं की गहरी पकड, पैनी सूक्ष्मदर्शिता तथा बेलाग स्पष्टवादिता के साथ प्रस्तुतिकरण पहली बार परसाईजी के व्यंग्य में ही देखने को मिलता है । परसाईजी ने अपने लेखन से व्यंग्य को केवल दिशाही नहीं दी, उसे चरमोत्कर्ष भी प्रदान किया है । यह उन्हीं की कलम का श्रेय है कि व्यंग्य ने आज शुद्रत्व से क्षत्रीयत्व प्राप्त किया है ।

इस प्रकार परसाईजी ने अपने साहित्य में व्यंग्य की चेतना को लिया है, क्योंकि वे जानते थे कि समसामयिक जीवन की व्याख्या, उसका विश्लेषण और उसकी भर्त्सना एवं विडम्बना के लिए व्यंग्य से बड़ा कारगर हथियार और दूसरा नहीं हो सकता । उनका साहित्य इस बात का स्वयं प्रमाण है । निःसंदेह यह कहना अतिश्योक्ति नहीं है कि परसाईजी एक सफल लेखक के साथ ही साथ एक सफल व्यंग्यकार भी है ।

❀ उपाधियाँ एवं पुरस्कार

परसाईजी सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में निरन्तर क्रियाशील रहे है । उनका व्यक्तित्व बहुमुखी है । उनके प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व को सम्मान देते हुए सन् १९८२ में रानी दुर्गावती विश्व विद्यालय जबलपुर ने अपने रजत–जयन्ती समारोह के अवसर पर परसाईजी को डी.लिट् की मानद् उपाधि से विभूषित किया है । 'साहित्य अकादमी' ने परसाईजी को 'विकलांग श्रद्धा का दोर' नामक रचना–संग्रह के लेखक के रूप में सन् १९८२ के अखिल अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया है । सन् १९८७ में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सर्वोच्च सम्मान 'भवभूति अलंकरण' से उनको अलंकृत किया गया । सन् १९८४ में मध्यप्रदेश शासन द्वारा परसाईजी को 'शिखर सम्मान' प्रदान किया गया । विश्वशांति संमेलन सन् १९६२ में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य की हैसियत से वे 'रुसयात्रा' भी करते है । अपने प्रारंभिक लेखकीय जीवन में परसाईजी 'प्रहरी' नामक साप्ताहिक पत्र के लेखन व संपादन में योगदान देते थे । तब जबलपुर में वे केन्द्रीय साहित्यिक संस्था 'साहित्य–संघ' के महासचिव थे । 'जबलपुर माध्यमिक शिक्षक संघ' के संस्थापक शिक्षकों में उनकी गणना की जाती है और वे इस संगठन के सचिव भी रहे थे ।

परसाईजी श्री रामेश्वर प्रसाद गुरु के साथ 'वसुधा' नामक साहित्यिक मासिक पत्र के संपादक तो थे ही, साथ ही साथ उन्होंने अखिल भारतीय

विश्वशांति एवं एकता–परिषद की गतिविधियों में भी भाग लिया था । मध्यप्रदेश में शांति–आंदोलन के निर्माण और विस्तार में उनका विशेष योगदान रहा है, क्योंकि वे 'अखिल भारतीय विश्वशांति एवं एकता परिषद' की राष्ट्रीय समिति के सदस्य थे । परसाईजी 'मध्यप्रदेश' प्रगतिशील लेखक संघ' के संस्थापन काल से ही अध्यक्ष मंडल के अध्यक्ष रहे और 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक महासंघ' के अध्यक्ष मंडल में भी थे । मध्यप्रदेश में इस संगठन की गतिविधियों के सूत्रधार भी आप रहे । इसके अतिरिक्त वे सागर विश्वविद्यालय में स्थापित 'श्री गजानन माधव मुक्ति बोध सृजन पीठ' के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य कर चुके है । परसाईजी की साहित्य–सेवा का सम्मान करते हुए भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से भी सम्मानित किया है ।

इस प्रकार परसाईजी ने अपने जीवन में अपनी प्रतिभा एवं प्रतिष्ठा के अनुकूल साहित्यिक सम्मान, विभिन्न उपाधियाँ एवं अनेक पुरस्कार प्राप्त किये है ।

❀ सृजन के प्रेरणा–स्त्रोत

नई दिल्ली के सन् १९८३ के साहित्य अकादमी पुरस्कार के वितरण समारोह के अवसर पर परसाईजी ने अपने वक्तव्य में कहा था कि – "मैं इसलिए लिखता हूँ कि एक तो मैं स्वयं मनुष्य को, अपने समाज को और दुनिया को समझना चाहता हूँ । मैं इसलिए लिखता हूँ कि व्यक्ति और समाज आत्मसाक्षात्कार और आत्मालोचन करे और अपनी कमजोरियाँ, बुराइयाँ, विसंगतियाँ, विवेकहीनता, न्यायहीनता त्याग कर जैसा वह है, उससे बेहतर बने । अन्ध विश्वासों, झूठी मान्यताओं, अवैज्ञानिक आग्रहों और आत्मघाती रूढियों से मुक्त हो । वह न्यायी, दयालु, संवेदनशील हो । दासता और परमुखापेक्षिता से मुक्त हो । मानव गरिमा की प्रतिष्ठा हो ।"[२८]

ऐसे ही अपने आत्मकथ्य में परसाईजी ने लिखा है कि – "मेरा अनुमान है मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में

अपनाया होगा । दूसरे, इसी में मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा । तीसरे, अपने को अविशिष्ट होने से बचाने के लिए मैंने लिखना शुरू कर दिया । यह तब की बात है, मेरा ख्याल है, तब ऐसी ही बात होगी । पर जल्दी ही मैं व्यक्तिगत दुख के इस सम्मोहन जाल से निकल गया । मैंने अपने को विस्तार दे दिया । दुःखी और भी है । अन्याय पीडित और भी है । अनगिनत शोषित हैं । में उनमें से एक हूँ । पर मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना सम्पन्न हूँ । यहीं कहीं व्यंग्य–लेखक का जन्म हुआ । मैंने सोचा होगा रोना नहीं है, लड़ना है । जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है ।"[२६]

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से परसाईजी के साहित्य सृजन के प्रेरणा–स्त्रोत की और संकेत मिलते है । उपरोक्त विचार–कथनों से यह बात तो स्पष्ट है कि परसाईजी ने केवल शोक या फिर केवल धनोपार्जन की दृष्टि से लेखन कार्य नहीं किया है । समाज के प्रति लगाव एवं जीवन के प्रति आस्था उनके साहित्य–सृजन के मूल में हैं । परसाईजी को लेखन की प्रेरणा खुद के जीवनगत संघर्षो से मिली हैं । समाज, देश तथा कालने उन्हें एक व्यंग्य लेखक के रूप में लाकर हमारे सामने खडा किया है । उनकी स्वयं की लेखनी ने ही उनके भोगे हुए यथार्थ की तस्वीर प्रस्तुत की है । उनका विद्रोही व्यक्तित्व ही उनकी प्रेरणा का एक अंग बन गया है । परसाईजी ने देश की राजनैतिक व्यवस्था, धार्मिक विडम्बना, पूँजीपतियों द्वारा गरीबों का शोषण, छुआ–छुत का भेद, भ्रष्टाचार, पाखण्ड इत्यादि से प्रेरणा प्राप्त की है । वे अपनी लेखनी के द्वारा इनसे निपटने के लिए तैयार हुए थे । अपने आसपास के विसंगत यथार्थ, विरासत में प्राप्त आर्थिक अभाव, परिवेश में व्याप्त चारित्रिक विषमताओं और तार्किक चेतना ने ही उन्हें व्यंग्य लेखन की प्रेरणा दी । वैयक्तिक दुःखो का परित्याग उन्हें बृहत सामूहिक सामाजिकता से सम्पृक्त करता है और वे आदर्श समाज की कल्पना को साकार रूप में देखने के लिए लालायित हो

उठते है । व्यक्तिगत दुःखो के सामाजिकता में रूपान्तरण ने उन्हें एक जीवन दृष्टि दी, जिसने उन्हें निरन्तर प्रेरित किया ।

परसाईजी के साहित्य सृजन की प्रेरणा के सन्दर्भ में डॉ. मदालशा व्यास लिखती है, "परसाई का पूरा का पूरा लेखन ही भोगे हुए यथार्थ का लेखन है । अपनी बात को गहरी व असरदार बनाने के लिए तथा अपने स्वभाव की विशेषता के कारण अपनी कृतियों में परसाई ने व्यंग्य लेखन को चुना । देश-व्याप्त भ्रष्टाचार, विसंगति, विद्रुपता, चालाकी और बेईमानी के खिलाफ लोगों को सतर्क करना तथा एक शोषणविहीन समतावादी समाज की स्थापना का स्वप्न देखना यही परसाई के लेखन का प्रेंरणा-स्त्रोत है । जीवन की परिस्थितियों और अनुभवों ने परसाई को एक गंभीर व्यंग्य लेखक बना दिया ।"[३०]

इस प्रकार परसाईजी के साहित्य-सृजन के प्रेरणा-स्त्रोत उनके स्वयं के भोगे हुए यथार्थ, समकालीन परिवेश, तत्कालीन देशकाल, समाज में फैली बुराईयाँ इत्यादि है । जनता ने उनकी लेखनी को इतना पैना और धारदार बना दिया कि किसी भी वर्ग का व्यक्ति उनकी लेखनी से बच नहीं पाया । सत्य तो यही है कि परसाईजी के स्वयं के अनुभव ही विशेषकर उनकी लेखनी की प्रेरणा बने है ।

❀ कबीर का प्रभाव

परसाईजी कबीर से बहुत अधिक प्रभावित थे । उनके फक्कडाना अंदाज, घर फूँक मस्ती, लापरवाही और अखण्ड विश्वास ने परसाईजी को विसंगतियों से लड़ने की क्षमता दी है । कबीर जीवन के अनुभवों से सीधे जुडे थे । वे धर्म निरपेक्षता के सच्चे प्रतीक थे । उन्होंने पूँजीवादियों की शोषक मनोवृत्ति पर चोट की है । परसाईजी ने भी कबीर की तरह ही दुनिया को देखा था । उन्होंने कबीर की अक्खडता को पुरी तरह आत्मसात किया है । वास्तव में परसाईजी साहित्य के दूसरे कबीर ही हैं, जो धर्म, राजनीति

एवं व्यवस्था की विद्रुपता को बिना किसी खटके के साथ समाज के समक्ष रख देते है । यदि यह कहा जाय कि हरिशंकर परसाई १५ वीं या १६ वीं शताब्दी में पैदा होते तो कबीर होते और यदि कबीर बीसवीं शताब्दी में पैदा होते तो हरिशंकर परसाई होते, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । परसाईजी के जीवन में कबीर का इतना प्रभाव है कि परसाईजी को आधुनिक युग के कबीर मानना अनुचित नहीं होगा ।

श्री कमला प्रासदजी लिखते है – ''परसाई के दो गहरे साथी है – कबीर और मुक्तिबोध । कबीर की अक्खडता को उन्होंने उसी तरह आत्मसात किया है जैसे निराला ने तुलसीदास को किया था । कबीर उसके व्यक्तित्व में लीन हैं । बार–बार वह हाजिर होता है । कई बार तनाव के क्षणों में परसाई को कबीर की पंक्तियाँ – ''हम न मरिहै मरिहै संसारा'' अथवा ''जो घर जारे आपना, सो चले हमारे साथ'' – ''सब कहते कागज की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी'' – दुहराते हुए पाया है । इन पंक्तियों को दुहराते हुए उनका चेहरा लाल होता है – शरीर में तेज और अकड़ । कोई भी महसूस कर सकता है कि भीतर समाज के सबसे बड़े दुश्मन से संघर्ष जारी है । परसाई ने 'सुनो भाई साधो', 'कबिरा खडा बाजार में', 'माटी कहे कुम्हार से' जैसे कालमों में कबीर की विरासत को ही तो आगे बढाया है ।''[३१]

कबीर ने समय और समाज में व्याप्त रूढ़ियों और आडम्बरों को छिन्न–भिन्न करने के लिए संगत और सार्थक व्यंग्य का सहारा लिया है । ऐसे ही परसाईजी ने समाज, राष्ट्र, देशकाल में बदलाव लाने के लिए व्यंग्य लिखे हैं । इनके व्यंग्यों में कबीर के लेखन की झाँकी प्राप्त होती है । परसाईजी भी कबीर की तरह फक्कड किस्म के संत थे । इन्होंने अपना गुरु कबीर को ही माना है, क्योंकि जीवन की सच्चाइयों को उजागर करने में दोनों के मत एक समान है । कबीर के समान परसाईजी ने भी धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों पर कठोर प्रहार किया है । उनकी सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से सामाजिक–राजनीतिक जीवन का कोई भी पहलू छूटता नहीं हैं, उनकी सूक्ष्मदृष्टि

उसके कारणों की तह तक जाती है । परसाईजी सम्पूर्ण संसार की गतिविधियों का अवलोकन करके उसका अंकन अपनी रचनाओं में करते हैं । विश्वपटल पर घटनेवाली घटनाओं की साक्षी उनकी रचनाएँ है । सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक उतार–चढाव, नैतिकता का हनन, संवदनशीलता, वर्ग–संघर्ष आदि अनेकानेक चीजें उनकी जीवन दृष्टि का माध्यम बनी है । कबीर की भाँति परसाईजी संपूर्ण संसार का अवलोकन किया करते थे और उसकी असंगतियों को समझते थे ।

परसाईजी संवेदनशील, चेतना सम्पन्न एवं बुद्धिजीवी होने के साथ–साथ मानवीय करुणा से ओतप्रोत थे । परसाईजी ने व्यक्तिगत दुःखो के साथ–साथ समष्टिगत दुःखो को भी आत्मसात किया था । वह केवल अपने दुःख से दुःखी नहीं होते, बल्कि समाज में रहनेवाले दुःखी व्यक्तियों का दुःख भी उन्हें विचलित कर जाता था । वास्तव में परसाईजी उन अनगिनत सामान्य व्यक्तियों से परे विशिष्ट व्यक्ति की श्रेणी में आते हैं, जिन्होंने संसार के सुख को अपना सुख तथा संसार के दुःख को अपना दुःख समझा है । सारे संसार की चिन्ता करनेवाले परसाईजी महात्मा कबीर की भाँति दुःखी थे, जो निरन्तर जागकर लोगों की चिन्ता करते थे । कबीर के ही शब्दों में कहे,

''सुखिया सब संसार है, खाये और सोवे,
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे ।''

परसाईजी के जीवन में कबीर का प्रभाव सर्वाधिक देखा जाता है ।

❀ परसाईजी का कृतित्व

सन् १९५७ से परसाईजी ने स्वयं को संपूर्ण रूप से साहित्य की सेवा में समर्पित कर दिया । वैसे लिखना तो उन्होंने बहुत पहले से ही शुरू कर दिया था । पर १९५७ से साहित्य सृजन करना ही उनके जीवन का आधार भी बन जाता है, क्योंकि उन्होंने अध्यापक की नोकरी को त्याग दिया था ।

परसाईजी की प्रारंभिक रचनाएँ 'प्रहरी' नामक साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित होती थी । वैसे प्रारंभ में उनकी रचनाओं का लेखन और प्रकाशन क्रमिक रूप से नहीं हुआ था । कई रचनाएँ लिखी पहले गयी, किन्तु प्रकाशित न हो पायी और बहुत बाद में लिखी रचनाएँ पहले प्रकाशित हो गयी थी । उनकी कुछ रचनाएँ तो अभी भी अप्रकाशित है ।

सन् १९८५ में उनकी सभी प्रकाशित, अप्रकाशित रचनाओं को एकत्र किया गया और राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से 'परसाई रचनावली' का प्रकाशन किया गया । इसके कुल छः खण्ड है । परसाईजी के कई स्तम्भ पुस्तक रूप में छप चुके थे, किन्तु कुछ स्तम्भ जैसे 'सुनो भाई साधो' एवं 'ये माजरा क्या है' तथा उनकी लघुकथाएँ प्रथम बार एक साथ संकलित करके इस रचनावली में प्रकाशित की गयी है । परसाईजी की रचनाओं को एकत्र करके उसे प्रकाशित करने का कठिन एवं जिम्मेदारीपूर्ण कार्य संपादक मंडल के जिन सदस्यों ने किया है वे है – श्री कमला प्रसाद, श्री धनन्जय वर्मा, श्री श्यामसुन्दर मिश्र, श्री मलय और श्री श्याम कश्यप ।

'परसाई रचनावली' को परसाईजी अपना श्राद्धकर्म कहते है । जिस प्रकार परंपरा है कि संन्यासी अपना श्राद्ध स्वयं करके मृत्यु की शरण में जाता है, उसी प्रकार परसाईजी इन ग्रंथावली को अपने जीवनकाल में किया हुआ श्राद्धकर्म मानते है । रचनावली भाग–१ की भूमिका में परसाईजी लिखते है – ''३५ साल अपने विश्वासों को मजबूती से पकडकर, बिना समझोते के मैंने जो सही समझा, लिखा है, जो कुछ मानव–विरोधी है, उस पर निर्मम प्रहार किया है । नतीजे भोगे हैं, अभी भोग रहा हूँ, आगे भी भोगता जाऊँगा । पर मैं लगातार उसी स्फूर्ति, शक्ति और विश्वास से लिखता जा रहा हूँ । मेरा लिखा हुआ कुल इतना नहीं है, जो इस रचनावली में है । अभी बहुत शेष है, जो आगे प्रकाशित होगा । फिर मैं मरा नहीं हूँ । जिन्दा हूँ और लिख रहा हूँ । पूराने मित्रों में मैं 'स्वामीजी' कहलाता हूँ । परंपरा है कि संन्यासी अपना श्राद्ध स्वयं करके मरता है । तो रचनावली मेरा अपना श्राद्धकर्म है, जो कर दे रहा

हूँ । वैसे मैं अभी जवान हूँ, मगर श्राद्ध अभी कर दे रहा हूँ । आसन्न मृत्यु के कारण ये खण्ड नहीं छप रहे है और न सम्पूर्ण साहित्य इकट्ठा होने के कारण । और खण्ड छपेंगे । अंतिम मुक्ति का श्राद्ध तो गया में फल्गु नदी के किनारे होता है न ! उसके लिए कई साल है ।''[३२]

साहित्य में परसाईजी ने गद्य की सभी विद्याओं पर अपनी लेखनी चलायी है । फिर भी उन्होंने परंपरागत विधा–लेखन के चोखटों को निरन्तर तोडा है । उनकी रचनाओं में कहानी, रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखाचित्र, पत्र लेखन, साक्षात्कार, आत्मपरक निबन्ध, ललित निबन्ध, विचार प्रधान – विश्लेषणात्मक निबन्ध आदि सभी विधाओं के कई मिले–जुले रूपान्तर प्रस्तुत हुए है । परंपरागत लेखन से अलग परसाईजी की रचनाओं में एक ताजगी है, जहाँ वे रोजमर्रा के जीवन के भीतर से समस्याओं और सामाजिक आचरण से जुडे प्रश्नों को उठाते है । मध्यवर्गीय संस्कारशीलता के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक रूपान्तरण कई तरह की जटिलताओं का निर्माण करते हैं । परसाईजी इन विषयों पर लिखते समय विधा की सीमा को अपने लेखन की सीमा नहीं बनाते । यहीं से वे आवश्यकतानुसार अपने माध्यम को तोडते है और कहानी के अन्तर्गत संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज की मिली–जुली शैली का प्रयोग करते हैं । उनकी प्रत्येक रचना में विभिन्न विधाओं का पारस्परिक अन्तरावलम्बन ही उनकी लेखन क्षमता की सबसे बड़ी विशेषता है ।

'परसाई रचनावली' के छः खण्डों की विस्तृत रूपरेखा निम्नांकित है –

➢ *'परसाई रचनावली' – खण्ड एक*

'परसाई रचनावली' के प्रथम खण्ड में परसाईजी की लघु कथात्मक रचनाएँ – जैसे कहानियाँ, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि है । इस खण्ड के प्रारंभ में भूमिका के रूप में परसाईजी का निवेदन, 'संपादकों की और से' नामक संपादक मंडल द्वारा लिखित एक लेख और श्री धनन्जय वर्मा द्वारा

लिखित 'परसाई की कहानियाँ : समकालीन हिन्दुस्तान का कैलिड़ोस्कोप' नामक सारगर्भित लेख छपा है ।

इस भाग में कुल मिलाकर अट्ठानबे (९८) रचनाएँ प्रकाशित की गयी है । इन में मनीषीजी, रामदास, असहमत, आइंल किंग, एक घण्टे के साथ, ठण्डा शरीफ आदमी, गाँधीजी की शाल, संयोजक, बातुनी, साहब महत्त्वाकांक्षी, दल बदलनेवाला, मुफतखोर, आमरण अनशन, एक तृप्त आदमी की कहानी 'इत्यादि रेखाचित्र है ।

कहानियों में एक मध्यवर्गीय कुत्ता, सदाचार का तावीज, अकाल उत्सव, चूहा और मैं, भोलाराम का जीव, दो नाकवाले लोग आदि सामाजिक कहानियाँ है, तो भेड़े और भेड़ियें, पहलापुल, दलबदलनेवाला, राजनीति का बँटवारा, विकलांग राजनीति, जैसे उनके दिन फिरे, आमरण अनशन, सुदामा के चावल जैसी कहानियाँ राजनीति पर करारा व्यंग्य करती है । ऐसे ही परसाईजी ने कुछ कहानियों में पुराण कथाओं को आधार बनाकर व्यंग्य किया है । जैसे 'एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया, बैताल की छब्बीसवी कथा, बैताल की सताईसवी कथा, बैताल की अट्ठाइसवी कथा, त्रिशंकु बेचारा, मेनका का तपोभंग, लंका विजय के बाद आदि । उनकी कुछ कहानियों में धर्म सम्बन्धी बातो पर भी व्यंग्य मिलता है । जैसे – 'वैष्णव की फिसलन', 'राग–विराग', 'मोलाना का लड़का : पादरी की लड़की', 'अपने अपने ईष्टदेव' इत्यादि है ।

इस प्रकार प्रथम खण्ड में परसाईजी की कहानियों को संकलित करके प्रकाशित किया गया है ।

➢ *'परसाई रचनावली' खण्ड–२*

'परसाई रचनावली' के द्वितीय खण्ड में परसाईजी के महत्त्वपूर्ण दो उपन्यास है । वैसे परसाईजीने चार उपन्यास लिखे है – 'रानी नागफनी की कहानी', 'तट की खोज', 'ज्वाला और जल' और 'रिटायर्ड भगवान की कथा' (अपूर्ण) ।

इन चार उपन्यासों में प्रथम दो उपन्यास इस खण्ड में प्रकाशित हुए है । 'ज्वाला और जल' की पांडुलिपि उपलब्ध न होने के कारण पहले इसका प्रकाशन नहीं हो पाया था, परन्तु अब कुछ समय पहले उसकी पांडुलिपि प्राप्त होने के कारण इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से हुआ है । 'रिटायर्ड भगवान की कथा' नामक उपन्यास अपूर्ण है, जिसके अंश रचनावली भाग–६ में संकलित है ।

इस खण्ड में 'रानी नागफनी की कहानी', 'तट की खोज' इन दो उपन्यास के अतिरिक्त कुछ कहानियाँ एवं कुछ लघुकथाएँ भी है । इसमें ४४ कहानियाँ और ७७ लघुकथाएँ है । परसाईजी की सभी लघुकथाएँ पहलीबार इस खण्ड में एक साथ प्रकाशित की गयी है । इन रचनाओं के अतिरिक्त इस खण्ड के प्रारंभ में श्रीश्याम कश्यप द्वारा लिखित 'गद्य लेखक हरिशंकर परसाई' नामक एक अर्थपूर्ण लेख भी प्रकाशित है ।

इस खण्ड में जो 'पैसे का खेल' नामक कहानी है, वह परसाईजी की प्रथम कहानी है । यह कहानी सर्व प्रथम 'प्रहरी' में २३ नवम्बर, १९४७ में प्रकाशित हुई थी । तब इस कहानी का नाम 'दूसरो की चमक–दमक' था । इस खण्ड में छपी सभी कहानियाँ परसाईजी के लेखन के प्रारंभिक समय की कहानियाँ है । ये सभी कहानियाँ भाव एवं करुणा से पूर्ण है । इन में 'भीतर का घाव' एवं 'सेवा का शोक' उत्तम कहानियाँ मानी जाती है । इन कहानियों में भी राजनीति, समाज, धर्म इत्यादि सभी पर व्यंग्य किया गया है । 'रानी नागफनी की कहानी' परसाईजी की उत्तम हास्य–व्यंग्य प्रधान रचना मानी जाती है । 'तट की खोज' सामाजिक उपन्यास है । इस प्रकार इस खण्ड की सभी रचनाएँ तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विद्रुपताओं को स्पष्ट करती है ।

➢ *'परसाई रचनावली' – खण्ड–३*

'परसाइ–रचनावली' का तृतीय खण्ड परसाईजी के निबन्धों का संग्रह है । इनमें परसाईजी के ललित, विचारपरक एवं पत्रात्मक निबन्धो का संकलन किया गया है । इस खण्ड में तिरानवे (९३) निबन्ध ललित एवं विचारपरक निबन्ध है और चोंतीस (३४) निबन्ध पत्रात्मक निबन्ध है, जो लेखकने 'कल्पना' के संपादक को लिखे थे । बाद में ये सब पत्रात्मक निबन्ध 'और अंत में' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए थे । इस खण्ड के प्रारंभ में डॉ. कमला प्रसाद का 'हरिशंकर परसाई की निबन्ध–कला' नामक आलोचनात्मक विस्तृत लेख प्रकाशित है ।

वास्तव में परसाईजी को अपनी बात कहने के लिए निबन्ध ही सर्वश्रेष्ठ माध्यम लगा है । इसी कारण इनके निबन्ध में तत्कालीन समय की सभी कुरूपताये दृष्टिगोचर होती है । निबन्ध व्यापक एवं किसी भी प्रकार की बन्धन – मर्यादा से मुक्त होता है अर्थात् स्वच्छन्द होता है । फलतः परसाईजी को निबन्ध ही अनुकूल प्रतीत हुआ है । उनके निबन्धो की अधिकांश घटनाएँ दैनिक–जीवन से ही जुडी हुई होती है । उनकी व्यंग्यपूर्ण भाषा–शैली के कारण उनके सभी निबन्ध अत्यन्त रोचक बन गये है । इस खण्ड का प्रत्येक निबन्ध सारगर्भित एवं सोद्देश्य है ।

परसाईजी ने 'कल्पना' में जो पत्रात्मक निबन्ध लिखे थे जो उस पत्रिका में प्रकाशित भी किये गये थे । उन्हीं निबन्धों को बाद में 'और अन्त में' शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया था । ये सभी पत्रात्मक निबन्ध इस खण्ड में संकलित करके एक साथ प्रकाशित किया गया है । इन निबन्धों के विषय में परसाईजी ने कहा है कि 'और अन्त में' शीर्षक के नीचे मैंने ये पत्र संपादक को लिखे थे । इनमें मुख्यतः साहित्यिक और साधारणतः सामाजिक – राजनैतिक क्षेत्रों की गतिविधियो पर व्यंग्य है । फैलाव इनमें काफी है ।"[३३]

इस खण्ड के प्रारंभ के लेख में डॉ. कमलाप्रसाद परसाईजी के निबन्धों के विषय में लिखते है – "हरिशंकर परसाई के निबन्ध और उनका गद्य

स्वतंत्रता के बाद सबसे ताजा, प्रखर, जनतांत्रिक और विशिष्ट है । अपने समय का आत्मिक जनतंत्र इतना जागरूक और जगह कम है । वैचारिक और भावनात्मक दोनों दृष्टियों से उन्होंने सृजनात्मक सौन्दर्य को सन्देशमूलक बनाकर संस्कृति के नये पैटर्न को जन्म दिया है ।"[३४]

इस खण्ड में प्रकाशित निबन्धों में लेखक ने साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यंग्य की भरमार की है ।

➢ *'परसाई रचनावली' – खण्ड–४*

'परसाई रचनावली' के चतुर्थ खण्ड में परसाईजी के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य को लक्षित करनेवाले व्यंग्य निबन्ध संकलित करके प्रकाशित किये गये हैं । इन निबन्धों में कुछ वैचारिक एवं आत्मपरक निबन्ध भी है । इस खण्ड में परसाईजी का प्रथम निबन्ध 'इंडियन टाइम' भी प्रकाशित है । जो सन् १९५७ में २० डिसम्बर के 'प्रहरी' में छपा था । इस खण्ड में परसाईजी के एक सो अट्ठावन (१५८) व्यंग्य निबन्ध संकलित है । परसाईजी ने 'गर्दिश के दिन' नाम से जो आत्मकथ्य लिखा है, वह भी इसी खण्ड में प्रकाशित किया गया है । इस खण्ड के प्रारंभ में डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र का 'श्रीपरसाई की वैज्ञानिक जीवनदृष्टि और व्यापक यथार्थ' शीर्षक से एक विस्तृत एवं प्रभावशाली लेख भी प्रकाशित है ।

इस प्रकार 'परसाई रचनावली' के खण्ड एक एवं दो में परसाईजी का कथा–साहित्य है, तो खण्ड तीन एवं चार में उनका निबन्ध साहित्य संकलित किया गया है ।

➢ *'परसाई रचनावली' – खण्ड–५*

'परसाई रचनावली' के पाँचवे खण्ड में परसाईजी के दो साप्ताहिक स्तम्भों की सामग्री संकलित है । ये दोनों स्तम्भ है – 'सुनो भाई साधो' और 'ये माजरा क्या है' । परसाईजी ने 'नवीन दुनिया' (जबलपुर, अब नई दिल्ली) में सन् १९५७ से 'कबीर' के नाम से 'सुनो भाई साधो' शीर्षक से स्तम्भ

लिखे थे और 'जनयुग' (नई दिल्ली) में सन् १९६५ में उसके प्रथम अंक से ही 'आदम' के नाम से 'ये माजरा क्या है' शीर्षक से स्तम्भ लिखने शुरू किये थे । इन दोनों स्तम्भो की सामग्री को इस खण्ड में पहलीबार एक साथ प्रकाशित किया गया है । इन स्तम्भो को पहले कभी किसी दूसरे संकलन में प्रकाशित नहीं किया गया । ये दोनों स्तम्भ स्थानीय से अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र को लिये हुए है ।

परसाईजी ने इन स्तम्भ–लेखन में तीस वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत किया है । अतः इन स्तम्भो को ध्यान में रखे बिना, लेखक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का बोध नहीं हो सकता । स्तम्भ परसाईजी का बहुत महत्त्वपूर्ण लेखन है । जितना लोकशिक्षण इन स्तम्भों ने किया है, उतना शायद ही किसी संगठन या पार्टी ने किया हो । जीवन यथार्थ की सटीक एवं तीखी आलोचना इन स्तम्भो में है, जिसमें पाठक के भीतर परिवर्तन की प्रेरणा जाग्रत होती है । इन स्तम्भो का दायरा बहुत ही विस्तृत है । इस खण्ड के प्रारंभ में श्री धनन्जय वर्मा का " परसाई के कॉलम – साहित्य के एक नये सौन्दर्यशास्त्र की जरूरत का एहसास' शीर्षक से एक अर्थगांभीर्य से पूर्ण लेख प्रकाशित है । इन दोनों स्तम्भो में क्रमशः एक सो साठ (१६०) और अठहतर (७८) निबन्ध है । इस तरह परसाईजी के इन दोनों महत्त्वपूर्ण स्तम्भो का संकलन इस खण्ड में प्रकाशित किया गया है ।

➢ *'परसाई रचनावली' – खण्ड–६*

'परसाई रचनावली' का अंतिम चरण खण्ड छः है । इस खण्ड में प्रकाशित सम्पूर्ण सामग्री रचनाकार के विधात्मक वैविध्य को प्रस्तुत करती है । इस खण्ड के द्वारा सभी को पहलीबार विविधता के साथ साथ लेखक के ३६ वर्षो की लम्बी अवधि के बीच लिखी गयी रचनाओं का संयोजित रूप उपलब्ध होता है । इसमें परसाईजी के कुछ प्रारंम्भिक लेख, कहानियाँ, निबन्ध, समय–समय पर छपी उनकी विभिन्न पुस्तको की भूमिकाएँ, संपादकीय आलेख,

साक्षात्कार, व्याख्यान तथा एक उपन्यास 'रिटायर्ड भगवान की कथा' के अंश इत्यादि सम्मिलित है ।

इस खण्ड के प्रारंभ में खण्ड सम्बन्धी संपादक मंडल का छोटा–सा निवेदन एवं श्रीमलय का "जिन्दगी के 'अकाल' की मुखालफत में परसाई की रीति और रुतबा" शीर्षक से विस्तृत मर्मस्पर्शी लेख भी प्रकाशित है ।

इस खण्ड में छपी सभी रचनाओ की कुल संख्या एक सो पैतीस (१३५) है । सन् १९५७ में जबलपुर से सामान्य स्थिति के एक प्रेस मालिक ने 'परिवर्तन' साप्ताहिक निकाला, जिसके प्रधान संपादक श्री दुर्गाशंकर शुक्ल थे । यह साप्ताहिक बहुत विद्रोही तेवर लिये हुए था । इसमें परसाईजी ने एक नियमित स्तम्भ लिखा – 'अरस्तू की चिट्ठी' । पत्र के तीखेपन और चारो और के मिथ्याचार पर तीव्र प्रहार के कारण वह लोकप्रिय हुआ – परन्त यही कारण उसके बन्द होने का भी हुआ । बड़े बड़े लोगो के दबावों के कारण प्रकाशक को पत्र बन्द करना पड़ा था । इस पत्र को यहाँ इस खण्ड में संकलित किया गया है ।

सन् १९७४ से १९७६ तक परसाईजी ने 'सारिका' में एक स्तम्भ लिखा – 'कबिरा खडा बाजार में' । इसमें देश–विदेश के प्रमुख व्यक्तियों से कबीर का काल्पनिक साक्षात्कार होता था । परसाईजी के इस स्तम्भ को इस खण्ड में प्रकाशित किया गया है ।

सन् १९५६ में जबलपुर के प्रगतिशील लेखको और बुद्धिजीवियो ने चन्दे से 'वसुधा' मासिक पत्रिका निकाली, जो १९५८ तक चली । इसके संपादक थे – पं. रामेश्वर गुरु और हरिशंकर परसाई । उस समय कोई प्रगतिशील मासिक पत्रिका हिन्दी में नहीं थी, 'वसुधा' में परसाईजी के लिखे कुछ चुने हुए संपादकीय लेख इस खण्ड में संकलित है ।

इस खण्ड में परसाईजी ने अपनी पुस्तकों पर जो भूमिकाये लिखी है, उसका भी संकलन किया गया है और 'रिटायर्ड भगवान की कथा' नाम से परसाईजी ने एक लम्बी फन्तासी लिखने की योजना बनायी थी । इसे सन्

१९७९ में 'कथायात्रा' मासिक में आरम्भ किया था, परन्तु बाद में यह पत्रिका बन्द हो गयी । अतः यह उपन्यास अपूर्ण रह जाता है, जिसके केवल चार अध्याय इस खण्ड में प्रकाशित किये गये है । ऐसे ही इसमें परसाईजी की अन्य कहानियाँ, लघुनाटक, निबन्ध, टिप्पणी, संस्मरण, लेख, भाषण, वक्तव्य, परसाईजी से दो साक्षात्कार एवं 'पूछिए परसाई से' नामक स्तम्भ आदि संकलित है ।

'परसाई से दो साक्षात्कार' इसमें श्री ज्ञानरंजन एवं श्याम सुन्दर मिश्र द्वारा परसाईजी से किये गये साक्षात्कार का विवरण दिया गया है । श्री ज्ञानरंजन द्वारा लिये गये साक्षात्कार में साहित्य तथा खुद के रचनात्मक विवाद पर बातचीत है और श्री श्याम सुन्दर मिश्र द्वारा लिखे गये साक्षात्कार में आजादी के पहले और आजादी के बाद की राजनीति पर विस्तार से चर्चा हुई है ।

'पूछिए परसाई से' नामक स्तम्भ 'देश बन्धु' जो जबलपुर एवं रायपुर से प्रकाशित होता था, इसमें परसाईजी पाठकों के प्रश्नों के उत्तर देते थे । इस स्तम्भ के द्वारा परसाईजी ने लोगों को गंभीर सामाजिक, राजनैतिक प्रश्नो की ओर प्रवृत किया था । इस स्तम्भ के माध्यम से सहज ही जन–शिक्षा का कार्य हो रहा था, अतः इसकी उपयोगिता महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी । इस स्तम्भ को इस खण्ड में प्रकाशित किया गया है ।

इस प्रकार परसाई रचनावली के इस अंतिम खण्ड में वैविध्य भरा हुआ है । इसमें परसाईजी के लेखन–कार्य की लम्बी यात्रा की सामग्री संकलित की गयी है ।

❀ परसाईजी की अन्य रचनायें

सन् १९८५ में 'परसाई रचनावली' को प्रकाशित किया गया था । रचनावली के प्रकाशन के बाद भी परसाईजी ने बहुत कुछ लिखा है, जो बाद

में विभिन्न पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुआ है । यहाँ पर उनकी अन्य रचनाओं की सूचि इस प्रकार हैं ।

➪ *'तुलसीदास चंदन घिसे' :*

इस पुस्तक का प्रकाशन सन १९८६ में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ है । इसमें परसाईजी के स्तम्भ संकलन है ।

➪ *'हम इस उम्र से वाकिफ है' :*

यह परसाईजी ने अपने समकालीन मित्रो पर आत्मकथात्मक शैली में लिखे संस्मरणो का संकलन है । इसका प्रकाशन सन् १९८७ में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है ।

➪ *कहत – कबीर :*

यह परसाईजी के स्तम्भ संकलन का पुस्तक है । इसका प्रकाशन सन् १९८८ में नेशनल पब्ली., नई दिल्ली से हुआ है ।

➪ *जाने पहचाने लोग :*

यह परसाईजी के लिखे संस्मरणों की पुस्तक है । इसका प्रकाशन सन् १९९३ में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है ।

➪ *ऐसा भी सोचा जाता है :*

इस में परसाईजी ने अपने अंतिम समय में लिखे निबंधों का संग्रह संकलित है । इस पुस्तक में उनके २९ उच्च्व कोटि के निबन्ध प्रकाशित हुए है । इसका प्रकाशन सन् १९९३ में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है ।

➪ *आवारा भीड के खतरे :*

यह परसाईजी के निबन्ध–संग्रह की पुस्तक है, इसका प्रकाशन सन् १९९८ में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है ।

➪ *ज्वाला और जल :*

यह परसाईजी का करीब पचास वर्ष पूर्व लिखा गया उपन्यास है । यह उपन्यासिका 'अमृत पत्रिका' के दीपावली विशेषांक में कभी छपी थी । मुद्रित प्रति में कहीं भी प्रकाशन वर्ष का उल्लेख नहीं है । इसका प्रकाशन प्रारंभ में

पांडुलिपि के उपलब्ध न होने के कारण नहीं हो पाया था । यह उपन्यासिका परसाई रचावली में भी नहीं है । इसका प्रकाशन एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में पहले नहीं हो पाया था । अभी सन् २००३ में इसकी पांडुलिपि उपलब्ध हो जाने के कारण भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली से इस उपन्यास को प्रकाशित किया गया है । यह परसाईजी का प्रारंभिक उपन्यास है, लेकिन इसका प्रकाशन उनकी अंतिम पुस्तक के रूप में हुआ है ।

इन पुस्तको के अतिरिक्त परसाईजी जब सागर विश्वविद्यालय में 'मुक्तिबोध सृजन पीठ' पर अध्यक्ष के स्थान पर थे, तब उन्होंने 'कौआनामा' नामक पुस्तक लिखना प्रारंभ किया था और इसका एक अध्याय भी लिख चुके थे, किन्तु उनका स्वास्थ्य खराब हो जाने से यह किताब अधुरी ही रह जाती है । अपूर्ण 'कौआनामा' पुस्तक अभी भी प्रकाशित नहीं हो पायी है ।

इस प्रकार परसाईजीने अपनी लम्बी लेखन यात्रा में साहित्य के सभी क्षेत्रो में अपनी लेखनी चलाकर व्यंग्य की विधा को सफल एवं मनोरम्य बना दिया है । उनके विषय में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि उनकी लेखनी व्यंग्य से किसी भी क्षेत्र से वंचित नहीं रह सकी है । परसाईजी ने अपनी लेखनी जीवन से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर चलायी है और उनका व्यंग्य आक्रमक भी है । साहित्य-सेवा में उनका प्रदान अदभुत एवं महत्त्वपूर्ण है । आधुनिक युग के लिए उनका साहित्य धरोहर के समान है ।

❀ परसाईजी का कथा साहित्य :

परसाईजी ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी कलम चलायी है । काव्य को छोडकर उन्होंने निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र, कहानी, उपन्यास, स्तम्भ इत्यादि गद्य की सभी विधाओ में नवीनतापूर्ण साहित्य प्रदान किया है । 'परसाई रचनावली' में उनकी कहानियाँ एवं उपन्यास संकलित है । यहाँ पर उनके कथा साहित्य की सूचि को देखिए :

➢ *उपन्यास :*

१) रानी नागफनी की कहानी – (परसाई रचनावली भाग–२)

२) तट की खोज – (लघु उपन्यास) – (परसाई रचनावली भाग–२)

३) ज्वाला और जल – (उपन्यासिका) (भारतीय ज्ञानपीठ प्र. नई दिल्ली)

४) रिटायर्ड भगवान की कथा (उपन्यास अंश) (रचनावली भाग–६)

इस प्रकार परसाईजी के कथा–साहित्य में '४' उपन्यास और '१४२' कहानियाँ है, जो परसाई रचनावली भाग–१ और भाग–२ में संकलित है, जिसमें भाग–१ में '९८' कहानियाँ तथा भाग–२ में '४४' कहानियाँ दी गई है । ऐसे ही परसाई रचनावली भाग–२ में परसाईजी की '७७' लघुकथाएँ संकलित है । इस तरह ये परसाईजी का कथा–साहित्य है, जो 'परसाई रचनावली' में संकलित है ।

❀ निष्कर्ष :

श्री हरिशंकर परसाईजी का व्यक्तित्व मध्यमवर्गीय समाज का दर्पण है, उनका लेखन उनके व्यक्तित्व से अलग नहीं है । उनका लेखन सीमित नहीं है, वहाँ पूरा भारतीय समाज मौजूद है । समाज का कोई भी कोना परसाईजी की सजग दृष्टि से छूटा नहीं है । साहित्यकार परसाई एवं व्यक्ति परसाई एक दूसरे के पूरक है । परसाईजी केवल मानवतावादी लेखक ही नहीं, बल्कि एक बेहद सौम्य, मृदु एवं मिलनसार व्यक्ति थे । इस सबसे ऊपर है उनका स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान, जो उन्हें विशिष्ट व्यक्ति की कोटि में लाकर खड़ा कर देता है । परसाईजी के विराट कृतित्व में विधाओं की विविधता के साथ–साथ विचारों की विविधता भी है । उनका व्यक्तित्व महानता की कोटि में आता है ।

❀ सन्दर्भ सूची :

क्रम	पुस्तक – लेखक	पृष्ठ
१.	'ऐसा भी सोचा जाता है' – श्री हरिशंकर परसाई	६
२.	'तुम्हारा परसाई' – श्री कांतिकुमार जैन	७
३.	'तुम्हारा परसाई' – श्री कांतिकुमार जैन	१५
४.	'तुम्हारा परसाई' – श्री कांतिकुमार जैन	४६
५.	'तुम्हारा परसाई' – श्री कांतिकुमार जैन	१४
६.	'आँखन देखी' – 'गर्दिश के दिन' – श्री ह. शं. परसाई	३६
७.	'युग साक्षी हरिशंकर परसाई' – 'बहतर सालों का सफर'	१२८
८.	'तुम्हारा परसाई' – श्री कांतिकुमार जैन	१६
९.	'युग साक्षी हरिशंकर परसाई' – 'बहतर सालों का सफर'	१२९
१०.	'युग साक्षी हरिशंकर परसाई' – 'बहतर सालों का सफर'	१३३
११.	'तुम्हारा परसाई' – श्री कांतिकुमार जैन	२८
१२.	'युग साक्षी हरिशंकर परसाई' – 'चालीस सालों का साथ'	१०२
१३.	हरिशंकर परसाई – व्यक्तित्व एवं कृतित्व – डॉ. मनोहर देवलिया	१४
१४.	'आँखन देखी' – 'गर्दिश के दिन' – श्री ह. शं. परसाई	३६
१५.	'युग साक्षी हरिशंकर परसाई' – 'बहतर सालों का सफर'	१४७
१६.	'आँखन देखी' – 'गर्दिश के दिन' – श्री ह. शं. परसाई	३५
१७.	'आँखन देखी' – 'गर्दिश के दिन' – श्री ह. शं. परसाई	३९
१८.	'आँखन देखी' – 'गर्दिश के दिन' – श्री ह. शं. परसाई	३७
१९.	हरिशंकर परसाई – व्यक्तित्व एवं कृतित्व – डॉ. मनोहर देवलिया	११
२०.	'आँखन देखी' – मायाराम सुरजन 'विषवमनधर्मी रचनाकार	७६
२१.	'युग साक्षी हरिशंकर परसाई' – 'बहतर सालों का सफर' – डॉ. रामशंकर मिश्र	१४५
२२.	'आँखन देखी' – मायाराम सुरजन 'विषवमनधर्मी रचनाकार	८४

२३.	'तुम्हारा परसाई' – श्री कांतिकुमार जैन	११२
२४.	'युग साक्षी हरिशंकर परसाई' – परसाई की राजनैतिक चेतना – कामरेड महेन्द्र बाजपेयी	१२१
२५.	'आँखन देखी' – मायाराम सुरजन 'विषवमनधर्मी रचनाकार	७७
२६.	'आँखन देखी' – आत्मकथ्य – हरिशंकर परसाई	४१
२७.	'आँखन देखी' – व्यंग्य की रचनात्मक शर्ते – धनन्जय वर्मा	३०१
२८.	परसाई रचनावली – खण्ड ६	२२१
२९.	'आँखन देखी' – 'गर्दिश के दिन' – श्री ह. शं. परसाई	३९
३०.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	३४
३१.	'आँखन देखी' – डॉ. कमला प्रसाद	२४
३२.	परसाई रचनावली – भाग–१ भूमिका – हरिशंकर परसाई	२
३३.	'और अंत में' – हरिशंकर परसाई सन्दर्भ से (प. र. भाग–६)	२५०
३४.	परसाई रचनावली खण्ड–३ – डॉ. कमला प्रसाद	७

❀❀❀

द्वितीय अध्याय
हरिशंकर परसाई के कथासाहित्य की पृष्ठभूमि

- विषय प्रवेश
- राजनीतिक पृष्ठभूमि
- प्रशासनिक पृष्ठभूमि
- सामाजिक पृष्ठभूमि
- धार्मिक पृष्ठभूमि
- आर्थिक पृष्ठभूमि
- शैक्षणिक पृष्ठभूमि
- साहित्यिक पृष्ठभूमि
- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

द्वितीय अध्याय
हरिशंकर परसाई के कथासाहित्य की पृष्ठभूमि

विषय प्रवेश

साहित्यकार युग का डाक्टर होता है और उसका लेखन युग की बीमारियों की पहचान । अनुभूति के थर्मोमीटर से वह अपने जमाने की ऊष्मा को नापता है । उसकी कलम युग और उस समूचे माहौल की सच्चाइयों का दस्तावेज लिखती है । अपनी तार्किक व कल्पना शक्ति से ही वह अद्‌भुत योग्यता प्राप्त करता है और अपनी योग्यता के बल पर वह युग विशेष की समस्याओं तथा मानवीय रीश्तो के रहस्यो का निरपेक्ष चित्रण करता है ।

जहाँ तक हरिशंकर परसाई का प्रश्न है वे अपने युग के प्रति पूर्ण ईमानदार है । इसी गुण के कारण ही उनके साहित्य ने कालजयी सार्थकता पायी है । यह सत्य है कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत का सही चित्र परसाईजी के साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है । उनके साहित्य की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात किया जाय, तो समकालीन भारत की लगभग आधी शताब्दी की घटनायें एवं विभिन्न स्थिति अपने सम्पूर्ण यथार्थ के साथ उनकी रचनाओं में झलकती हुई दिखाई देती है । परसाईजी ने अपने तत्कालीन समाज के हर पक्ष को अपनी लेखनी के द्वारा साहित्य में उतारा है । परसाईजी वर्तमान के लेखक है । वर्तमान के साथ यथार्थ सदैव अपेक्षित होता है और परसाईजी को यथार्थ की गहरी जानकारी है । इसी कारण उनके साहित्य में केवल कोरी भावुकता नहीं है, अपितु यथार्थ की वास्तविकता दृष्टिगत होती है । परसाईजी के साहित्य की पृष्ठभूमि अत्यन्त व्यापक, विस्तृत होने के साथ ही साथ वैविध्यपूर्ण है ।

परसाईजी के लेखन की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में श्री कांतिकुमार जैन लिखते है – ‘‘बीसवीं शताब्दी के जो हिन्दी लेखक इक्कीसवीं शताब्दी में जायेंगे और मूल्यवान माने जायेंगे, उनमें हरिशंकर परसाईजी भी एक होंगे । बीसवीं

शताब्दी के पूर्वार्ध को समझने के लिए जिस तरह प्रेमचंद का लेखन प्रामाणिक और उपयोगी है, उसी तरह विगत शताब्दी के उतरार्ध से रुबरु होने के लिए हमारे पास परसाईजी से बढकर और कोई साक्ष्य नहीं है । प्रेमचंद जिस तरह अपने समय के आर्थिक शोषण, राजनीतिक अत्याचार और सामाजिक गैर बराबरी से अपने साहित्य में बराबर विचलित दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार हरिशंकर परसाई भी आजादी के बाद के भारत में मूल्यों के निरन्तर ह्रास से दुःखी है और समाज में व्याप्त अनाचार, कदाचार, भ्रष्टाचार, दुराचार, अत्याचार से लोगों को आगाह करते हैं ...... मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास के प्रारम्भिक सिरे से लेकर बीसवीं शताब्दी के इस छोर तक समाज में जो विसंगतियाँ आयी, जो पाखण्ड उभरे, जो छद्‌म पनपे, जो काइयांपन विकसित हुआ – परसाई उस सबका विश्लेषण करते हैं और उसके कारणों तक जाते है ।''[१]

यहाँ हम परसाईजी के साहित्य की पृष्ठभूमि को विभिन्न क्षेत्र की परिस्थितियों के द्वारा विशेष रूप से स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे ।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

आजादी के बाद का समय भारतीय समाज में संक्रमण का काल माना जा सकता है । सामंतीय व्यवस्था की जड़े कमजोर पड़ चुकी थी तथा नवीन पूँजीवादी व्यवस्था का पौधा निरन्तर बढता जा रहा था । समाज तथा राजनीति में पर्याप्त भ्रष्टाचार फैल चुका था । सामन्तवाद समाप्त नहीं हुआ था, राजा – महाराजा नाम मात्र के रह गये थे । स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक परिस्थिति के विषय में डॉ. ए. एन. चन्द्रशेखर रेड्डी लिखते है – ''सत्ता प्राप्ति और अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए साठोत्तर काल में उसने अनेक प्रकार के गलत साधनों का प्रयोग करना शुरू कर दिया । गाँधी, नेहरु जैसे महान नेताओं की नकल करना, चुनाव में ज्यादा धनराशि खर्च करना, राजकीय पार्टियों द्वारा अर्थहीन घोषणापत्रों का उद्‌घाटन करना, साम्प्रदायिक दंगे करवाकर

चुनावों के समय फायदा उठाना, जातिवादी – सौदेबाजी करना आदि प्रारम्भ हो गये । कुल मिलाकर राजनीतिक व्यवस्था का एक विषचक्र पैदा हुआ । नेताओं की गैरजिम्मेदाराना हरकतों को देखकर जनता भी यह सोचने लगी कि राजनीतिक क्षेत्र का सदस्य होना सबसे लाभदायक और सुखदायक धन्धा है । असफल तथा अयोग्य लोगों के लिए राजनीति का क्षेत्र बहुत आसान तथा बहुत सस्ता पड़ने लगा । राजनीतिक व्यवस्था की इस कमजोरी के कारण जनता उसे एक व्यापार तथा रोजगार के रूप में अपनाने लगी ।”[२]

परसाईजी ने देश की तत्कालीन राजनीति की इन विसंगतियों – लूंट, शोषण, भाई–भतीजावाद, राजनीति के अखाडे, गुटबाजी, अनैतिकता, अराजकता इत्यादि को महसूस भी किया है और इन सबको सम्पूर्ण यथार्थ के साथ अपने साहित्य में उभारा भी है । परसाईजी ने राजनैतिक वातावरण एवं अत्याधुनिक परिवेश का चित्रांकन बखूबी किया है । उन्होंने केवल नेताओं की बुराई ही नहीं की है, अपितु उनके भ्रष्ट चरित्र के कारण, परिवेश जनित विषमताओं पर भी प्रकाश डाला है । राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, दल–बदल की राजनीति, बेईमानी, धूर्तता, स्वार्थपरता, धनलोलुपता पर भी उन्होंने कठोर आधात किया है । परसाईजी के साहित्य में व्याप्त राजनैतिक पृष्ठभूमि को निम्नांकित रूप में देखा जा सकता है –

(१) चुनाव प्रचार एवं भाषणबाजी :

देश की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था चुनाव पद्धति से शुरू होती है, इसलिए स्वभावतः विसंगति या विकृति भी यहीं से प्रारम्भ होती है, अच्छे और बुरे में यहाँ अंतर मिट जाता है । पिछडी हुई, अपढ़ और गँवार जनता को बहकाकर चुनाव – व्यवस्था का दुरूपयोग किया जाता है । स्वतंत्रता के बाद देश में आज झूठे वचन एवं कोरी भाषणबाजी नेतागण करते हैं । इसी कारण चुनाव प्रणाली में प्रतिदिन विसंगतियाँ बढ़ती जा रही है । चुनाव का हर अंग पार्टी, पार्टी का टिकट, पार्टी का घोषणापत्र, चुनाव प्रणाली, प्रचारबाजी, चुनाव लड़ने

और जीतने के तरीके – हर चीज एक बड़ा भद्दा मजाक बनती हुई दिखाई देती है । जनता को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए नेता जमकर भाषण देता है । भाषणो के सहारे बड़े–बड़े आश्वासन और उपदेश ही देता है । भाषणपरस्त नेता अपने आश्वासनों को नहीं निभाता और उपदेशों को आचरण में नहीं लाता है ।

परसाईजी ने अपने साहित्य में इस चुनाव प्रचार एवं भाषणबाजी पर बहुत लिखा है । उन्होंने भाषणबाजी पर कटु प्रहार करते हुए लिखा है – ''जितने उपदेश और भाषण इस देश का नेता देता है, उतने किसी देश के नेता नहीं और हर विषय पर । सबेरे कृषि विज्ञान पर और शाम को अरविन्द दर्शन पर । २५ सालों से रोटी की जगह भाषण मिल रहा है । लोगों का हाजमा खराब हो गया है । दिमाग कै करने लगा है ।''[३]

चुनाव जीतने के लिए कभी–कभी साम्प्रदायिक दंगे भी करवाये जाते हैं, इस बात को भी परसाईजी ने चित्रित किया है । उनकी 'विकलांग राजनीति' कहानी में विकृत राजनीति पर व्यंग्य है, जो सिर्फ चुनाव के समय ही जनता को याद करते है । ऐसे ही 'भेड़ें और भेड़िये' कहानी में चुनाव की पद्धति एवं झूठी भाषणबाजी का वर्णन मिलता है । परसाईजी के साहित्य के द्वारा तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था का परिचय मिलता है ।

(२) आमरण अनशन एवं चापलूस चेले :

राजनीति की गंदकी ने आमरण अनशन की पवित्रता को भी गंदा कर दिया है । आज के भारत में लोग सामान्य बात पर अनशन पर उतर आते हैं । जो जनता की सेवा का दावा करके अपनी ही सेवा, प्रचार व प्रतिष्ठा करके नीजि स्वार्थो की पूर्ति करते हैं । ऐसे ही राजनीति में चेले अर्थात् चमचे जो नेता के आसपास घूमते रहते हैं । वर्तमान राजकीय परिस्थिति में चापलूस चेले सतत नेताओं की चापलूसी करते रहते हैं और उन्हें गैरमार्ग पर ले जाकर अपना स्वार्थ साधते हैं । राजनीति में सर्वत्र चापलूस चेले का शासन

चल रहा हैं । जो नेता की जी–हजूरी करेंगे और उसीकी जय बोली जाती है । आधुनिक युग में राजनीति के अंतर्गत आमरण अनशन और चापलूस चेलों का एक शस्त्र की तरह प्रयोग किया जाता है ।

परसाईजी ने आमरण अनशन करनेवाले लोगों की और नेताओं की आसपास मंडराकर उनकी हाँ में हाँ मिलाकर अपना उल्लू सीधा करनेवाले चापलूस चेलों की स्थिति को स्पष्ट किया है । उनकी 'आमरण अनशन' कहानी में धनवान व्यक्ति केवल छोटी–सी बात के लिए अनशन करने लगते है – ''सेठ किशोरीलाल, गोवर्धनबाबू और आपके इस क्षूद्र सेवक में से प्रत्येक का विश्वास है कि फाटक उसके अपने नाम की तरफ होना चाहिए, हम तीनों सत्य पर है । .... प्रश्न कठिन है, पर कोई प्रश्न इतना कठिन नहीं है, जो अहिंसात्मक रीति से न सुलझाया जा सके । इस हेतु हम तीनों ने यहीं आमरण अनशन करने की शपत ले ली है ।''[४]

परसाईजी ने 'चमचे की दिल्लीयात्रा' में चापलूस चेले का यथार्थ वर्णन किया है – ''सबसे ज्यादा चमचें राजनीति के क्षेत्र के नेताओं के होते हैं । इतिहास साक्षी है कि दुनिया में जितनी उथल–पुथल हुई है, वह महापुरुषों के कारण नहीं, बल्कि उनके चमचों के कारण हुई है । जब भी चमचे ने अपने अक्ल से कुछ किया है, तभी उपद्रव हुए है ।''[५]

उनकी 'भेड़ें और भेड़ियें' कहानी में भी इसी बात का संकेत मिलता है । परसाईजी ने इन बातों के द्वारा समकालीन राजनीति की कमजोरी को प्रकट किया है ।

(३) भ्रष्ट नेताओं की अनैतिकता :

नैतिकता से हीन, स्वार्थपरता के कारण नेताओं के व्यक्तित्व में विघटन आया है । स्वातंत्र्योत्तर भारत के नेता भिन्न–भिन्न प्रकार के मुखौटों को धारण करते हैं, लेकिन उनका वास्तविक रूप कुछ ओर ही होता है । आधुनिक काल में नेता की पद–लिप्सा निरन्तर बढती गयी है । पद प्राप्त

करने और बचाये रखने के लिए किसी प्रकार की कार्रवाई करने में वे हिचकिचाते नहीं है । उनका लक्ष्य सता प्राप्ति है । उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए नेता सब प्रकार की तरकीबों को अपनाते हैं । ये भ्रष्टनेता चुनाव जीत लेने के बाद प्रजा की ओर देखने की तस्दीभी नहीं लेते और अपनी अनैतिकता से जनता का शोषण करते हैं । चुनाव के समय और सता प्राप्ति के बाद नेता के दो सर्वथा विरोधी रूप होते है । चुनाव के समय चुनाव लड़ने के लिए नेता लोग जगह–जगह खडे हो जाते है और जनता उनको सुनने के लिए बैठी रहती है । चुनाव के बाद नेता कुर्सी पर बैठ जाता है और जनता उसके दरवाजें पर पाँच साल तक खडी रह जाती है । सता पाने के बाद नेता जनता के लए, जनता के नाम पर, जनता का शोषण करते है ।

परसाईजी ने भ्रष्टनेताओं की अनैतिकता को नकाबहीन किया है । आँखे होते हुए भी अंधी बनी जनता को परसाईजी ने अपने साहित्य के द्वारा झकझोर कर खडा किया है । सिद्धान्त के नाम पर दल बदलने का मजाकिया खेल नेताओं ने खुब किया है । परसाईजी ने एक नेता के मुँह से कहलवाया है – ‘‘हर आदमी में मेरे जैसी फुरती नहीं है । देखिए न मैंने जनता पार्टी बनायी । फिर मैं स्वतंत्र पार्टी में चला गया । फिर कांग्रेस में लौट आया । फिर मैं भारतीय क्रान्ति दल में चला गया । फिर भारतीय क्रान्ति दल से निकलकर जनता पार्टी बना ली । मेरे लिए राजनीतिक दल अण्डरवियर है । ज्यादा दिन एक ही को नहीं पहनता, क्योंकि बदबू आने लगती है ।’’[६]

ऐसे ही उन्होंने नेता की पक्ष बदलने की वृत्ति पर लिखा है – ‘‘शादी इस पार्टी से हुई थी मगर मंत्री मंडल दूसरी पार्टीवाला बनाने लगा, तो उसीकी बहू बन गये । राजनीति के मर्दो ने वेश्याओं को मात कर दिया है । किसी – किसी ने तो घण्टोंभर में तीन–तीन खसम बदल डालें ।’’[७]

कुर्सी के लिए जनता का अनैतिकता से शोषण करनेवालें भ्रष्ट नेताओं की मनोवृत्तियों के चित्रण द्वारा परसाईजी ने अपने युग का यथार्थ चित्रण किया है ।

(४) भ्रष्टाचार एवं भाई–भतीजावाद :

चाहे सामाजिक क्षेत्र हो या राजनीतिक, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर आज तक यदि कोई शब्द सबसे अधिक प्रचलित और सार्थक मिलता है, तो वह है 'भ्रष्टाचार' । आजादी के बाद जिस तेजी से विकासात्मक योजनाएँ बनी, उससे कहीं अधिक तीव्र गति से भ्रष्टाचार अपनी जड़े मजबूत करता हुआ बरगद के पेड की तरह पूरे देश में फैल गया है । आज देश में व्याप्त अनिश्चय, अनास्था, अनिर्णय, अव्यवस्था इसी भ्रष्टाचार की ही देन है । भ्रष्टाचार की तरह वर्तमान राजनीति में भाई–भतीजावाद भी प्रमुख बन गया है । नेता और उसके व्यक्ति अपने भाई–भतीजों का ही भला करने में लगे हुए है । सब अपने–अपने स्वार्थ में डूबे हुए है । आम जनता के विषय में कोई नहीं सोचता । सबको भाई–भतीजों की ही चिंता लगी है । फलतः राजनीति में भ्रष्टाचार एवं भाई–भतीजावाद का ही प्राधान्य बन गया है ।

परसाईजी के साहित्य में रिश्वत, कालाबाजारी, घूसखोरी, प्रान्तवाद, जातिवाद, भाई–भतीजावाद, सिफारिश, मिलावट, सूद–खोरी, लालफीताशाही, चोर बाजारी इत्यादि सभी भ्रष्टाचार के विभिन्न क्षेत्रों पर किया गया चित्रण पाया जाता है । परसाईजी ने 'सदाचार का तावीज' कहानी में सर्व व्याप्त भ्रष्टाचार को ईश्वर के समकक्ष बताया है । देश में फैले भ्रष्टाचार की जाँच के लिए किसी राजा के द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ आकर उसे बतलाते है – ''हुजूर, वह हाथ की पकड में नहीं आता । वह स्थूल नहीं, सूक्ष्म है, अगोचर है । पर वह सर्वत्र व्याप्त है । उसे देखा नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है ।

राजा सोच में पड़ गये । बोले, 'विशेषज्ञों, तुम कहते हो कि वह सूक्ष्म है, अगोचर है और सर्वव्यापी है । ये गुण तो ईश्वर के है । तो क्या भ्रष्टाचार ईश्वर है ?'

विशेषज्ञों ने कहा – 'हाँ, महाराज ! अब भ्रष्टाचार ईश्वर हो गया है ।''[८]

परसाईजी बताना चाहते हैं कि व्यक्ति के पास सत्ता आ जाने से शासक प्रजा का भला बाद में करेगा, पहले अपने भाई, बंधु, मित्र, भतीजे, आदि को स्थान देगा । 'सुदामा के चावल' में लेखक ने इस भाई–भतीजावाद पर प्रकाश डाला है – ''कहते हैं कि कृष्ण ने प्रजा के कोष का धन उठाकर अपने मित्र को दे दिया । कृष्ण ने ऐसा क्या अनुचित किया, जो मुझे थोडा धन दे दिया । राजपद पाकर कौन अपने भाई–भतीजों और मित्रों का भला नहीं करता ?''[६]

परसाईजी ने भ्रष्टाचार एवं भाई–भतीजावाद की स्थिति पर अपनी कलम चलाकर जनता के सामने भ्रष्ट राजनीति का विकृत स्वरूप प्रदर्शित करते हुए अपने युग की परिस्थितियों का यथा–तथ्य अंकन किया है ।

(५) शासन में अनीति व शोषण :

स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनेताओं द्वारा नैतिक मूल्यों की निर्भीक अवहेलना तथा किसी भी प्रकार सत्ता प्राप्त करने की लिप्सा ने भ्रष्ट राजनीति को जन्म दिया है और भ्रष्ट राजनीति के कारण शासन में अनीति एवं शोषण पूर्णतः फैल गये है । वर्तमान युग में जो भी नेता शासन पर आते है, केवल अपनी स्वार्थ–पूर्ति करते हैं और अनीति एवं अराजकता के द्वारा आम प्रजा का शोषण करते हैं । चारों तरफ अनैतिकता, रिश्वत एवं भ्रष्टाचार का साम्राज्य ही छाया हुआ है । परिणामतः पूरी शासन व्यवस्था अनीति एवं शोषण पर ही टिकी हुई है । शासन में रहा हर शासक प्रजा से पहले अपने रिश्तेदारों का भला करता है और उसके लिए वह अनीति के द्वारा प्रजा का ही शोषण करता है । प्रजा चाहे मरे या जिन्दा रहे उन्हें क्या ? चिर काल से चली आ रही इस प्रथा में आज तनिक भी फेर नहीं है ।

परसाईजी ने शासन की अवसरवादिता, सिद्धान्तहीनता, तथ्यहीनता, जनता के शोषण, सता के लिए किसी भी प्रकार की अनीति का षडयंत्र करना – इन सभी पर अपनी कलम चलायी है । राज संचालक सुंदरियों में डूबे हुए

भी अपने झूठे प्रचारों में तनिक भी कमी आने नहीं देते । शासक प्रजातंत्र के रूपयों को प्रजा कल्याण में लगाने के बदले उसे धर्मान्धता, अंधविश्वास में फँसकर व्यर्थ खर्च कर देते हैं । 'सदाचार का तावीज' कहानी में परसाईजी ने इस बात का संकेत दिया है, तो 'सुदामा के चावल' कहानी द्वारा उन्होंने शासन की रीति–नीति को वर्णित किया है । प्राचीन पात्रों के द्वारा परसाईजी ने आधुनिक युग का यथार्थ चित्रण किया है । सुदामा के शब्दों में परसाईजी ने अनीति एवं शोषण का चित्र अंकित किया है – ''बन्धु, मैं तो ग्रामवासी हूँ । शासन हमारे पासकेवल कर वसूल करने पहुँचता है । भला राजधानी की रीति–नीति मैं कैसे जान सकता हूँ ? हमारे ग्रामों में तो दूध उबाल लेने के बाद जो मलाई कढ़ाई में चिपकी रहती हैं, उसे खुरच लेते हैं और उसीको 'खुरचन' कहते हैं ।

वह बोला – 'ठीक इसी तरह से शासन की कड़ाही में जो मलाई चिपकी रहती है, उसे हम खुरचते है और उसे हमभी 'खुरचन' कहते है ।''[१०] परसाईजी के साहित्य में शासन में व्याप्त अनीति व शोषण का वास्तविक निरूपण किया गया है ।

सारांश यह है कि परसाईजी ने अपने साहित्य में राजनीतिक विसंगतियों, विद्रुपताओं, विषमताओं का न केवल उद्‌घाटन ही किया है, अपितु उसके यथार्थ स्वरूप को चित्रित भी किया है । राजनीतिक विसंगतियों पर चित्रांकन करके परसाईजी ने आधुनिक राजनेताओं के दोगलेपन, दोमुँहेपन, पाखण्ड, बेईमानी, भ्रष्टाचार तथा अनैतिक आचरण पर प्रकाश डाला है । डॉ. अर्चनासिंह लिखती है – ''परसाईजी ने अपनी कहानियों में राजनीतिक वातावरण का पर्याप्त चित्रण किया है । उन्होंने भारतीय जनमानस में व्याप्त नेताओं की छवि का चित्रांकन किया है । कहा जाता है कि सस्ती लोकप्रियता पाने के लिए लेखक राजनैतिक वातावरण का चित्रण करते है, किन्तु परसाईजी ने उन लेखकों की भाँति सस्ती लोकप्रियता पाने के लिए राजनैतिक वातावरण का चित्रांकन नहीं

किया है । बल्कि परिवेश जनित चेतनाकी वजह से उन्होंने राजनैतिक वातावरण के चित्र उपस्थित किये है ।''[११]

परसाईजी के साहित्य की राजनैतिक पृष्ठभूमि अपने विस्तृत फलक को लिए हुए है । इनके साहित्य के द्वारा तत्कालीन वर्तमान भारत की मूल राजनैतिक परिस्थिति का परिचय मिलता है । परसाईजी ने अपने समकालीन भारत की राजनीति के हर पहलू पर व्यंग्य किया है और अपनी लेखनी से उसकी हर बुराई को समाज के सामने पर्दाफाश करके रख दिया है । भारत का यथार्थ दर्शन परसाईजी के साहित्य की राजनैतिक पृष्ठभूमि है ।

❀ *प्रशासनिक पृष्ठभूमि*

स्वातंत्र्योत्तर काल में सरकारी और राजनीतिक क्षेत्रों में विकसित हुई विकृतियों का प्रभाव सार्वजनिक प्रशासनिक क्षेत्र पर भी पड़ा है । अधिकारियों में अधिकार – चेतना जिस अनुपात में विकसित हुई है, उसी अनुपात में दायित्व चेतना लुप्त हो गयी है । भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, अफसरशाही, गैरजिम्मेदारी आदि बढ गयी है । जनसेवा, न्याय, निष्पक्षता और ईमानदारी के नाम पर ठीक उल्टा आचरण किया जाने लगा है । सार्वजनिक और निजी प्रशासन के दो क्षेत्रों में से सार्वजनिक प्रशासन क्षेत्र सरकारी तंत्र के सीधे नियंत्रण में होता है । स्वभावतः सरकारी तंत्र की समस्त अच्छाइयाँ, बुराइयाँ सार्वजनिक प्रशासन के क्षेत्र में स्वयंमेव उतर आती है । इसी कारण आज प्रशासनिक क्षेत्र में भी बहुत सी विकृतियाँ एवं विसंगतियाँ आ गयी है ।

परसाईजी के साहित्य में प्रशासनिक पृष्ठभूमि भी विद्यमान है । उन्होंने अपनी कहानियों – उपन्यासों तथा अपनी व्यंग्य रचनाओं में प्रशासकीय विसंगतियों का वर्णन किया है । भ्रष्ट प्रशासन देश तथा समाज के हित में नहीं हो सकता । आज के युग में सार्वजनिक नैतिकता जैसी कोई चीज प्रशासनिक क्षेत्र में नहीं रह गयी है । प्रशासनिक कार्यालयों का वातावरण कलुषित हो गया है । सिफारिश, चापलूसी, खुशामद, रिश्वत आदि पूरे तंत्र का

हिस्सा बन चुके हैं । परसाईजी ने प्रशासनिक क्षेत्रकी इन सभी विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण किया है ।

(१) अफसरशाही :

प्रशासनिक क्षेत्र की विकृतियों अथवा उपयुक्त कार्यवाही की असफलताओं के लिए पूर्ण रूप से जिम्मेदार अफसर ही होता है । आज के युग में अगर नेता राजनैतिक क्षेत्र का खलनायक है, तो अफसर प्रशासनिक क्षेत्र का खलनायक बन गया है । स्वहित की अत्यधिक भावना ने उसको उचित–अनुचित सबकुछ करने के लिए बाध्य कर दिया है ।

परसाईजी ने अपनी बहुत सी कहानियों में अफसरशाही का चित्रण किया है । उन्होंने 'लघुशंका न करने की प्रतिष्ठा' कहानी में बड़े अफसरो को चीते के रूप में, छोटे अफसरों को बकरी और खरगोश के रूप में चित्रित किया है । परसाईजी ने एक बड़े अफसर के स्वागत की तैयारी का वर्णन करते हुए लिखा है – "चीता बकरी और खरगोश के पास जाकर सलाह कर रहा है । बकरी चीते के शेर के 'डिनर' के लिए मेमने दे चुकी है – याने बच्चों का पेट काटकर साहब के स्वागत खर्च के लिए तनखा में से चन्दा दे चुके है । सब सोचते हैं कि साहब क्वाँरा या रँडुआ होता, तो कितना अच्छा होता । तब कम–से–कम मेमसाहब के गिफ्ट के लिए पैसे न देने पड़ते । अभी भी चारदिन है । आदमी चाहे तो इतने में क्या रँडुआ नहीं हो सकता ? सुना है, मेमसाब एक बाद नींद की ज्यादा दवाइयाँ खा चुकी है । सब भगवान के हाथ बात है । हे ईश्वर, उन्हें दुबारा नींद की ज्यादा गोलियाँ खिलवा दे । गिफ्ट के पैसे बचेंगे ।"[१२] इस प्रकार परसाईजी ने प्रशासन के मान्धाताओं की बेईमानी का यथार्थ चित्रण किया है ।

(२) पुलिस विभाग :

पुलिस का अर्थ है – रक्षक । जब रक्षक ही भक्षक हो जाय तो किसके सामने दुखडा रोयें । पुलिस का आदमी जब रक्षा के कार्य से इतर

किसी निहित स्वार्थ से प्रेरित होकर काम करने लगता है, तब उसकी कार्यविधि में विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ उभरने लगती हैं । पुलिस का काम होता है सच्चे अपराधी को पकडना । लेकिन यों ही अपराध मढ़ने के लिए किसी को भी पकडने का उद्‌देश्य होता है – उसके सर्विस रजिष्टर में एक केस सुलझाने का रिकार्ड दर्ज कराना । इस तरह स्वतंत्र भारत में पुलिस विभाग में निष्ठा की जगह सर्वत्र बेईमानी का ही साम्राज्य फैल चुका है ।

परसाईजी ने ऐसी कार्रवाइयों का उद्‌घाटन बड़ी सफलता के साथ किया है । उन्होंने 'इन्स्पेकटर मातादीन चाँद पर' नामक कहानी में पुलिस विभाग पर गहरा आघात किया है । उनका इन्स्पेकटर मातादीन चाँद के अफसरों से कहता है – ''देखो आदमी मारा गया है, तो यह पक्का है कि किसी ने उसे जरूर मारा है । कोई कातिल है । किसी को सजा होनी है । सवाल है – किसको सजा होनी है ? पुलिस के लिए यह सवाल इतना महत्त्व नहीं रखता, जितना यह सवाल कि जुर्म किस पर साबित हो सकता है या किस पर साबित होना चाहिए । दूसरा सवाल है, किस पर जुर्म साबित होना है । इसका निर्णय इन बातों से होगा – क्या वह आदमी पुलिस के रास्ते में आता है ? क्या उसे सजा दिलाने से ऊपर के लोग खुश होंगे ?''[१३]

इसी तरह परसाईजी की 'रामसिंह की ट्रेनिंग' कहानी भी पुलिस की छवि पर प्रकाश डालती है कि आज जनता में पुलिस की छवि बेईमान धूर्त तथा भ्रष्टाचार के प्रतीक के रूप में हैं । वास्तव में परसाईजी ने 'इन्स्पेकटर मातादीन चाँद पर' जैसी कहानियाँ लिखकर पुलिस – विभाग का आइना समाज को दिखाया है ।

(३) न्याय विभाग :

न्याय विभाग में होनेवाले न्याय की अनिश्चितता व कानूनी कार्रवाई का अकल्पनीय खर्च एवं वकीलों के आसपास चक्कर काटना इत्यादि बहुत–सी बाते हैं, जो आज जनता को परेशान किये हुए है । स्वातंत्र्योत्तर युग में न्याय

विभाग में भी पेशेवर गवाह एवं राजनीतिक दखलअन्दाजी बढ गयी है, जिस कारण आम मानव को न्याय विभाग में जाकर न्याय की अपेक्षा रखना अत्यन्त दुष्कर लगता है । न्याय मिलते–मिलते प्रजा का विश्वास भी खो जाता है । वकील 'क्रोस एक्जामिनेशन' के नाम पर सत्य को असत्य, असत्य को सत्य सिद्ध करते है ।

परसाईजी ने महाभारतकी घटना को माध्यम बनाकर न्याय विभाग की विकृतियों को स्पष्ट किया है – "अगर अर्जुन युद्ध नहीं करता, तो क्या करता ? कचहरी जाता । जमीन का मुकदमा दायर करता । लेकिन वन से लौटे पांडव अगर जैसे–तैसे कोर्ट फीस चुका भी देते तो वकीलों की फीस कहाँ से देते ? गवाहों को पैसे कहाँ से देते ? और कचहरी में धर्मराज का क्या हाल होता । वे 'क्रोस एक्जामिनेशन' के पहिले ही झटके में उखड जाते । सत्यवादी भी कहीं मुकदमा लड़ सकते । कचहरी की चपेट में भीम की चर्बी उतर जाती । युद्ध में तो १८ दिन में फैसला हो गया, कचहरी में १८ साल भी लग जाते और जीतता दुर्योधन ही, क्योंकि उसके पास पैसा था ।"[१४] इस प्रकार परसाईजी ने अपनी विभिन्न रचनाओं में न्याय विभाग में चल रही बेइमानी एवं भ्रष्टाचार का वास्तविक वर्णन प्रस्तुत किया है ।

(४) रेल एवं परिवहन विभाग :

स्वातंत्र्योत्तर भारत में रेल एवं परिवहन विभाग की स्थिति अत्यन्त दयनीय बन गयी है । रेल में होनेवाली भीड़, उनके आवागमन की अनिश्चित स्थिति, ऐसे ही बसों में होनेवाली भीड़, बस स्टापों की गन्दगी, बस स्टापों की निरर्थकता इत्यादि बहुत–सी विकृतियाँ है, जो आज की जनता को परेशान किये हुए है । आम मानव इस प्रकार तंत्र की लापरवाई से यातनाये भुगतता है । आजादी के बाद भारत में ये सारी विडम्बनाएँ अपने पाँव जमाकर फैल चुकी है ।

रेल एवं परिवहन विभाग की समस्याओं को परसाईजी ने अपने साहित्य में उभारा है । उन्होंने 'हनुमान की रेलयात्रा' में रेलवे विभाग में फैले हुए भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया है । जहाँ व्यवस्था के अभाव तथा जनसंख्या की अधिकता के कारण उचित टिकट लेकर भी हनुमानजी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तथा वे श्रीराम का काम करने में असफल हो जाते है । एक रोचक प्रसंग के चित्रण में परसाईजी ने वर्णन किया है – ''हम मालकिन को दिल्ली से नहीं ला सकेंगे । रेलगाडियों में इतनी भीड होती है कि हम कुचलकर या दम घुटकर मर जायेंगे । हम आपके काम के लिए जान दे सकते है, पर जान देने से भी माता जानकी दिल्ली से नहीं आ सकती । आप तो जानते ही है कि दिल्ली में आदमी गाडी में बैठते है और मद्रास में लाशे उतरती है ।''[१५]

ऐसे ही परसाईजी ने 'चावल से हीरे तक' नामक रचना में बस की दुर्दशा पर सटीक वर्णन करके, परिवहन विभाग की बुराइयों को खोल के रख दिया है ।

(५) नौकरशाही एवं बेरोजगारी :

नौकरशाही प्रशासनिक तंत्र का एक अभिशाप यह रहा है कि मध्यवर्गीय बाबू तरक्की पाने के लिए सही–गलत, उचित–अनुचित सब उपायों को करने के लिए विवश हो जाता है । छोटेबाबू वडे अफसरों को खुश करने के लिए अपनी पत्नी काभी उपयोग करते हैं । नौकरशाही में प्रायः टेढे–मेढे रास्तों को अपनाने के लिए अफसरो में होड–सी लग जाती है और इस प्रक्रिया में अनेक प्रकार की पाखण्डपूर्ण स्थितियाँ उभरती है । इसी प्रकार बेरोजगारी आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था की असफलता का परिणाम है । बेरोजगारी को हटाने का नारा देने के अलावा इन राजनैतिक नेताओं के पास कोई ऐसी योजना नहीं है, जिससे देश के युवा शक्ति का देश के विकास में उपयोग किया जा सके । सर्वत्र बेरोजगारी का विषचक्र फैला हुआ है ।

नौकरशाही में फैली विकृति का परसाईजी ने अपनी एक छोटी लघुकथा 'लिफ्ट' में संकेत दिया है । जिसमें एक बाबू कहता है – "हाँ, भाई लिफ्ट से चढो, हमारी लिफ्ट तो ३५ साल की और मोटी हो गयी है ।"[१६]

ऐसे ही परसाईजी बेरोजगारी पर लिखते है – "यह जो आदमी मेरे सामने बैठा है, जवान है और दुःखी है । जवान आदमी को दुःखी देखने से पाप लगता है । मगर मजबूरी में पाप भी हो जाता है । बेकारी से दुःखी जवानों को सारा देश देख रहा है और सब को पाप लग रहा है । सबसे ज्यादा पाप उन भाग्यविधाताओं को लग रहा है, जिनके कर्म, अकर्म और कुकर्म के कारण वह बेकार है ।"[१७]

परसाईजी की 'भोलाराम का जीव' कहानी भी नौकरशाही की लालफिताशाही को बखुबी व्यक्त करती है । परसाइजी ने राजनीतिक नेता एवं प्रशासनिक तंत्र पर प्रहार किया है, जिसके कारण बेरोजगारी इतनी फूलीफाली है । परसाईजी ने अपने साहित्य में प्रशासनिक तंत्र की इन विकृतियों को सार्थक रूप से व्यक्त किया है ।

तात्पर्य यह है कि परसाईजी ने अपने साहित्य में राजनीतिक परिस्थितियों के साथ–साथ प्रशासनिक वातावरण का चित्रण करके प्रशासनिक तंत्र की विसंगतियों को व्यक्त किया है । परसाईजी के साहित्य की प्रशासनिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में डॉ. नन्दलाल कल्ला लिखते है – "जनतंत्र को सता खा रही है । सेवा के नाम पर संघ और चन्दा खानेवालों की बाढ आ गयी है । पुलिस रक्षक से भक्षक बन गये है । न्याय अन्धा नहीं काना हो गया है, जो एक तरफा न्याय करता है । ..... आजादी के ५० वर्ष बाद भी अर्थव्यवस्था बीमार है । अर्थ कुछ हाथों में हैं और बेरोजगारी, कृषि, अकाल, पैसे की समस्या से जनता पीड़ित है । आय का वितरण सही न होने के कारण रिश्वत का बाजार गर्म है । काले धन्धे और चोरबाजारी का आतंक है । अफसर भ्रष्ट है । ...... रेलों, बसों की अव्यवस्था, इनकी दुर्दशा, यह सब

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य के लक्ष्य बने है ।''[१८] परसाईजी के साहित्य में प्रशासनिक पृष्ठभूमि का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है ।

सामाजिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता के बाद तेजी से होनेवाले औद्योगिक विकास के कारण सामाजिक क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन आया । सामाजिक क्षेत्र में इसका सबसे बड़ा परिणाम हुआ, मध्यवर्ग का उभार । पुरानी सामन्ती व्यवस्था में भारतीय समाज प्रायः दो वर्गों में विभक्त था – उच्च और निम्न वर्ग । लेकिन औद्योगीकरण तथा दफतरी तंत्र के विकास के परिणाम स्वरूप, मध्यवर्ग के रूप में समाज का एक नया वर्ग उभरकर सामने आया । इससे पारस्परिक स्वार्थ टकराये और समाज के विभिन्न वर्ग – स्तरों पर तनाव और संघर्ष की स्थिति उतरोत्तर बढने लगी । सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के प्रतिमान बदलते गये । साठोतर काल के कलुषित एवं कुत्सित राजनैतिक वातावरण के कारण भारतीय समाज असफल, निष्क्रिय, उदासीन और हतप्रभ होकर कुटिलता और संकीर्णता के मध्य घुटता हुआ अत्यन्त असन्तोषी हो गया । जिसके कारण व्यक्ति के रागात्मक सम्बन्धोंका टूटना प्रारम्भ हुआ । व्यक्ति की कथनी और करनी में अन्तर बढता गया । व्यक्ति अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति तथा स्वार्थ साधने के लिए हर तरह के गलत माध्यम अपनाने लगा । खुशामद, चापलूसी, मुखौटेबाजी आदि उसकी नयी नीतियाँ बनने लगीं । एक ओर व्यक्ति अपने दायित्वो से मुँह मोडकर गैरजिम्मेदार बनता गया, दूसरी ओर उसकी अधिकारों की माँग बराबर बढती गयी ।

सामाजिक स्थितियों का अवलोकन करते हुए परसाईजी ने कवि, लेखक, डाक्टर, चित्रकार, पत्रकार, राजा, मंत्री, योगी, अधिकारी आदि सभी पर दृष्टिपात किया है । उन्होंने दहेज व्यवस्था, बहुपत्नीविवाह, पुरुषों की विलासिता, प्रेम के नाम पर वासना के नग्न खेल, मंत्रियों की स्वार्थपरता, नारी की स्थिति,

राजाओं की विलासिता इत्यादि सबका सूक्ष्म अवलोकन किया है । शायद ही कोई सामाजिक परिस्थिति हो, जो उनकी दृष्टि से परे रह गयी हो ।

परसाईजी के विषय में श्री मधुमासचन्द यथार्थ लिखते है – ''शोषण विहीन और समतावादी समाज की स्थापना के लिए जो लेखक अपनी लेखनी चला रहे हैं, परसाईजी उनमें अग्रणी हैं । आनेवाली पीढी के दिशा निर्देश के लिए हरिशंकर परसाई एक आकाश–दीप के समान है ।''[१६]

परसाईजी ने समाज और समाज की विसंगतियों को अत्यन्त निकटता से देखा और अनुभव किया है । उनकी सामाजिक चेतना वर्गविशेष या समाज विशेष तक ही सीमित नहीं रही है । उन्होंने संपूर्ण भारतीय समाज का सूक्ष्म अवलोकन किया है और अपने साहित्य में यथार्थ के साथ उसकी सहज अभिव्यक्ति की है ।

(१) सामाजिक व्यवस्था :

स्वातंत्र्योत्तर समाज में सामाजिक व्यवस्था का ढाँचा बिलकुल ही गलत था । जो धनवान थे, वे विलासी एवं शोषक थे जो सदैव जनता का शोषण करते थे और जो गरीब एवं सर्वहारा वर्ग के थे, वे बिलकुल ही पतित माने जाते थे और सबके द्वारा उनका शोषण किया जाता था । उच्च एवं निम्नवर्ग के बीच में मध्यमवर्ग की स्थिति भी बहुत दयनीय थी । संपूर्ण रूप से सामाजिक व्यवस्था अव्यवस्थित थी । धनवान के पास धन की कमी नहीं थी, निम्न एवं मध्यवर्ग धन के अभाव में दुःखी था ।

सर्वहारा वर्ग के प्रति गहरी संवेदनशीलता रखनेवाले परसाईजी को इन वर्गो की समस्या एवं हालत का भलीभाँति परिचय है । उन्होंने 'भोलाराम का जीव' नामक कहानी में ऐसे सर्वहारा वर्ग की गरीबी एवं मजबूरी का चित्रण किया है – ''जबलपुर शहर में घमापुर मोहल्ले में नाले के किनारे एक–डेढ कमरे के टूटे–फूटे मकान में वह परिवार समेत रहता था । उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के और एक लड़की । उम्र लगभग साठ साल । सरकारी नौकर

था । पाँच साल पहले रिटायर हो गया था । मकान का किराया उसने एक साल से नहीं दिया, इसलिए मकान मालिक उसे निकालना चाहता था । इतने में भोलाराम ने संसार ही छोड दिया । आज पाँचवाँ दिन है । बहुत सम्भव है कि अगर मकान मालिक वास्तविक मकान मालिक है, तो उसने भोलाराम के मरते ही उसके परिवार को निकाल दिया होगा ।''[२०]

परसाईजी ने 'जिसकी छोड भागी' कहानी में शोषक वर्ग के प्रतिनिधि धनवान परिवार का चित्रण बड़े ही रोचक ढंग से किया है – ''कितने सुखी लोग थे । शाम को सारा परिवार भगवान की आरती गाता था – जय जगदीश हरे । भगवान के सहयोग के बिना शुभ कार्य नहीं होते । आरती में आगे आता – सुख सम्पति घर आवे ! शाम को यह बात कही जाती और सुबह बनियों के लाल वस्त्रों में बँधी सुख–सम्पति चली आती । जिस दिन घूसखोरों की आस्था भगवान पर से उठ जायगी, उस दिन भगवान को पूछनेवाला कोई नहीं रहेगा । आरती में आता – तुम अन्तर्यामी । भगवान तुम जानते हो, मेरे अन्तर में घूस लेने की इच्छा है और तुम दिलाते भी हो ।''[२१]

परसाइजी ने अपने साहित्य में समाज में फैली इस असंगत सामाजिक व्यवस्था का चित्रण प्रस्तुत किया है, जिससे समाज में फैले अत्याचार एवं अनाचार का तादृश्य चित्रण देखने को मिलता है ।

(२) दहेज प्रथा :

दहेज प्रथा आज की एक ज्वलंत सामाजिक समस्या है, जिसका विरोध प्रायः हर व्यक्ति अपने स्तर पर कर रहा है, किन्तु यह समस्या सुलझने के बजाय उलझती ही जा रही है । दहेज–प्रथा के कारण बहुत–सी लड़कियों का या तो विवाह नहीं होता, या फिर विवाह के बाद दुःखी होती है । समाज में कुछ लोग शादी में व्यर्थ खर्च करके, केवल दिखावा करके भी दहेज–प्रथा को प्रोत्साहन देते हैं, जिसके कारण वर के पिता दहेज की माँग करते है, क्योंकि

कन्या के पिता अपनी झूठी शान दिखाने के लिए व्यर्थ खर्च करते हैं । दहेज के कारण समाज में अनेक युवतियों को मार भी दिया जाता है । यह दहेज प्रथा समाज के लिए एक कलंक के समान है । प्राचीन समय से चली आ रही ये कुरीतियाँ प्रवर्तमान युग में भी देखने को मिलती है ।

परसाईजी एक जागरूक, सचेतन, संवेदनशील रचनाकार है । अतः उन जैसे प्रतिबद्ध रचनाकार की कहानियों में इस नाजुक समस्या का उभारा जाना स्वाभाविक ही है । 'तट की खोज' नामक लघु उपन्यास परसाईजी ने इसी समस्या को आधार बनाकर लिखा है । शीला के पिता आर्थिक अभाव के कारण शीला का विवाह नहीं कर पाते । इसका वर्णन परसाईजी ने शीला के मुख से अत्यन्त धारदार किया है – ''वे सब लोग हाथ में तराजू लये थे, जिसके एक पलड़े पर बेटे को रखा गया था । मुझे मेरी समझ से विद्या, बुद्धि और सौन्दर्य के साथ दूसरे पलड़े पर रखकर देखते तो हारकर मेरा ही पलड़ा हल्का पाते । तब पलड़े बराबर करने के लिए मेरे साथ रूपयों का वजन रखने को कहते । पिताजी जब ऐसा नहीं कर पाते, तब वे अपनी तराजू लेकर दूसरे द्वार पर पहुँच जाते ।''[२२]

शीला जैसी अनेक युवतियाँ आज भी दहेज न होने के कारण दुःखी, अविवाहिता तथा तटहीन है । परसाईजी ने दहेज समस्या का केवल निरूपण ही नहीं किया है, बल्कि उसकी तह तक जाकर उसकी छानबीन करके उसके अनेकानेक कारणों का विश्लेषण भी किया है । दहेज की समस्या का चित्रण करके परसाईजी ने यथासंभव समाधान देने का प्रयत्न भी किया है, जो उनके साहित्य में झलकता है ।

(३) नारी की स्थिति :

आधुनिक युग में नारी की स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया है । उसका शोषण आज भी जारी है । केवल शोषण का तरीका बदल गया है । मूल समस्या आज भी जहाँ की तहाँ विद्यमान है । अगर आज नारी को

थोडी–सी स्वतंत्रता मिल गयी है, तो उसका कारण विशुद्ध आर्थिक है । बढती हुई कमरतोड महँगाई के कारण नारी को बाहर आने की छूट मिल गयी है, किन्तु उसका दायरा अत्यन्त सीमित है । पुरुष वर्ग आज भी नारी को वासना की ही दृष्टि से देखता है ।

परसाईजी की रचनाओं में नारी की दयनीय स्थिति के चित्र दिखलाई पड़ते है । उन्होंने नारी की परतंत्रता को उसके स्वतंत्र अस्तित्व के अभाव में प्रायः कई कहानियों में अभिव्यक्त किया है । नारी आज भी मानसिक दासता को स्वीकार करती है । परंपरा प्रिय भारतीय समाज में आज भी वह विवश एवं पराश्रित है । परसाईजी ने 'तट की खोज' में शीला के मुख से कहलवाया है – "कुछ लोग पिताजी से मिलने आते, तो वे पिताजी से बातें करने में कम ध्यान लगाकर पर्दे तथा किवाड़ के छिद्र में से मुझे देख सकने का प्रयास करने में अधिक ।"[२३]

परसाईजी ने अपनी कहानियों में पुरुष के लम्पट स्वभाव एवं संकीर्ण मानसिकता पर गहरा आघात किया है । बदलते हुए सामाजिक परिवेश में भी उनकी मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । पुरुष आज भी अहं का शिकार है तथा औरत को प्रोपर्टी समझता है । परसाईजी की 'जिसकी छोड भागी' कहानी में यही बात उन्होंने बतायी है । उनके साहित्य में नारी की विभिन्न स्थिति पर प्रकाश डाला गया है । परसाईजी ने अपने साहित्य में नारी की स्थिति का विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है । एक तटस्थ लेखक बनकर परसाईजी ने नारी की स्थिति का मूल्यांकन करके सामाजिक पृष्ठभूमि का सजीव चित्रण किया है ।

(४) समाज में भ्रष्टाचार की सर्वव्यापकता :

आज के युग में समाज में भ्रष्टाचार सर्वव्यापक बन गया है । यहाँ तक कि भ्रष्टाचार ईश्वर का रूप लिए हुए है । समाज में फैले इस भ्रष्टाचार की जड़े अत्यन्त गहरी हो चुकी है । इसे उखाड फेंकना असंभव तो नहीं, अपितु

कठिन अवश्य है । समाज में शिक्षा, लेखन, अध्यापन, डाक्टरी आदि सभी पेशे में भ्रष्टाचार समा चुका है । कोई भी व्यवसाय ऐसा नहीं बचा है, जहाँ तक भ्रष्टाचार की जड़े न पहुँची हों ।

साहित्य के माध्यम से परसाईजी ने समाज में व्याप्त सभी प्रकार के भ्रष्टाचारों की बुराई का उद्‌घाटन किया है । उनकी 'सदाचार का तावीज' कहानी भ्रष्टाचार की सर्वव्यापकता बताती है, तो 'रानी नागफनी की कहानी' समाज में फैले हर क्षेत्र के भ्रष्टाचार की ओर संकेत करती है । परसाईजी ने डाक्टरी जैसे पवित्र व्यवसाय में भी किस तरह भ्रष्टाचार फैल गया है, इसका चित्रण किया है – "अब बीमारी का नाम जानने की भी जरूरत नहीं है, क्यों कि बीमारी कोई भी हो, पेनिसिलिन ही दिया जायेगा । पेनिसिलिन से बीमारी ही अच्छी नहीं होती, मनुष्य की सब समस्याएँ भी हल होती है । पेनिसिलिन से अगर रोगी मर भी जाय, तो उसे स्वर्ग में स्थान मिलता है । इस तरह पेनिसिलिन से दोनों लोक सुधरते हैं । जो बिना पेनिसिलिन के मर जाते हैं, उन्हें फिर जन्म लेकर पेनिसिलिन लगवाना पड़ता है । एक बार पेनिसिलिन लेने से प्राणी आवागमन के बन्धन से छूट जाता है । ..... हमारे पास दवा बनानेवाले कारखानों के एजेण्ट आते रहते हैं । वे बता जाते हैं कि इस समय क्लोरोमाइसिन का उत्पादन बहुत हुआ है, इसलिए लोगों को टाइफाइड होना चाहिए । इसके बाद उसे उसकी बीमारी की दवा भी दी जायेगी, फिर कुछ ऐसी दवाएँ भी दी जायेंगी, जिनसे न लाभ होगा, न हानि । ..... 'जनरल' बीमारी वह है, जिसकी दवा का स्टाक निकालना है । यह हर एक को लेनी होगी ।"[२४]

आज डाक्टर सेवा के लिए नहीं, पर पैसे के लिए डाक्टरी करते हैं, यही बात परसाईजी ने यहाँ पर बताना चाही है । परसाईजी ने समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार के हर रूप को अपने साहित्य में दिखाकर सामाजिक पृष्ठभूमि के इस पहलू को अधिक स्पष्टता से उजागर किया है ।

(५) निम्न मध्यवर्ग की विडम्बना :

आज के युग में निम्न मध्यवर्ग बहुत ही विडम्बनाओं का सामना करता है । रोटी के लिए संघर्ष – यही उनके जीवन का मूल मंत्र है । गरीबी की खाई में पड़ी हुई इस वर्ग की आम जनता अत्यन्त दुःखों का सामना करती है । स्वतंत्रता के इतने वर्षो के बाद भी जो गरीब है, उनकी स्थिति वहीं है । वे आज भी गरीब है और उनका आज भी शोषण हो रहा है । समाज के धनिक वर्ग उनका हर तरह से शोषण करके उनको अधिक गरीब बना रहे हैं ।

परसाईजी की पूरी सहानुभूति निम्न मध्यवर्ग के साथ है । उन्होंने निम्न – मध्यवर्ग की विडम्बनाओं के जितने सहज और स्वाभाविक चित्र खींचे है, उतने शायद अन्य किसी ने नहीं खींचे होंगे । परसाईजी की 'रामदास' नामक कहानी में उन्होंने रामदास की गरीबी का चित्रण अत्यन्त करुणता से किया है – ''यदि उन स्त्री–बच्चों को वह ले भी आवे, तो लिखायेगा क्या । पर आशा के छोर को वह खूब कसकर पकडे हैं । नये काम ढूह्य.ता है, आमदनी के नये जरिये खोजता है, पर हर जगह उसकी ईमानदारी और दार्शनिक बेखबरी बाधा देती है । तीन–चार सालों से वह घर नहीं गया है । उसके वे स्त्री–बच्चे समस्त अभावों और विपदाओं के बीच जिन्दगी को इसलिए घसीट रहे होंगे कि कभी परदेशी आवेगा और बहुत–से पैसे लावेगा । गरीबी के विस्तार का पार नहीं । रामदार और उसके स्त्री–बच्चों के बीच जैसे गरीबी की गहरी नदी बह रही है और वे मिल नहीं सकते ।''[२५]

परसाईजी ने निम्नवर्ग का चित्रांकन हृदय की गहराईयों से किया है । उन्होंने उन दुःख दर्द को अत्यन्त निकटता से महसूस किया है, इसलिए इस प्रकार की रचनाओं में उनकी संवेदना सर्वत्र परिलक्षित होती है । निम्न मध्यवर्ग की गरीबी, मजबूरी और लाचारी का यथार्थ वर्णन परसाईजी के साहित्य में पाया जाता है ।

(६) मध्यमवर्गीय लोगों की स्थिति :

स्वतंत्रता के बाद एक नवीन वर्ग समाज के सामने आया । वह है – मध्यम वर्ग । मध्यम वर्ग के सामने जीवित रहने की तथा रोटी की समस्या नहीं है, किन्तु वह समाज में स्थान बनाने के लिए झूठी मान–मर्यादा की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है । मध्यम वर्ग अपनी सारी उम्र उम्मीदों, आकांक्षाओ में ही काट देता है । जो है, उसका उपयोग न करके जो नहीं है, उसे पाने की इच्छा में वह कभी सुखी नहीं रह पाता । आर्थिक कठिनाईयों का सामना करते हुए भी वह अपनी झूठी इज्जत बचाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है ।

परसाईजी ने इस वर्ग के साथ भी सहानुभूति दिखायी है । उनकी 'एक मध्य वर्गीय कुता', 'दो नाकवाले लोग', 'एक तृप्त आदमी की कहानी', 'आशंका–पुत्र' जैसी बहुत–सी कहानियों में मध्यम वर्गीय समाज का बखूबी चित्रण मिलता है । परसाईजी ने 'दो नाकवाले लोग' नामक कहानी में मध्यम वर्ग की फिजूल–खर्ची एवं दिखावा करने की वृत्ति पर कलम चलायी है – ''मैं उन्हें समझा रहा था कि लड़की की शादी में टीमटाम में व्यर्थ खर्च मत करो । पर वे बुजुर्ग कह रहे थे, 'आप ठीक कहते हैं, मगर रिश्तेदारों मे नाक कट जायेगी ।' नाक उनकी काफी लम्बी थी । मेरा ख्याल है, नाक की हिफाजत सबसे ज्यादा इसी देश में होती है ।''[२६]

झूठी मान–मर्यादा, भय आदि की हीन भावना से मध्यम वर्ग दुःखी है । परसाईजी ने मध्यम वर्ग की इस मानसिकता का बहुत ही सचोट चितार दिया है ।

(७) समाज में झूठी प्रतिष्ठा बनाये रखनेवाले धनवानों की स्थितिः

समाज में एक उच्च वर्ग भी है, जो धनिक वर्ग के नाम से जाना जाता है । प्रवर्तमान युग में ये वही वर्ग है, जिन्होंने समाज में अपनी झूठी प्रतिष्ठा फैला रखी है और जो जनता का शोषण करते है । स्वतंत्रता से पहले जो

सामंतवादी लोग थे, वही आज धनवान लोग है । ऐशो आराम एवं अय्याशी का जीवन ये लोग जीते है और अपने अत्याचार के द्वारा गरीबों का शोषण करते हैं । आज के युग में मुडीवादी लोग, राजनीतिक नेता आदि सभी इसी वर्ग में आते हैं ।

परसाईजी ने ऐसे सम्पन्न वर्ग पर बहुत ही कटु प्रहार किये है और यह आघात इतना कठोर एवं तीव्र है कि बिलकुल यथार्थ की अनुभूति होती है । उन्होंने ऐसे धनिकों का मजाक नहीं उड़ाया है, बल्कि उन्हें सही स्थिति से अवगत कराया है । परसाईजी ने सम्पन्न वर्ग के उन क्रियाकलापों की आलोचना की है, जिनकी वजह से उनमें बुराईया उत्पन्न हुई है । परसाईजी ने 'दो नाकवाले लोग' कहानी में ऐसे धनवान व्यक्तियों की बात कही है, जो समाज में झूठी प्रतिष्ठा लिए हुए होते हैं, पर उनके कार्य बिलकुल उल्टे ही होते है – ''कुछ बड़े आदमी, जिनकी हैसियत है, इस्पात की नाक लगवा लेते हैं और चमडे का रंग चढवा लेते है । कालाबजार में जेल हो आये हैं, औरत खुलेआम दूसरे के साथ 'बाक्स' में सिनेमा देखती है, लड़की का सार्वजनिक गर्भपात हो चुका है ...... स्मगलिंग में पकडे गये हैं । हथकडी पड़ी है । बाजार में से ले जाये जा रहे हैं । लोग नाक काटने को उत्सुक है । पर वे नाक को तिजोरी में रखकर स्मगलिंग करने गये थे । पुलिस को खिला – पिलाकर बरी होकर लोटेंगे और नाक फिर पहन लेंगे ।''[२७]

परसाईजी ने धनवानों की स्थिति का चित्रण करके उनकी धूर्तता को समाज के सामने स्पष्ट कर दिया है ।

(८) सेवाश्रमी संस्था :

समाज में स्थापित सेवा के लिए बनायी गई सेवाश्रमी संस्थाओं की वास्तविक स्थिति कुछ ओर ही होती है । वहाँ त्याग और सेवा के नाम पर लोगों से चंदा इकट्ठा करके एक स्वच्छ धन्धा किया जाता है । ये सेवाश्रमियों लोगों के सामने तो अत्यन्त सादे–मोटे कपड़े पहनकर पाँव सिर नंगा रखते है,

उनकी आँखो में करुणा और मुख पर सरलता छायी रहती है । यह सब समाज में बदनामी से बचने के लिए उनके 'रक्षा–कवच' है । ये सब सेवाश्रमी संस्थाये प्रचार के समय तो 'मानव मात्र की सेवा करना', समाज एवं राष्ट्र की उन्नति करना, गरीबों, भूखों, अपाहिजों की सहायता, जैसे बड़े–बड़े पूण्यकार्य बताकर चंदा इकट्ठा करते है । इन चंदे का उपयोग हकीकत में तो कुछ और ही होता है । ये लोगों के ही पैसों से लोगों की आँखों में धूल झोंककर अपना उल्लू सीधा करते हैं और राजसी ठाठ से रहते हैं ।

परसाईजी ने इन सामाजिक सेवाश्रमी संस्थाओं के पाखण्ड का पर्दाफास किया है । सेवाश्रमी संस्थायें सेवा, तप, त्याग आदि के नाम पर किस प्रकार लोगों को मूर्ख बनाती है और किस तरह जनता का शोषण करके उन संस्था के लोग ऐशो–आराम की जिन्दगी व्यतीत करते हैं, इसका बहुत ही यथार्थ वर्णन परसाईजी ने 'जैसे उनके दिन फिरे' कहानी में किया है । उस कहानी में परसाईजी ने राजकुमार के मुख से वर्णन किया है – ''मैं सेवा आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने लगा । मैं वहाँ राजसी ठाठ से रहता, सुन्दर वस्त्र पहनता, सुस्वादु भोजन करता, सुन्दरियाँ पँखा झलती, सेवक हाथ जोडे सामने खडे रहते । अंतिम दिन मुझे आश्रम के प्रधान ने बुलाया और कहा, 'वत्स, तू सब कलाएँ सीख गया । भगवान का नाम लेकर कार्य आरम्भ कर दे ।' उन्हों ने मुझे ये मोटे सस्ते वस्त्र दिये और कहा – बाहर इन्हें पहनना । कर्ण के कवच–कुण्डल की तरह ये बदनामी से तेरी रक्षा करेंगे ।''[२८]

वास्तव में परसाईजी ने समाज को लूटती हुई, जनता का शोषण करती हुई, दिखावा करनेवाली सेवाश्रमी संस्थाओं का यथार्थ रूप प्रदर्शित किया है ।

समाज की स्थिति के विषय में स्वयं परसाईजी लिखते है – ''समाज में 'धन्य' और 'धिक्कार' की शक्तियाँ होती है । ये सामाजिक सदाचरण बनाये रखती है । मैंने पिछले कुछ सालों में समाज को इन शकियों को खोते देखा है । या गलत जगह प्रयोग करते देखा है । जो चालीससाल पहले धिक्कार पाते थे, वे धन्य पाने लगे है और जिन्हें धन्य मिलता था, वे अपमानित,

पीड़ित और अवहेलित हैं । सामाजिक शक्तियाँ तटस्थ भी हो गयी है । चालीस साल पहले जो घूसखोर बदनाम हो गया, वह सिर उठाकर नहीं चलता था, वह समाज से धिक्कार पाता था । आज वह सफल आदमी माना जाता है, वह ऊँचा सिर करके चलता है ।"[२६]

परसाईजी ने आजादी के पूर्व और आजादी मिलने के बाद भारत के समाज में जो परिवर्तन आ गया है, जो बुराईयाँ, विडम्बनायें समाज में फैल चुकी है, उसका यथार्थ वर्णन किया है । अपने साहित्य में सामाजिक पृष्ठभूमि को चित्रित करके परसाईजी ने पाठकों को समाज का प्रतिबिम्ब दिखाया है । परसाईजी का साहित्य पढ़ने के बाद यह उक्ति सार्थक प्रतीत होती है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है ।'

धार्मिक पृष्ठभूमि

भारत मूलतः अति धार्मिक देश है, भारतीय जनता के लए धर्म सदैव जीवनाधार रहा है । धर्म को जहाँ जीवन से भी अधिक महत्त्व दिया जाता था और आज भी दिया जाता है । परन्तु समय-समय पर कुरीतियाँ, विकृतियाँ उसमें पनपती रही । मिथ्या अन्धविश्वास, पूजा-पाठ, मूर्ति-पूजा, भाग्यवाद, बहुदेववाद, भूत-प्रेत, तीर्थयात्रा, आडम्बर आदि अनेक विसंगतियाँ समय-समय पर धर्म में आती रही । साठोतर काल में धर्म का रूप और चरित्र इतना बिगड गया है कि उसके अनुयायी ही संस्थापक धर्म गुरुओं की नीतियों के विरुद्ध आचरण करते हैं । आज की राजनीति ने धर्म को अधिक भ्रष्ट किया है । क्योंकि राजनीति तो धर्म और साम्प्रदायिकता के आधार पर ही खेल रही है । इसी कारण धर्म की धर्मान्धता घटने की बजाय बढ रही है और धर्म स्वार्थ सिद्धि का हथियार बन गया है । शोषक वर्ग अपने लाभ हेतु जनता को धर्म में ढोंग से फँसाए हुए हैं ।

परसाईजी ने धार्मिक कर्मकाण्डों, पाखण्डों, धर्म का अपनी स्वार्थसिद्धि में प्रयोग और साम्प्रदायिक भावना इत्यादि कई धर्म सम्बन्धी बातों का यथार्थ वर्णन

अपने साहित्य में किया है । वे कबीर के भक्त थे । अतः उन्होंने धर्म में फैली बुराइयों पर बहुत कुछ लिखा है । परसाईजी के धर्म सम्बन्धी विचारों के विषय में डॉ. मनोहर देवलिया लिखते हैं – ‘‘परसाई रुढ अर्थ में धार्मिक नहीं है, फिरभी यदि उन्हें धार्मिक कहा जाये, तब हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी धर्म–भावना मानवीयता के व्यापक धरातल पर खडी है । वे मनुष्य को धर्म से भी बड़ा मानते हैं । आज धर्म का जो अर्थ समाज ग्रहण करता जा रहा है, परसाई उसके विरुद्ध हैं । वे नहीं चाहते कि धर्म का सत्य स्वरूप आडम्बरों से ढक दिया जाय ।’’[३०]

परसाईजी ने धर्म के क्षेत्र की जिन विषमताओं का चित्रण किया है, वे सारी विषमतायें उनके साहित्य की धार्मिक पृष्ठभूमि का निर्देश करती है ।

(१) धर्म में अंधविश्वास :

आज के समाज में अंधविश्वासों को लेकर निहित स्वार्थ कायम हो गये हैं । पूजा, दान आदि से कल्पित विपदा का शमन करके कर्मकाण्ड चलानेवाले पुरोहित वर्ग को इससे धन, सोना, दूसरी सामग्री मिलती है । इस पुरोहित वर्ग का प्रमुख आमदनी का जरिया अंधविश्वास ही है । फलतः धर्म में अंधविश्वास की जडे मजबुत होती गयी है । आज का समाज और जनता सभी अंधविश्वास में इतने डूब–से गये है कि उन्हें बाहर निकालना मुश्किल–सा प्रतीत होता है ।

परसाईजी ने अपने साहित्य में इसी अंधविश्वास की बातों का चित्रण किया है कि किस प्रकार धर्म के क्षेत्र में अंधविश्वास गहराई से उतर गया है । ‘सदाचार का तावीज’ कहानी में परसाईजी ने राजा एवं उसकी प्रजा का तावीज में विश्वास करना अंधविश्वास की ओर ही संकेत करता है – ‘‘एक दिन दरबारियों ने राजा के सामने एक साधु को पेश किया और कहा, ‘ महाराज, एक कन्दरा में तपस्या करते हुए इन महान साधक को हम ले आये हैं, इन्होंने सदाचार का तावीज बनाया है । वह मन्त्रों से सिद्ध है और उसके

बाँधने से आदमी एकदम सदाचारी हो जाता है ।' साधुने अपने झोले में से एक तावीज निकालकर राजा को दिया । राजा ने उसे देखा । बोले – 'हे साधु, इस तावीज के विषय में मुझे विस्तार से बताओं' ..... राजा ने खुश होकर कहा – मुझे नहीं मालूम था कि मेरे राज्य में ऐसे चमत्कारी साधु भी है । महात्मन हम आपके बहुत आभारी है । आपने हमारा संकट हर लिया ।''[३१]

इससे परसाईजी के समकालीन युग में धर्म के क्षेत्र में अंधविश्वास की मजबुत पकड़ का संकेत मिलता है, आज भी यह पकड़ उतनी ही मजबुत दिखाई देती है ।

(२) धार्मिक पाखण्ड :

समाज में आज धार्मिक पाखण्ड बढ़ गये हैं । धर्म के नाम पर साधु – संत आदि कई लोग भोली–भाली जनता को मूर्ख बनाते है और उनका शोषण करते हैं । ऐसे धार्मिक पाखण्डी स्वयं तो ऐयाशी में डूबे रहते है और जनता को भोग का त्याग करने का उपदेश देते है । नाम मात्र के स्वामी सीधी–सादी भोली मानव–जाति को गुमराह करके अपना स्वार्थ साध लेते हैं । प्रवर्तमान युग में ऐसी स्थिति सब जगह देखने को मिलती है । कहने को तो आधुनिक काल है, लेकिन धार्मिक पाखण्ड की कोई सीमा दिखाई नहीं देती ।

परसाईजी एक चेतना सम्पन्न, बुद्धिजीवी होने के साथ साथ संवेदनशील लेखक है । अतः उनकी रचनाओं में जागरुकता स्वाभाविक ही है । उन्होंने 'साधना का फौजदारी अंत' नाम कहानी इस प्रकार के पाखण्डों का भंडा फोडने के लिए लिखी है । उन्होंने इस कहानी में धार्मिक पाखण्ड के विषय में आराम प्रिय महंत पर कटु प्रहार किया है – ''तो फिर गुरु का सत्य अलग है और तुम्हारा सत्य अलग है । दोनों के सत्य एक नहीं है । गुरु का सत्य वह है, जिससे बँगला, कार और रूपया जैसी भौतिक प्राप्ति होती है और

तुम्हारे लिए वे कहते है कि भौतिक लाभ के संघर्ष में मत पड़ो । यह तुम्हारा सत्य है । इनमें कौन-सा सत्य अच्छा है ? तुम्हारा या गुरु का ?''[३२]

अंत में जब सत्य की खोज में निकले हुए व्यक्ति को आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है, तब वह अपना क्रोध स्वामीजी पर उतारता है और उसे पिटता है । समाज में इन स्वामीजी जैसे पाखण्डी धर्म के नाम पर पाखण्ड करते हुए धर्म को बुराई की खाई में धकेल देते है । परसाईजी के साहित्य में धर्म के इन पाखण्डों का पर्दाफाश हुआ है ।

(३) धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता फैलाना :

प्रवर्तमान युग में कुछ ऐसे लोग भी है, जो धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता फैलाने का कार्य करते हैं । विशेषकर कुछ ऐसे राजनीतिक लोग है, जो जनता को धर्म की बात कहकर भड़काते है और आपस में साम्प्रदायिकता बढाते हैं । ऐसे लोग गाय जैसे पशुओं को भी नहीं छोड़ते । गौ सेवा के नाम पर लोगों का ध्यान दूसरी ओर लगा देते हैं और अपना स्वार्थ बना लेते है । गौ सेवा को राजनीति का मुद्दा बनाकर वोट की राजनीति में उसका प्रयोग किया जाता है । वहाँ हिन्दू धर्म तथा गौ सेवा दोनों ही महत्त्वहीन रहती है । धर्म के नाम साम्प्रदायिकता जोड़कर अपने स्वार्थ को साधना ही ऐसे लोगों का मुख्य कार्य होता है ।

परसाईजी ने धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता फैलानेवाली शक्तियों को पहचाना है और जनता के सम्मुख इन शक्तियों का पर्दाफाश भी किया है । उन्होंने 'एक गोभक्त से भेंट' नामक कहानी में धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देनेवाली तथा उसका राजनीतिक लाभ उठानेवाली शक्ति का विवेचन किया है । परसाईजी ने ऐसे तत्त्वों की ओर संकेत किया है – ''जनता जब आर्थिक न्याय की माँग करती है, तब उसे किसी दूसरी चीज में उलझा देना चाहिए, नहीं तो वह खतरनाक हो जाती है । जनता कहती है – हमारी माँग है – महँगाई बन्द हो, मुनाफाखोरी बन्द हो, वेतन बढ़े, शोषण बन्द हो, तब

हम उससे कहते है कि नहीं, तुम्हारी बुनियादी माँग गौ रक्षा है । बच्चा, आर्थिक क्रान्ति की तरफ बढ़ती जनता को हम रास्ते में ही गाय के खूँटे से बाँध देते है, यह आंदोलन जनता को उलझाये रखने के लिए हैं ।''[३३]

समाज में बहुत से ऐसे तत्त्व है, जो जनता में धार्मिक संकीर्णता का बीजारोपण करते हैं । परसाईजी ने ऐसे तत्त्वों की ओर अंगुली निर्देश करके उसका सफल यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है ।

(४) धर्म का अनुचित प्रयोग करनेवाले स्वार्थी तत्त्व :

स्वातंत्र्योत्तर भारत में ऐसे बहुत से स्वार्थी तत्त्वों का साम्राज्य छा गया है, जो धर्म का अनुचित प्रयोग करते हैं । धर्म के कारण स्वयं का लाभ होता है बस यही उनकी दृष्टि में योग्य है । आम जनता को कोई कष्ट होता है या नहीं, इससे उनको कोई सरोकार होता नहीं है । नाम मात्र के भगत बनकर धर्म के रखवाले होकर आधी-आधी रात तक लाउड स्पीकर पर भजन कीर्तन किया करना, भजन को भी विज्ञापन करनेवाले लोग स्वयं को ईश्वर भक्त समझना, विद्यार्थियों, मरीजों आदि का ध्यान रखे बिना भक्ति का यह ढोंग रचना कहाँ तब उचित है ? धर्म एवं ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा विज्ञापन की वस्तु नहीं हो सकती, यह तो केवल धर्म का अनुचित प्रयोग करके अपना स्वार्थ साधना ही है ।

परसाईजी ने 'भगत की गत', 'एक वैष्णव की कथा', 'देवभक्ति', 'भगवान को घूस' आदि बहुत-सी कहानियों में इसका चित्रण किया है । 'भगत की गत' कहानी इसका सार्थक उदाहरण है । परसाईजी ने इस कहानी में धर्म का अनुचित प्रयोग करने के विरोध में व्यंग्य कसा है – ''भगवान ने कहा – फिर अन्तर्यामी को सुनाने के लिए लाउड स्पीकर क्यों लगाते थे ? मैं क्या बहरा हूँ ? यहाँ सब देवता मेरी हँसी उडाते हैं । मेरी पत्नी तक मजाक करती है कि यह भगत तुम्हे बहरा समझता है ।''[३४]

ऐसे ही 'देव भक्ति' नामक कथा में परसाईजी ने भक्ति भावना से रहित भक्तों पर प्रहार किया है, जहाँ गणेशजी का भी विभाजन किया जाता है । सबके गणेशजी बराबर नहीं हो सकते, बल्कि सवर्णो के गणेश को उच्च स्थान मिलता है । परसाईजी ने अपने साहित्य में ऐसे तत्त्वों पर करारा प्रहार किया है, जो धर्म का अनुचित प्रयोग करके समाज को धर्म की कुरूपता से भर देते है ।

(५) धर्म एवं व्यापार : दोनों को एक साथ जोड़ना :

साठोतर काल में कुछ व्यक्ति ऐसे भी है, जो धर्म एवं व्यापार दोनों को एक ही तराजू में तोलकर, दोनों का समान मूल्य लगाते है । इनकी दृष्टि में धर्म एवं व्यापार दोनों समान है । धर्म के नाम पर व्यापार करना और अनैतिक कार्य करके उसे धर्म का उपनाम देना इनके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं होती । जनता के पैसों से अपना काम चलाना और धर्म की आड में ऐसे कर्म करना ऐसे लोगों के लिए नैतिक कार्य है । कहने का तात्पर्य यही है कि धर्म और व्यापार दोनों को एक साथ जोड़कर कुछ लोग अपना जीवन निर्वाह करते हैं ।

परसाईजी ने ऐसे लोगों के सामने आवाज उठायी है । उन्होंने, 'वैष्णव की फिसलन' कहानी में धर्म को व्यापार के साथ जोड़नेवाले व्यक्तियों पर करारा व्यंग्य किया है – ''वैष्णव करोडपति है । भगवान विष्णु का मन्दिर, जायदाद लगी है । भगवान सूदखोरी करते हैं । ब्याज से कर्ज देते हैं । वैष्णव दो घण्टे भगवान विष्णु की पूजा करते है, फिर गादी–तकियेवाली बैठक में जाकर धर्म को धन्धे से जोड़ते है । धर्म धन्धे से जुड जाय इसी को योग कहते हैं । कर्ज लेनेवाले आते हैं । विष्णु भगवान के वे मुनीम हो जाते हैं । कर्ज लेनेवाले से दस्तावेज लिखवाते हैं – दस्तावेज लिख दी रामलाल वल्द श्यामलाल ने भगवान विष्णु वल्द नामालूस को ऐसा जो कि .... ।''[३५]

आगे चलकर वह वैष्णव उन पैसों से होटल खोलकर चलाता है और उस होटल में सबकुछ धर्म के विरुद्ध एवं अनैतिक कार्य करता है । परसाईजी ने ऐसे व्यक्तियों को कतई माफ नहीं किया, जो धर्म के साथ व्यापार जोड़कर धर्म के क्षेत्र को अपवित्र व गन्दा करते हैं, जिनकी दृष्टि में धर्म एवं व्यापार में कोई फर्क ही नहीं है ।

(६) धर्म के झूठे आदेश का विरोध :

प्रवर्तमान युग में कुछ धर्म के ठेकेदारोंने समाज में धर्म के झूठे आदेश फैलाये है, जो सर्वथा धर्म के विरुद्ध है । ऐसे धर्म के झूठे आदेश धर्म के क्षेत्र को संकुचित एवं कलुषित करते है । धर्म सदैव माता एवं बहन का सम्मान करना सिखाता है, न कि उससे दूर भागना । गृहस्थ में रहकर भी मन, कर्म, वचन से सच्चा संन्यासी बन सकते है । इसके लिए भगवे वस्त्र धारण करके, झूठे आदर्शो पर चलना एक पाखण्ड ही है । मन में धूर्तता रखना और बाह्य रूप से संन्यासी बने रहना धर्म नहीं है । धर्म का आदेश है – मन एवं कर्म से पवित्र रहना, न कि बाह्याचारों का पालन करना । समाज में कुछ संन्यासी बने लोग धर्म के जूठे आदेश फैलाकर जनता का शोषण करके स्वयं को धार्मिक कहते है, वास्तव में उनके मन में केवल विकृति ही होती है और जो धर्म के नाम पर कलंक है ।

परसाईजी कभी भी धर्म के खिलाफ नहीं थे, पर वे सच्चे एवं आदर्श धर्म को ही स्वीकारते हैं । उन्होंने 'राग–विराग' कहानी में इस बातकी पुष्टि दी है । एक स्त्री बस में चढकर एक संन्यासी के पास बैठने जाती है, तब संन्यासी उसे वहाँ बैठने के लिए मनाकर देता है, क्योंकि उसका मानना था कि धर्म का ऐसा आदेश है, तब स्त्री उसका उत्तर बड़े ही सही ढंग से देती है । इसका वर्णन परसाईजी ने चोटदार किया है – "वह कहने लगी – 'महाराज, आप तो पिता तुल्य है । मैं एक किनारे बैठ जाऊँगी । संन्यासी के ही पास तो हम निर्भय और निःसंकोच बैठ सकती है ।' ..... संन्यासी बोले

– नहीं, नहीं देवी, मुझे संकट में न डालो, मेरे गुरु की आज्ञा है । माता और पुत्री का संग भी हमारे लिए निषिद्ध है । धर्म का आदेश है । ..... स्त्री अब तमतमा गयी है । उसने बड़े रोष और घृणा से कहा – 'महाराजजी, जो धर्म माता और पुत्री से डरने के लिए कहता है, वह धर्म नहीं हो सकता । वह पाखण्ड है' ।''[३६]

परसाईजी यहाँ कहना चाहते है कि जो सच्चा संन्यासी एवं विरागी है, वह कभी भी मृगजल के पीछे नहीं भागता । कोई भी धर्म कभी भी माता, पुत्री या किसी स्त्री से डरने के लिए नहीं कहता । परसाईजी ने ऐसे धर्म के झूठे आदेशों का विरोध व्यक्त किया है ।

(७) धर्म एवं अमानवीयता :

आधुनिक युग में धर्म में पवित्रता जैसी कोई चीज दिखाई ही नहीं देती । समाज में बहुत सारे ऐसे लोग है, जिन्होंने धर्म को अमानवीयता के साथ जोड़ दिया है । कहीं पर भी मानवीयता के दर्शन नहीं होते । धर्म के क्षेत्र में अमानवीय और अनैतिक आचरण ऐसे लोगों के लिए कोई बुरी बात है ही नहीं । यह सबकुछ तो ईश्वर के आदेशानुसार ही हो रहा है – ऐसी उनकी मान्यता होती है । धर्म के नाम पर होटल खोलना, फिर उस होटल में मास–मच्छी का खाना, शराब, कैबरे, स्त्री आदि सभी का प्रयोग करके होटल को संपूर्ण रूप से अमानवीय ढंग से चलाना और फिर भी उसे धर्म का नाम देकर धर्म से जोड़ना आधुनिक युग के लोगों की वृत्ति बन गयी है । प्रवर्तमान युग में धर्म के भीतर मानवीयता एवं नैतिकता का अंश मात्र भी देखना दुर्लभ प्रतीत होता है ।

परसाईजी ने धर्म के नाम पर अमानवीयता का आचरण करनेवाले लोगों के मानस का भंडाफोड किया है । उनकी 'वैष्णव की फिसलन' कहानी इसी बात पर लिखी गयी व्यंग्यकथा है । उन्होंने इस कहानी में धर्म एवं अमानवीयता पर कठोर प्रहार किया है । जब वैष्णव भक्त एक आधुनिक

होटल खोलता है, तब अलग–अलग प्रकार के लोग वहाँ खाना खाने के लिए आते हैं । अलग–अलग सवाल करते हैं, तब भक्त की अंतरात्मा प्रभु के रूप में तत्काल इसका तर्क प्रस्तुत कर देते हैं । समय आधुनिक है और होटल बिना शराब के नहीं चलता, प्रभु तत्काल तर्क प्रस्तुत करते हैं – यह तो सोमरस है, इसमें क्या पाप ? फिर बिना कैबरे के संकट आता है, तब भक्त की अंतरात्मा में से प्रभु की आवाज आती है – ‘‘मूर्ख, कृष्णावतार में मैंने गोपियों को नचाया था । चीर हरण तक किया था । तुझे क्या संकोच है ?’’[३७]

इस तरह प्रत्येक अनुचित एवं अमानवीय आचरण के पक्ष में भक्त की अंतरात्मा से प्रभु तर्क प्रस्तुत कर देते हैं । फलतः सर्वत्र अमानवीयता छा जाती है । धर्म के साथ अमानवीयता को जोडनेवाले लोगों की इस अमानवीय वृत्ति का परसाईजी ने घटस्फोट किया है ।

(८) धर्म में जाति–पाँति :

धर्म जो एक समय में पवित्र और श्रद्धा से परिपूर्ण था । आज मात्र पाखंड और आडंबर पर टिका है । मंदिरो, गुरुद्वारों में अत्याचार, अनैतिक कार्य हो रहे हैं । इनकी पवित्रता समाप्त हो गयी है । अब यह दंगा स्थल बन कर रह गये हैं । वैज्ञानिक युग में भी जाति–भेद की कट्टरता उसी रूप में विद्यमान है । आज के युग में धर्म के नाम पर कई जातियों में लड़ाईयाँ चल रही है । आधुनिक युग में हिन्दू एवं मुसलमान दोनों जातियाँ धर्म के नाम पर एक दूसरे का लहू बहा रही है । आए दिन दोनों जातियों में दंगे होते हैं और कई लोग मरते है । धर्म के नाम पर जाति–भेद को दूर करने का प्रयत्न सब करते है, लेकिन इस जाति–पाँति के भेद को मिटाना असंभव लगता है । आज के युग की यह सबसे ज्यादा ज्वलंत समस्या है ।

परसाईजी के लिए मनुष्य की जाति मात्र मनुष्य है । उन्होंने इसका ठोस चिन्तन प्रस्तुत किया है । परसाईजी ने समाज एवं धर्म की सबसे बड़ी

बुराई जाति–पाँति को ही बताया है । उन्होंने कहीं भी सवर्णो का समर्थन नहीं किया है । उनका मानना था कि हिन्दू, मुस्लिम, सिख या ब्राह्मण, क्षत्रिय जैसा विभाजन न केवल खतरनाक है, बल्कि अत्यंत घातक एवं उन्नति में बाधक है । इसी कारण उन्होंने प्रत्येक जाति पर व्यंग्य किया है । 'दो नाकवाले लोग' कहानी में उन्होंने ब्राह्मणों पर करारा प्रहार किया है, ''जो ब्राह्मण ग्यारह रूपये में शनि को उतार दे, पच्चीस रूपयों में सगोत्र विवाह करा दे, मंगली लड़की का मंगल पन्द्रह रूपयों में उठाकर शुक्र के दायरे में फेंक दे, वह लग्न सितम्बर से लेकर मार्च तक सीमित क्यों नहीं कर देता ?... और फिर ईसाई और मुसलमानों में जब बिना लग्न शादी होती है, तो क्या वर–वधू मर जाते है ? आठ प्रकार के विवाहों में जो 'गन्धर्व विवाह' है वह क्या है ? वह यही शादी है जो आज होने लगी है, कि लड़का–लड़की भागकर कहीं शादी कर लेते हैं ।''[३८]

परसाईजी ने 'मौलाना का लड़का ! पादरी की लड़की' कहानी में धर्म–परिवर्तन करवानेवाले लोगों की कटु आलोचना की है । उन्होंने धर्म के क्षेत्र में जातिवाद देखा है, उसे सहते हुए महसूस किया है और फिर अपने साहित्य में उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की है ।

परसाईजी ने समकालीन युगीन जो धार्मिक परिस्थितियाँ थी, उसका बड़ा ही आलोचनात्मक ढंग से परिचय दिया है । उनका साहित्य आधुनिक युग का आईना है, जिसमें धर्म का वास्तविक स्वरूप भी देखा जा सकता है । धर्म के संबंध में परसाईजी लिखते है, – ''मनुष्यसे बड़ा कोई नहीं है । मनुष्य का जिसे कल्याण होता है, वही धर्म है । जो मनुष्य का हित करता है, वही साधु है । जो मनुष्य को ऊपर उठाता है, वही सन्त है । ईश्वर की सत्ता भी मनुष्य ने इसीलिए स्वीकार की है कि वह त्राता है, रक्षक है, लोकहितकारी है । इसलिए मानव–कल्याण के अतिरिक्त कोई कसौटी नहीं है ।''[३९]

यही सत्य जान ने के बाद ही परसाईजी ने धर्म के क्षेत्र में फैले पाखंडी साधु–संतो, धर्म के झूठे आदेश, जातिवाद, पाखंडों, अंधविश्वासों, धार्मिक

रुढ़ियों आदि का विरोध किया है । उन पर कटु प्रहार करके धर्म की वास्तविक स्थिति से जनता को अवगाह किया है । धर्म समाज का आधार–स्तंभ होता है । धर्म की विकृतियाँ समाज को कलुषित करती है। अतः धर्म की इन विसंगतियों को परसाईजी ने अपने साहित्य के द्वारा समाज के सामने प्रदर्शित की है, जिससे धर्म के क्षेत्र में पवित्रता आये । परसाईजी के साहित्य में धार्मिक पृष्ठभूमि का यथार्थ चित्रण देखने से तत्कालीन युग की धार्मिक परिस्थिति का वास्तविक रूप दृष्टिगोचर होता है ।

❀ आर्थिक पृष्ठभूमि :

स्वाधीनता के बाद जमींदारी प्रथा पूरी तरह से नष्ट हो गयी, इसके बाद पूँजीवादी व्यवस्था को खत्म करने का प्रयास भी हुआ लेकिन उत्तरोतर हमारा देश इसी व्यवस्था के चंगुल में फंसता चला गया । उद्योगो में ही नहीं, जीवन का हर क्षेत्र पूँजीवादियों के कब्जे में हैं । परिणाम स्वरूप समाज में भयानक विषमता फैलती गयी । अधिक धनराशि पूँजीपति वर्ग के पास केन्द्रिकृत होने के के कारण राजनीतिक सत्ता पर उसका अधिकार बढ़ गया । भारतीय राजनीति में अर्थ का महत्त्व बढ़ गया । चन्दे के रूप में इन पूँजीपतियों से धन प्राप्त करने के कारण राजनीतिक सत्ता अनायास उनकी ओर झुक गयी । सरकारी सुरक्षा पाकर पूँजीपति वर्ग ने सरकार की अर्थ–व्यवस्था के समानान्तर काले धन की व्यवस्था चलायी । उत्पादन और वितरण–व्यवस्था पर से सरकारी नियंत्रण छूटता गया । परिणामतः रोजमर्रा की चीजों का मिलना मुश्किल हो गया और महँगाई दिनो–दिन बढ़ती गयी । रूपये का मूल्य निरंतर गिरता गया । उसकी क्रयशक्ति घटती गयी । आर्थिक विकास के नाम पर जो अन्धी लूट मची उसकी स्थिति बड़ी भयानक हो गयी ।

परसाईजी के युग में राजनीतिक क्षेत्र के पाखंड ने आर्थिक क्षेत्र को पूरी तरह से ग्रस लिया था । अतः उनके साहित्य में आर्थिक पृष्ठभूमि का यथार्थ चित्रण पाया जाता है । राजनीतिज्ञों के कुत्सित खिलवाड के कारण देश की

आर्थिक स्थिति बराबर बिगड़ती गयी है । उनके संरक्षण में प्रशासनिक अधिकारी एवं व्यापारी वर्ग ने देश की आर्थिक स्थिति को पूर्णतया खोखला बना दिया । परसाईजी ने इन सबका वास्तविक वर्णन किया है । उनके साहित्य में आर्थिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत जिन–जिन बातों का उल्लखे मिलता है, उसका विवरण देखा जाय, तो उनकी सहानुभूति विशेषकर सर्वहारा एवं निम्न मध्यवर्ग के प्रति रही है, जो आर्थिक विषमताएँ एवं पूँजीवादी वर्ग के शोषण का शिकार बने हुए है । परसाईजी ने आर्थिकता के सभी पहलुओं पर अपनी कलम चलायी है ।

(१) आर्थिक विसंगतियाँ एवं विषमता :

पूँजीपतियों एवं राजनीतिक नेताओं के कारण स्वाधीन भारत की आर्थिक परिस्थिति अत्यंत दयनीय बन गयी । जिसकेकारण देश में महँगाई, आर्थिक विसंगतियाँ, असंतुलित अर्थव्यवस्था, पूँजीवाद, अन्न का अभाव, मिलावट, कालाबाजारी, रिश्वत, स्मगलिंग, बेरोजगारी जैसी विषमतायें निरंतर बढ़ती गयी । सर्वत्र आर्थिक विसंगतियाँ एवं विषमतायें देखने को मिलती है । आर्थिक विषमता की स्थिति में विलक्षण प्रकार की विडंबना पैदा हो जाती है । गरीब प्रजा भूख से मरती है और अमीर प्रजा धन के कारण दुःखी होती है ।

परसाईजी ने आर्थिक विसंगतियों एवं विषमताओं का अत्यंत सूक्ष्म अवलोकन किया है । उन्होंने सतही स्तर पर आर्थिक स्थिति की समीक्षा नहीं की है, अपितु उसके कारणों की गहरी छान–बीन की है । सर्वहारा वर्ग के पास रोटी का अभाव है, तब पूँजीपति टैक्स की बीमारी से मरे जाने की बात करता है । अमीरों का अमीरी से मरना विचित्र विडंबना है । परसाईजी ने लिखा है – ‘‘चिकित्सा विज्ञान में इसका कोई इलाज नहीं है । बड़े–से–बड़े डाक्टर को दिखाइए और कहिए – यह आदमी टैक्स से मर रहा है । इसके प्राण बचा लीजिए । वह कहेगा–इसका हमारे पास कोई इलाज नहीं है । लेकिन इसके भी इलाज करनेवाले होते है, मगर वे एलौपैथी या होमियोपैथी पढ़े

नहीं होते । इसकी चिकित्सा पद्धति अलग है । इस देश में कुछ लोग टैक्स की बीमारी से मरते हैं और काफी लोग भुखमरी से ।"[४०]

स्वातंत्र्योत्तर समाज में जो आर्थिक विषमता एवं विसंगति छायी हुई है, उसका सचोट वर्णन परसाईजी ने किया है ।

(२) असंतुलित अर्थ व्यवस्था एवं भारतीय जनमानस :

स्वातंत्र्योत्तर भारत की असंतुलित अर्थ व्यवस्था अपरिचित नहीं है । अर्थ व्यवस्था पर चन्द पूँजीपतियों का ही नियंत्रण है । परिणामतः समाज में उच्च वर्ग, निम्नवर्ग जैसे प्रजा के विभाग हो गये । जो धनवान व्यक्ति है, उनके पास धन की कोई कमी नहीं है, वे सुख-सुविधा पूर्ण जीवन जीते है, जबकि निम्नवर्ग के पास धन तो दूर की बात है, पेट भरने के लिए रोटी भी नहीं है । ये हमारी असंतुलित अर्थ-व्यवस्था है । उसके सामने भारतीय जनमानस की मानसिकता पीड़ित है । अर्थ व्यवस्था के साथ संपूर्ण जनमानस जुड़ा होता है । जहाँ आर्थिक संकट नहीं होता, वहाँ का जन-मानस उदार होता है । भारतीय जनता अपने हक के लिए संघर्ष नहीं, बल्कि किसी भी कीमत पर शांति चाहती है ।

भारत की असंतुलित अर्थ-व्यवस्था का परसाईजी ने सूक्ष्म अवलोकन करके उसके सही स्वरूप का चित्रांकन किया है । उन्होंने भारतीय जनमानस को भी अच्छी तरह से पहचाना है । असंतुलित अर्थ-व्यवस्था के प्रति लेखक के मन में आक्रोश है, वह केवल सुधार नहीं चाहते हैं, अपितु सड़ी-गली अर्थ-व्यवस्था को पूरी तरह से परिवर्तन करना चाहते हैं । असंतुलित अर्थ व्यवस्था के कारण भारतीय जनता कितने दुःखों को भोग रही है, इसका यथार्थ चित्रण परसाईजी की 'भूख के स्वर' नामक कहानी में देखने को मिलता है । जहाँ भारतीय जनता दो वक्त की रोटी माँगती है । इस अर्थ व्यवस्था ने उनको सिर्फ भूख ही दी है – "मेरा सिर चकराने लगा । सामने वह भी खड़ा हो रहा था, जो पीटा गया था । वह भी रो रहा था, जिसने पीटा

था । किसी तीसरे ही प्रबल दुश्मन ने दोनों को मारा था, यह रघुनाथ भी भूखा तीन दिन से । गाड़ीवान भी भूखा – तीन दिन से । सब भूखे... शिक्षित इन्सान भूखा । अपढ़ गँवार भी भूखा । और पशु भी भूखा ।''[४१]

परसाईजी ने स्वाधीन भारत की इस विकटभरी परिस्थिति को वास्तविकता के साथ वर्णित किया है ।

(३) पूँजीवादी व्यवस्था के तले पिसता हुआ सर्वहारा वर्ग :

भारत एक गण राज्य है, किन्तु यहाँ के अर्थतंत्र पर पूँजीवादी व्यवस्था का पूर्ण आधिपत्य है । सरकारी नीतियों का पूर्ण लाभ इन्हें ही प्राप्त होता है । चन्द लोगों के हाथ में सारी व्यवस्था कैद होकर रह गयी है । सर्वहारा वर्ग इन्हीं के तले पिस रहा है, आर्थिक वैषम्य सर्वत्र व्याप्त है । गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बितानेवाले सर्वहारा वर्ग के लोग आजादी के इतने साल बाद भी वहीं है । जो स्थिति आजादी के पूर्व सर्वहारा वर्ग की थी, वही स्थिति आज भी है । यह वर्ग सदैव से पूँजीवादी व्यवस्था के तले पिस रहा है ।

परसाईजी ने अपने साहित्य के माध्यम से सर्वहारा वर्ग की इस विडंबना को व्यक्त किया है । एक तरफ रामदास, रामनाथ, भोलाराम जैसे गरीब व्यक्ति है, तो दूसरी तरफ आइलकिंग, साहब महात्वाकांक्षी एवं भैयासाहब जैसे लोग है, जो सारे देश की अर्थ व्यवस्था को अपनी मुठ्ठी में जकड़े हुए है तथा सारे देश को अँगूठा दिखा रहे हैं । परसाईजी ने 'भोलाराम का जीव' में पूँजीपति व्यवस्था के सामने दुःखी सर्वहारा वर्ग की स्थिति का चित्रण किया है, ''गरीबी की बीमारी थी । पाँच साल हो गये, पेंशन पर बैठे, पर पेंशन अभी तक नहीं मिली । हर दस–पन्द्रह दिन में एक दरख्वास्त देते थे, पर वहां से या तो जवाब आता ही नहीं था और आता, तो यही कि तुम्हारी पेंशन के मामले पर विचार हो रहा है । इन पाँच सालों में सब गहने बेचकर हम लोग खा

गये । फिर बरतन बिके । अब कुछ नहीं बचा था । फाके होने लगे थे । चिन्ता में घुलते-घुलते और भूखे मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दिया ।"[४२]

परसाईजी ने भारत में पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था एवं उसके कारण सर्वहारा वर्ग का जो शोषण हो रहा है, उसका वर्णन करके आर्थिक परिस्थिति पर प्रकाश डाला है ।

(४) परनिर्भरता और अन्न की समस्या :

स्वातंत्र्योत्तर काल में देश के नेता समाजवाद के सिद्धांतों के आधार पर पंचवर्षीय योजनाओं को चलाने और देश को आत्मनिर्भरता की दिशा में ले जाने का दावा बराबर करते रहे । परंतु असलियत में देश की आर्थिक नीति को अमेरिका जैसे पूँजीवादी देश तथा उनके पिट्ठु भारत के पूँजीपति प्रभावित तो नहीं, अपितु नियंत्रित अवश्य करते रहे । फलतः देश में परनिर्भरता आ गयी और छठे दशक में अन्न का अभाव होने लगा । परिणामतः अन्न की समस्या भी होने लगी । अन्न का अभाव होने से अकाल की स्थिति आई । भारत कृषि प्रधान देश है, फिर भी आर्थिक व्यवस्था के अभाव में यहाँ अकाल की स्थिति निर्मित हुई । कृषि प्रधान देश होते हुए भी अन्न का अभाव होना इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है ?

देश की इस स्थिति का बड़ा ही सचोट वर्णन परसाईजी के साहित्य में देखने को मिलता है । उन्होंने देश की परनिर्भरता और अन्न का अभाव होने से सूखे एवं अकाल की स्थिति का भी बड़ा भयंकर एवं हृदयद्रावक चित्रण किया है । देश परनिर्भर होने के कारण दूसरों के इशारों पर चलने को बाध्य होता है । अन्न के लिए विदेशी जहाजों की प्रतीक्षा करने की भारतीय जनता की विडंबनापूर्ण स्थितिका चित्रण परसाईजी के साहित्य में देखने को मिलता है । उन्होंने 'अकाल उत्सव' नामक रचना में सूखे का बड़ा ही भयानक एवं आतंककारी चित्र प्रस्तुत किया है – "आजकल अखबारों में आधे-पृष्ठों पर सिर्फ अकाल और भुखमरी के समाचार छपते हैं । अगर अकाल ग्रस्त आदमी

सडक पर पड़ा अखबार उठाकर उतने पन्ने खा ले, तो महीने भर भूख नहीं लगे । पर इस देश का आदमी मूर्ख है । अन्न खाना चाहता है । भूखमरी के समाचार नहीं खाना चाहता ।''[४३]

परसाईजी ने देश की परनिर्भरता एवं अन्न के अभाव की स्थिति का निरूपण करके देश की आर्थिक व्यवस्था पर व्यंग्य प्रस्तुत किया है ।

(५) महँगाई और मिलावट :

आज देश में महँगाई और मिलावट की स्थिति पैदा हो गयी है । एक ओर महँगाई विकासशील देश की आवश्यक शर्त होती है, तो दूसरी और व्यापारी वर्ग इस शर्त या स्थिति का लाभ उठाने से कभी नहीं चूकता । वह कृत्रिम अभाव पैदा करके महँगाई को दारुण एवं असहय स्थिति तक पहुँचाता है । दूसरी तरफ ऐसी स्थिति है कि आज के युग में मिलावट के बिना कोई चीज शुद्ध रूप में नहीं मिलती । इस विडंबनापूर्ण स्थिति तक आज हम पहुँच गये है कि शुद्ध क्या है और मिलावटी क्या है, इसको पहचान ने की हमारी विवेकशीलता ही समाप्त हो गयी है । समग्र देश में महँगाई एवं मिलावट का साम्राज्य छा गया है । आम जनता की स्थिति बड़ी ही दयनीय हो गयी है ।

परसाईजी ने देश में बढ़ती हुई महँगाई और मिलावट की स्थिति के लिए जिम्मेदार राजनेताओं और व्यापारियों के प्रति तीव्र प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की है । महँगाई की स्थिति पैदा करके केवल अपना नफा देखनेवाले मुनाफाखोरों पर प्रहार करते हुए उन्होंने लिखा है – ''जो लोग दवाओं में मुनाफाखोरी की निन्दा करते हैं, वे समझे कि महँगी दवाओं से बीमारियाँ डरने लगी हैं । वे आती ही नहीं । मगर दवाएँ सस्ती हो जायें, तो हर किसी की हिम्मत बीमार पड़ने की हो जायेगी । जो दवा में मुनाफाखोरी करते हैं, वे देशवासियों को स्वस्थ रहना सिखा रहे हैं । मगर यह कृतध्न समाज उनकी निन्दा करता है ।''[४४]

ऐसे ही मिलावट की स्थिति का विरोध करते हुए उन्होंने ''जैसे उनके दिन फिरे' कहानी में व्यंग्य कसा है, ''राजधानी में मेरी बहुत बड़ी दूकान थी । मैं घी में मूँगफली का तेल और शक्कर में रेत मिलाकर बेचा करता था । मैंने राजा से लेकर मजदूर तक को साल भर घी शक्कर खिलाया । राज-कर्मचारी मुझे पकड़ते नहीं थे, क्योंकि उन सबको मैं मुनाफे में से हिस्सा दिया करता था ।''[४५]

भारतीय अर्थ व्यवस्था में जो महँगाई एवं मिलावट का शासन चल रहा है और समाज उसे भुगत रहा है, उसका यथार्थ विवरण परसाईजी के साहित्य में पाया जाता है ।

परसाईजी का साहित्य आधुनिक युग का साहित्य है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक परिस्थिति बहुत अधिक कलुषित हो गयी है । देश की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति की वास्तविकता की ओर सरकार का भी ध्यान नहीं जाता । परसाईजी जैसे चेतना सम्पन्न रचनाकार ने इस स्थिति का सूक्ष्म अवलोकन किया है । उन्होंने इस बात का संकेत दिया है कि आर्थिक विसंगतियों की जड़ कहाँ है और इन विषमताओं को संपूर्णतः नष्ट कैसे किया जा सकता है । प्रो. राधेमोहन शर्मा लिखते है, ''युग का संपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, वैयक्तिक एवं सामूहिक दुर्बलताओं व नष्ट होनेवाले महान मूल्यों की पीड़ा को स्वर देने की इमानदार कोशिश परसाईजी के व्यंग्य लेखनों में विद्यमान है ।''[४६]

स्वतंत्रता के इतने वर्षो बाद भी देश की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं है । अतः परसाईजी ने अर्थतंत्र से संबंधित अनेक पक्षों पर लिखा है । रिश्वत, आय का वितरण और अर्थनीति का गहरा संबंध है । परसाईजी मानते हैं कि आय का वितरण सही नहीं है, इसी कारण रिश्वत है और उन्होंने अपनी रचनाओं में इस स्थिति को स्पष्ट किया है । परसाईजी ने अपने युग की आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण करके उसकी विभिन्न विसंगतियों का घटस्फोट किया है ।

❀ शैक्षणिक पृष्ठभूमि :

आधुनिक युग में मानवीय उत्थान का एक मात्र आधार शिक्षा है । शिक्षा वह महत्त्वपूर्ण साधन है, जिसके द्वारा कोई नवोदित राष्ट्र अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति कर सकता है । हमारा भारत गाँवों में बसता है अतः राष्ट्रीय विकास योजना के अंतर्गत उन ग्राम-वासियों तक शिक्षा को पहुँचाना अनिवार्य है । अन्यथा राष्ट्र के विविध अँचल अज्ञान एवं कूपमण्डूकता में घिर कर जैसे प्रगतिहीन रह जायेंगे और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की धारा अवरुद्ध होकर रह जायेगी । स्वातंत्र्योत्तर काल में योजनाओं के अनुरूप शिक्षा का प्रसार नगरों को अतिक्रान्त कर सुदूर गाँव में भी होने लगा था । शिक्षा प्रसार के मूल में सिद्धांत और आदर्श तो बड़े-बड़े बनाये गये हैं, लेकिन यहाँ भी वही दुर्घटना हुई जो अन्य क्षेत्रों में हुई थी । राजनीति की दूषित-विषाक्त वायु शिक्षा के क्षेत्र को भी घातक बना गयी । शिक्षा के क्षेत्र पर राजनीति का आक्रमण दो तरफा हुआ है - बाहर से, शिक्षा जगत में राजनीतिकों का हस्तक्षेप और भीतर से शिक्षक तथा शिक्षार्थियो में राजनीतिक कूटनीतिक प्रवृत्ति का उभार । परिणामतः शिक्षालयों में पठन-पाठन के अलावा सब-कुछ होने लगा । विद्यालयों में और सबकुछ होता है केवल पढ़ाई नहीं होती । विद्यालय वस्तुतः राजनीति के अखाड़े बन गये हैं । कतिपय स्वनामधन्य नेता शिक्षा-संस्थाओं पर भी अपना प्रभुत्व जमाये रहते है । शिक्षा-प्रसार के नाम पर सरकारी कोश से करोड़ों रूपया बहता जरुर है, परंतु वह सब इन स्वार्थी व्यावसायिक और सत्ता-लोलुप नेताओं के पेट में ही जाकर लुप्त हो जाता है । आजादी के पश्चात भारत में शिक्षा के साथ जितना खिलवाड किया गया है और जितना किया जा रहा है, उतना कदाचित किसी अन्य क्षेत्र में नहीं ।

परसाईजी ने अपने युग में शिक्षा जगत को अच्छी तरह पहचाना है, अनुभूत किया है और फिर अपने अनुभव के अमृत का सिंचन करके उसे साहित्य में उतारा है । इसीलिए शिक्षा-क्षेत्र में होनेवाले अनाचारों के विषय में

उन्होंने लिखा है, ''जैसे हर क्षेत्र में गैरजिम्मेदारी आ गयी है और बिना काम किये पैसा पाने की प्रवृत्ति बढ़ी है, वैसी ही शिक्षा के क्षेत्र में आ गयी है । इस बात को छात्र रोज महसूस करते हैं और समाज भी इसे जानता है । फिर पूरे हिन्दी क्षेत्र में गुण्डे और अपराधीकर्मी जो छात्र–नेता हो गये हैं, वे तो देवगुरु बृहस्पति की भी इज्जत धुल में मिला देते हैं । इन दादा लोगों के रहते शिक्षक की प्रतिष्ठा की बात करना व्यर्थ है । ये आदर्श अध्यापकों की भी खुले आम दुर्गति करते हैं ।''[४७]

परसाईजी ने शैक्षणिक जगत में होनेवाले भ्रष्टाचार, गुरु और शिष्य के संबंध, अध्यापक, विद्यार्थी, शिक्षा के दूषण, विसंगतियाँ, विषमता इत्यादि कई बातों का व्यंग्य के द्वारा चित्रण स्पष्ट किया है । शैक्षणिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत उन्होंने शिक्षा जगत के हर पहलू पर अपनी लेखनी चलायी है ।

(१) शिक्षा के दूषण :

आज के युग में भ्रष्टाचार सर्वत्र व्याप्त हो चुका है । शिक्षा विभाग भी इसका अपवाद नहीं है । शिक्षा के क्षेत्र में अनेकानेक विसंगतियों, विद्रुपताओं का प्रवेश हो चुका है । शिक्षा ज्ञानार्जन का साधन नहीं रह गयी है, बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में बुराईयाँ पनप रही है, शिक्षा आजकल व्यवसाय का रूप धारण कर चुकी है । अतः इसमें कई दूषण आ गये हैं । शिक्षा के क्षेत्र में प्रविष्ट बुराईया एक मार्ग से नहीं, बल्कि अनेकानेक मार्गो से प्रवेश पा चुकी है । प्रवर्तमान युग की शिक्षा अनेक दूषणों से ग्रसित हो गई है । आज के शिक्षा जगत में पवित्रता एवं विद्या जैसे शब्द ढूँढ़ने से भी नहीं मिलते, यह बहुत बड़ी समस्या है ।

परसाईजी ने अपने साहित्य में शिक्षा–व्यवस्था के दूषणों का पर्दाफाश किया है । शिक्षा जगत में फैली बुराईयों के बहुमार्ग का चित्रांकन परसाईजी ने बखुबी किया है । उन्होंने 'बैताल की छब्बीसवीं कथा' में एक ऐसे लेक्चरर का चित्रांकन किया है, जिसने तरक्की पाने के लिए अपना दाँत भी दान कर

दिया । किन्तु दाँत देकर तरक्की पाना शायद चाटुकारिता की अंतिम सीमा है । यहाँ पर परसाईजी ने व्यंग्य किया है – "मूर्खो दाँत देने में कोई हर्ज नहीं । लोग तो नाक और कान देकर तकक्की पा रहे हैं, नाक एक होती है और कान दो, पर दाँत तो बत्तीस होते हैं, एक चला गया, तो क्या हुआ ?"[४८]

यहाँ पर परसाईजी यह कहना चाहते है कि दाँत दान करना, दाँत देकर तरक्की पाना अकर्मण्यता का प्रतीक है । महेनत, परिश्रम का मार्ग कठिन है, किन्तु आत्म सम्मान छोड़कर पतित हो जाना तथा आसानी से तरक्की पाना शिक्षा–व्यवस्था के लिए एक विडंबना है । परसाईजी ने शिक्षा जगत की इन विडंबनाओं को साहित्य में सार्थकता से उतारा हैं ।

(२) शिक्षा का स्तर :

शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण शिक्षा का स्तर निरंतर गिरता गया है । इसके लिए विद्यार्थी, अध्यापक और शिक्षा क्षेत्र के प्रशासनिक अधिकारी तीनों जिम्मेदार है । शिक्षा जगत में व्याप्त रिश्वत, सिफारिश पत्र, पेपर–चेकिंग जैसी भ्रष्टाचरण की कुरूपता के कारण शिक्षा का स्तर नीचा हुआ है । शिक्षा–क्षेत्र का समग्र वातावरण दूषित हो गया है । फलतः आधुनिक युग में शिक्षा का स्तर बिलकुल गिर गया है ।

परसाईजी खुद एक अध्यापक रह चुके हैं और वे शिक्षा के गिरते हुए स्तर से परिचित है । 'एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया' कहानी में परसाईजी ने शिक्षा का स्तर किस प्रकार गिर गया है और किस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में सिफारिश एवं रिश्वत का प्रभाव चलता है, इसका संकेत अर्जुन एवं द्रोणाचार्य जैसे प्राचीन पात्रों के द्वारा दिया है ।

"क्या यह सत्य नहीं कि आप के रीड़र बनने में मेरे पिताजी का बड़ा हाथ है ?" 'यह सर्वथा सत्य है ।' 'आगे विभागाध्यक्ष बनने के लिए आप किसकी सहायता लेंगे ?'

'निःसंदेह तेरे पिता की ।'

'क्या एकलव्य ने आपकी सेवा की है ?'

'बिलकुल नहीं । उसे तो गुरु की कोई सुध ही नहीं है । वह तो हंमेशा निर्जीव ग्रंथों में ही डूबा रहता है ।'[४६]

इस संवाद के द्वारा परसाईजी ने यह बताना चाहा है कि आज के शिक्षा–जगत में ग्रंथों का पठन उतना मूल्यवान नहीं है, जितना सिफारिश एवं रिश्वत । इन्हीं भ्रष्टाचार के कारण आज के युग में शिक्षा का स्तर गिर गया है ।

(३) अध्यापक :

अध्यापक समाज की एक ईकाई है । सामाजिक परिवर्तन उसको भी अन्य लोगों की तरह समान रूप से प्रभावित करता है । साठोतर काल के आदमी में खोखली मान्यताएँ, स्वार्थपरता, महत्त्वाकांक्षा और साधनों की अशुद्धता आदि के कारण व्यक्तित्व का विघटन आ गया है । फल स्वरूप अध्यापक भी स्वार्थ साधने के लिए गलत साधनों का उपयोग करने में हिचकिचाता नहीं है । सुख, सुविधा भोगने की प्रवृत्ति उसमें भी बढ़ी है । जिससे अध्यापक का आदर्शवादी रूप लुप्त हो गया है । इस भोग–लालसावाद ने अध्यापकों को अपने कर्तव्यों के प्रति गैर–जिम्मेदार बना दिया है ।

परसाईजी ने 'आचार्य जी, एक्सटेंशन और बागीचा' नामक कहानी में अध्यापक की स्वार्थपरता की खिल्ली उड़ाई है । आचार्यजी बिना मतलब के किसी से कोई संबंध नहीं रखते । वे शोध विद्यार्थियों से भी स्वार्थ साधते है । लेखक लिखते है, – "शोध–छात्र लेने में वे एक सिद्धांत का पालन करते थे । एक गल्ला व्यापारी का लड़का लेते, एक कपड़ा व्यापाकी का, एक हौजरी के दूकानदार का । फिर कोई जगह खाली बचती, तो सब्जी के व्यापारी के लड़के को ले लेते । कभी धी और किराना व्यापारी के लड़के को भी चान्स मिल जाता । हर साल विश्व–विद्यालय में लड़के शोर मचाते आवश्यक

है एक किराना व्यापारी के लड़के की, जिसे डाक्टरेट चाहिए । शोध का निर्देश किराने की मात्रा और क्वालिटी पर निर्भर करेगा । किराने के 'सेम्पल' सहित दरख्वास्त दो ।"[५०]

इसी तरह 'एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया' कहानी में परसाईजी ने अध्यापकों की शिष्यों के प्रति भेदभाव रखने की वृत्ति, स्वार्थवृत्ति एवं अपने पद का गलत इस्तेमाल करनेवाले अध्यापकों पर करारा प्रहार किया है । परसाईजी के साहित्य में आधुनिक युग के अध्यापक की स्थिति का संपूर्ण आलेखन मिलता है ।

(४) विद्यार्थी :

स्वातंत्र्योतर भारत की दिशाहीन शिक्षा नीति का शिकार बना हुआ विद्यार्थी एक दयनीय प्राणी है । आज के सार्वभौम ह्रास के वातावरण में विद्यार्थी से आदर्शों की अपेक्षा की जाती है, पर उसमें उसका सर्वथा अभाव है । विद्यार्थी शब्द ही बतलाता है कि उसका मुख्य प्रयोजन विद्या का अर्जन करना है । इसके लिए उसका अध्यवसाय, उसकी निष्ठा और उसकी तपस्या आदि उसकी योग्यतावृद्धि के कारक बनते है, लेकिन आज का विद्यार्थी इस मुख्य लक्ष्य से हटकर फैशन, भोग-विलास और आंदोलन जैसी प्रवृत्तियोंकी ओर ध्यान देने लगा है, परिणामतः वह शैक्षणिक आदर्शो से गुमराह बन जाता है ।

परसाईजी ने अपने साहित्य के द्वारा विद्यार्थी का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है । उनकी 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया' कहानी में अर्जुन अध्ययन करने की अपेक्षा गुरु की चापलूसी करके फर्स्टक्लास आना चाहता है, इसके लिए वह अपने गुरु से जब वरदान माँगता है, तो आचार्य इसमें एकलव्य की परिश्रम और बौद्धिक क्षमता को बाधक मानते हैं । इसलिए द्रोणाचार्य से अर्जुनदास गुरुमहिमा के खण्डन की बातें करके गुरुमहिमा का गलत अर्थ निकालता है और अपनी सेवा का बदला चाहता है, "अर्जुनदास ने कहा – 'यह मैं कुछ नहीं जानता । मैं तो इतना जानता हूँ कि यदि मैं प्रथम

नहीं आया, तो गुरु की महिमा भंग हो जायेगी, आगे कोई शिष्य गुरु की सेवा नहीं करेगा और इस अधम परंपरा को प्रारंभ करने का कलंक आपको लगेगा ।''[५१] कहानी के अंत में आचार्य विद्यार्थी एकलव्य का दृष्टांत देकर आधुनिक विद्यार्थी के विषय में वास्तविकता प्रकट करते है, ''आचार्य बोले'' - ''हाँ, पर उसमें और इसमें बड़ा अंतर है । वह पुण्य युग था, यह पाप युग है । उस एकलव्य ने बिना तर्क के अँगूठा काटकर गुरु को दिया था, इस एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखा दिया ।''[५२]

आज का विद्यार्थी किस प्रकार आदर्शों से विमुख हो गया है, इसका यथार्थ चित्रण परसाईजी के साहित्य में देखने को मिलता है ।

(५) परीक्षा–प्रणाली :

अध्यापकों की गैरजिम्मेदारी, रिश्वतखोरी तथा विद्यार्थियों को किसी प्रकार भी परीक्षा में पास करने की प्रवृत्ति के कारण हमारी परीक्षा–प्रणाली असफल हो गयी है । योग्यता के अभाव में किसी प्रकार परीक्षा पास करने की लिप्सा ने विद्यार्थियों को गलत मार्ग पर भटका दिया है । आजकल के विद्यार्थी पास होने के लिए अनेकानेक गलत साधनों का उपयोग कर रहे हैं, दूसरी ओर अध्यापकों की स्वार्थपरता तथा रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति भी इन गलत उपायों को प्रोत्साहन दे रही है । इस प्रकार आजाद भारत में जहाँ शिक्षा का प्रचार अधिक हुआ है, वहीं पर शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा प्रणाली में बहुत से दोष भी दिखाई देते हैं ।

परीक्षा प्रणाली की कुरीतियों का यथार्थ चित्रण परसाईजी के साहित्य में देखा जा सकता है । नम्बर बढ़वाना, पास करने की गलत तरकीबों में से एक है । नम्बर बढ़वाने के लिए विद्यार्थी अनेक रास्ते ढूँढ़ लेते हैं । परसाईजी ने पास करने की तरकीब के बारे में लिखा है ''इधर मार्च में जो आता है, नम्बर बढ़वाने या 'पेपर आउट' करवाने आता है । बात यह है कि सारे 'सिलेबस' और 'प्रास्पेक्टस' गलत है । उनमें उन दो पर्चो का उल्लेख

नहीं होता, जो जरुरी होते हैं । एक पर्चा शुरु का और दूसरा आखिरी । पहला पर्चा 'पेपर आउट' करने का होता है और आखिरी नम्बर बढ़वाने का । जो इन्हें अच्छी तरह कर ले, वह पास हो जाता है, पहला दर्जा भी पा सकता है ।''[५३]

ऐसे ही परसाईजी ने 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया' कहानी में यही बात बतायी है कि – ''अर्जुन जानता था कि विद्या पढ़ने से नहीं, बल्कि गुरु कृपा से प्राप्त होती है । वह निरंतर गुरु की सेवा में रहता था । वह आचार्य के घर में किराना, कपड़ा, सब्जी आदि पहुँचाता था । त्यौहार पर आचार्य के पाँच बच्चों को बाजार ले जाता और उन्हें मिठाई, कपड़े, खिलौने आदि खरीद देता । वह आचार्या को सिनेमा नाटक दिखाता था और अन्य अध्यापकों की पत्नियों की कलंक–कथाएँ गढ़कर, उन्हें सुनाकर उनका मनोरंजन करता था । वह आचार्य के कुशल–क्षेम पर ध्यान देता था । रात को उनके सामने अन्य आचार्यो की निन्दा करता था, जिससे उनकी आत्मा का उत्थान होता था ।''[५४] आज के युग में परीक्षा प्रणाली में अध्ययन–अध्यापन की जगह चापलूसी एवं भाई–भतीजावाद ही मुख्य बन गये है, इसीकी ओर परसाईजी संकेत कर रहे हैं ।

परसाईजी के साहित्य में शिक्षा–व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों का निरूपण किया गया है । निरूपण के साथ ही साथ उसके कारणों पर भी व्यापक प्रकाश डाला है । आज की शिक्षा–व्यवस्था आधारहीन, समर्पणहीन हो गयी है । छात्रों की ऐयाशी, अध्यापकों का आलस्य तथा अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना, छात्रों को गुमराह करना, शिक्षा को व्यवसाय बनाना आदि अनेकानेक कारण है, जिसके कारण शिक्षा व्यवस्था का संपूर्ण ढाँचा ही चरमरा उठा है । इन सारे कारणों पर परसाईजी ने न केवल प्रकाश डाला है, बल्कि इसका ठोस समाधान चाहा है ।

डॉ. अर्चनासिंह लिखती है, ''परसाईजी ने अपनी कहानियों में प्रायः शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त सभी विसंगतियों का विवेचन, विश्लेषण किया है ।

छात्रों का आलसी होना, बिना परिश्रम अंक प्राप्त करने के लिए प्रोफेसरों की चापलूसी करना, कुंजी से अध्ययन करना, गलत नियुक्तियाँ, गलत तरीके से प्रमोशन पाना आदि अनेकानेक सभी बुराईयों का पर्दाफाश किया है । उनका विवेचन विश्लेषण भी किया है ।"[५५]

शिक्षा जगत की संपूर्ण बातों का उल्लेख परसाईजी के साहित्य में पाया जाता है । उनके साहित्य की शैक्षणिक पृष्ठभूमि आधुनिक शिक्षा–व्यवस्था का प्रतिबिंब ही है ।

❀ साहित्यिक पृष्ठभूमि :

स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक हर पहलू में अनेक विसंगतियाँ उभरी । इन्हीं विसंगतियों का शिकार साहित्य और साहित्यकार भी हुआ । साहित्यकार की भावनाएँ व्यापक से संकुचित होकर, अपने निजी स्वार्थो से जुड़ गई । लेखकों के व्यक्तिगत स्वार्थो के लिए गुट बने । समाज में पनपी अनेक कुरीतियाँ साहित्य में आ गयी । साहित्य जगत में मुखौटेबाजी, गुटबन्दी, अविश्वास, अनास्था, कुण्ठा आम हो गयी । तुकबन्दी करनेवाला कवि या लेखक भी अहंकार के नीचे दब गया । साहित्यकार अकेले ही सृजन–कार्य करता है, किन्तु तब उसके मानस में संपूर्ण समाज का अनुभव होता है, अकेले का नहीं । अकेले के अनुभव को वाणी देना, समाज के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता । साहित्यकार को तो यह सोचना जरुरी होता है कि जो समाज का सुख, वह मेरा सुख । 'सामाजिक प्रतिबद्धता' साहित्यकार के लिए जरुरी है । लेकिन आज का साहित्यकार अपने इस कर्तव्य को भूलकर केवल आत्मकेन्द्रित साहित्य की रचना करता है, जिसमें समाज के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं होती । वास्तव में स्वाधीन भारत में अन्य क्षेत्र की भाँति साहित्य के क्षेत्र में भी विषमतायें फैल गयी है ।

परसाईजी का साहित्य उनके समकालीन युग का दस्तावेज है, जो उस युग की सच्चाई को हमारे सामने प्रकट करता है । उन्होंने अपने साहित्य में

समकालीन युग में साहित्य में कौन–कौन सी विकृतियाँ एवं बुराईयाँ आ गयी है, इसका यथार्थ वर्णन किया है । वास्तव में उत्तम साहित्य का सृजन आसान काम नहीं है, इसीलिए परसाईजी कहते है, ‘‘साहित्य का निर्माण कोई ईंट–गारे की इमारत नहीं है, जो कोई भी विशेषज्ञ डिप्लोमा लेकर तैयार कर सकता है, यह तो एक भगीरथ प्रयास है, जिसके लिए उत्साह, आत्मा की उज्ज्वलता और पुण्य की धरोहर आवश्यक है । गंगा को पृथ्वी पर लाने की सभी की इच्छा है, पर भगीरथ बनने का प्रयास कोई नहीं कर रहा हैं । उनकी परिकल्पनाएँ, उनके जप–तप बस बादलों की चन्द बूंदे ही आसमान से जमीन पर ला पाते हैं । संभवतः इन्हें ही वे गंगा के छींटे समझ रहे हैं ।’’[५६]

परसाईजी ने साहित्य के क्षेत्र में अनाधिकारियों का प्रवेश, साहित्यकारों का शोषण, लेखकों का दंभ व पाखंड, लेखक की प्रतिभा का व्यापार, चाटुकारिता, अभिनंदन का मोह जैसे विषयों पर अपनी कलम चलायी है । इसके अलावा उन्होंने साहित्य की चोरी, अपने नाम पर दूसरों से लिखवाकर प्रसिद्धि पाने का मोह, अपनी रचनाओं को सुनाने का मोह जैसी प्रवृत्तियों पर भी व्यंग्य किया है । परसाईजी के साहित्य में साहित्यिक जगत की इन बातों को देखा जा सकता है ।

(१) साहित्यकार की मनोवृत्ति :

साहित्य के क्षेत्र में साहित्यकारों की स्थिति बहुत दयनीय एवं करुण हो गयी है, क्योंकि आज के साहित्यकार की मनोवृत्ति बिलकुल ही बदल गयी है । आज का साहित्यकार केवल धन के लिए लिखता है, धन के अभाव में उनके मन के विचार तक बदल जाते हैं । धन के आगे उनके आदर्श कुछ महत्त्व नहीं रखते है । जैसा कि आगे कहा गया कि साहित्यकार में ‘सामाजिक प्रतिबद्धता’ होनी चाहिए, वही भाव आज के साहित्यकार में लुप्त होते हुए दिखाई देते हैं । साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है, पर आज का साहित्यकार इस दायित्व को भूल गया है । वह आत्मकेन्द्रित हो गया है ।

आज के साहित्यकार का दृष्टिकोण यह है कि यदि अपनी पीड़ा समाप्त हो जाए, तो युग की पीड़ा अपने आप समाप्त हो जाएगी । इस प्रकार साहित्यकार की मनोवृत्ति बिलकुल ही बदल गयी है ।

साहित्यकार के मन के भाव कैसे होते है और धन के प्रति उनका लगाव कैसा होता है, इसका संकेत परसाईजी के साहित्य में स्पष्ट रूप से उभरता है । उन्होंने अपनी कहानी 'आना और न आना रामकुमार का' में साहित्यकार की धनलोलुप मनोवृत्ति का परिचय दिया है, – ''मैं पहुँचते ही आयोजकों के चहेरों, व्यवहार और आवभगत से हिसाब लगाना शुरु कर देता हूँ कि ये अच्छे पैसे देंगे या नहीं ? कभी ऐसा भी हुआ है कि ज्यादा आवभगत करनेवालों ने रूपयें मुझे कम दिये हैं । लेखक का शंकालु मन है । शंका न हो तो लेखक कैसा ? मगर वे भी लेखक है, जिनके मन में न शंका उठती है, न सवाल । ज्यादा आवभगत होने लगे तो आशंका होती है कि ये पैसे कम देंगे । मै मन–ही–मन कहता हूँ – भैया, ज्यादा कर रहे हो । नार्मल हो जाओ तो मैं भी हो जाऊँ । तुम्हारी आवभगत के हिसाब से मेरी घबराहट भी बढ़ रही है ।''[५७]

इसमें ही परसाईजी ने आगे वर्णन किया है कि पैसे ज्यादा मिलने से लेखक उस इलाके को प्रगतिशील कहेगा और कम मिलने पर उसे पीड़छा हुआ बता देते हैं । कहने का तात्पर्य यहीं है कि आज के आधुनिक युग में साहित्यकार की मनोवृत्ति बिलकुल बदल चुकी है, जिसका यथार्थ संकेत परसाईजी ने दिया है ।

(२) लेखकों का अहम् एवं ईर्ष्याभाव :

आधुनिक युग का साहित्यकार संकुचित मानस का बन गया है, फलतः उसमें झूठा अहम् एवं–ईर्ष्याभाव आ गया है, परिणामतः आधुनिक साहित्य अपनी गरीमा खो रहा है । झूठे अहम् के कारण साहित्यकार अपने आप को सर्वश्रेष्ठ मानने लगते है और अन्य साहित्यकार को जो उपदेश देते है, उसके

बिलकुल विरुद्ध वे आचरण करते है । ऐसे साहित्यकार की हर बात में झूठ टपकता है । अहम् के साथ–साथ प्रवर्तमान युग के साहित्यकार में ईर्ष्याभाव भी बढ़ गया है, जिसके कारण वह प्रत्येक महान साहित्य की इर्ष्या करता है । फलतः आधुनिक युग के साहित्य में प्राचीन साहित्य की भाँति न तो अर्थगांभीर्य दिखाई देता है और न ही सांस्कृतिक गरीमा ।

परसाईजी ने अपनी कहानी 'वे बहादुरी से बिके' में साहित्यकार के अहम् भाव को अच्छी तरह से प्रकट किया है कि किस तरह साहित्यकार की वाणी में अहम् के कारण झूठ टपकता है, – ''पिछले साल जब मैं पेरिस में था, तब मेरे मित्र ज्याँ पाल सार्त्र से मेरी इसी बात पर चर्चा हुई ।... मैंने कहा – 'सार्त्र को मरे तो ४ साल हो गये । पिछले साल वे आपको कहाँ मिले होंगे ।'

उन्होंने कहा – 'आई एम सोरी । वह सार्त्र नहीं, आन्दे मोलर्रा था ।'

मैंने कहा – 'आन्दे मोलर्रा को मरे भी ६ साल हो गये ।'

वे बेहिचक बोले – 'मेरी 'मेमोरी' को क्या हो गया । नाऊ आई एम डेफिनेट । पाब्लो नेरुदा से मेरी बात पिछले साल हुई थी ।'

मैंने नहीं कहा कि नेरुदा तो १९७४ में मर गये थे । कहता तो वे कहते पिछले साल लन्दन में मैं शेक्सपियर से मिला था ।''[५८]

ऐसे ही परसाईजी ने 'अपने अपने इष्टदेव' कहानी में साहित्यकारों का ईर्ष्याभाव वर्णित किया है, – 'लेखक ने कहा और कितनी तपस्या करुँ, गुरुदेव ? मैं रातदिन हर सफल लेखक के प्रति ईर्ष्या से जलता रहता हूँ । ईर्ष्या से बढ़कर कोई तप नहीं है । तुलसीदास तो मुझे शत्रु लगते हैं । घर में 'रामचरितमानस' देखता हूँ तो उससे कहता हूँ कि एक दिन ऐसा आयेगा जब तेरी ठीक बगल में हर घर में मेरा ग्रंथ होगा ।''[५९]

यहाँ पर साहित्यकार का अहम् एवं ईर्ष्याभाव स्पष्ट रूप से झलकता है । आधुनिक युग का साहित्यकार झूठे अहम् एवं ईर्ष्याभाव में साहित्य को पतन के मार्ग पर ले जा रहा है ।

(३) पुस्तक प्रचार :

आधुनिक युग का साहित्यकार पुस्तक प्रचार को ही महत्त्व देता है । इसके लिए वे किसी अधिकारी को अपना ईष्टदेव मानने को भी तैयार हो जाते है । अपनी पुस्तक की बिक्री के लिए वो किसी के भी आगे अपने सिद्धांतों के विरुद्ध कार्य करने लगते हैं । केवल पुस्तक का प्रचार होना चाहिए । पुस्तक प्रचार के अपने स्वार्थ को पुरा करने के लिए आज का साहित्यकार किसी भी हद तक भ्रष्ट कार्य करने के लिए भी तैयार हो जाता है । धनोर्पाजन एवं स्वयं का प्रचार केवल ये दो उद्देश्य की पूर्ति होनी चाहिए । अतः वर्तमानयुग में साहित्यकार के अपने कोई आदर्श नहीं है, वे पुस्तक प्रचार के लिए कुछ भी कर सकते हैं ।

परसाईजी ने 'अपने अपने ईष्टदेव' और 'वे बहादुरी से बिके' जैसी कहानियों में पुस्तक प्रचार के लिए साहित्यकारों की धांधली का पर्दाफाश किया है । 'वे बहादुरी से बिके' कहानी में साहित्यकार दूसरे लेखकों को अपनी पुस्तक सरकार को बेचने के लिए मना करते हैं, जबकि अपनी पुस्तक को बेचने के लिए वे सबकुछ छोड़कर तैयार हो जाते हैं कि सरकार जल्दी से उनकी पुस्तकों को खरीद ले और उनका प्रचार करने लगे । ऐसे ही 'अपने अपने ईष्टदेव' कहानी में एक लेखक अपने पुस्तक के प्रचार के लिए एक सरकारी अधिकारी को अपना ईष्टदेव बना लेते हैं और अपनी पुस्तक का प्रचार करते है, – ''एक संध्या को लेखक ने स्नान करके धूपबती जलायी और अत्यंत शुद्ध मन से ईष्टदेव की स्मृति करके ग्रंथ की एक प्रति मेज पर रख दी । सुबह उठकर देखा कि ग्रंथ में एक टाईप किया हुआ कागज चिपका है । कागज पर नीचे शिक्षा–विभाग के किसी पदाधिकारी के दस्तखत है । उसमें लिखा है – 'तुम्हारा यह ग्रंथ सारे राज्य में हायर सेकेण्डरी कक्षाओं के लिए पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत किया गया ।' वह ग्रंथ घर–घर में हो गया और लेखक का नाम बच्चे–बच्चे की जबान पर आ गया ।''[६०]

परसाईजी ने पुस्तक–प्रचार करने की साहित्यकार की मनोवृत्ति पर प्रकाश ड़ालकर साहित्य की यथार्थ स्थिति का मूल्यांकन किया है ।

(४) साहित्य और व्यापार :

आधुनिक युग में साहित्य और व्यापार के बीच कुछ विशेष अंतर नहीं रहा है । आज का साहित्य व्यापारलक्षी बन गया है । केवल धनोर्पाजन के लिए साहित्य लिखा जाता है, तो दूसरी तरफ अपने स्वार्थ के लिए व्यापारीवर्ग साहित्य की वाहवाही करते है । जहाँ व्यापारी साहित्य को समझे बीना साहित्य संमेलन करते है, वहीं अधिकारी वर्ग साहित्य की महिमा जाने बिना ही अपना सम्मान भी करवाते है और साहित्यकार होने का गर्व भी रखते हैं । सबकी दृष्टि में तो साहित्य की कोई कीमत होती ही नहीं है, केवल व्यापारिक दृष्टि से साहित्य का मूल्य आँका जाता है । वर्तमान युग में साहित्य और व्यापार दोनों को समान बना दिया है ।

परसाईजी ने 'साहब का सम्मान' नामक कहानी में साहित्य की इस स्थिति पर प्रकाश डाला है । शहर में आये हुए नये आयकर अफसर कवि है, साहित्य प्रेमी है । आयकर विभाग ने व्यापारियों की सख्त जाँच का आदेश निकाला, जिससे सभी व्यापारी वर्ग में खलबली मच जाती है । सब इसमें से बचने का उपाय सोचने लगे । तब पता चला कि नये अधिकारी कवि है । अतः इन व्यापारियों ने इनका सम्मान करने का कार्यक्रम बना लिया, जिससे इन सब पर आयकर अधिकारी की कृपादृष्टि बनी रहे । वास्तव में कविता क्या होती है ? इसके बारे में इन व्यापारियों को कुछ भी पता नहीं है । परसाईजी ने वर्णन किया है – ''आप कवि भी है, यह जान ने में हमें डेढ़ साल लग गया और अभी भी यदि आयकर बढ़ाने का यह सरकारी आदेश न आता, तो हम क्या जान पाते ? हर बात समय से होती है, जिस प्रकार शादी के मौसम में अधिक रेशमी कपड़ा बिकता है । समय आने पर हम

सज्जनों को उसी तरह पहेचान लेते है, जिस तरह कि खाताबही जब्ती होने पर बिक्रीकर इन्स्पेकटर के रिश्तेदारों को पहचान लेते हैं ।''[६१]

वह आयकर अधिकारी वास्तविकता जानते हुए भी सभी से अपना सम्मान करवाते है और अत्यंत प्रसन्न होते है । यहाँ साहित्य और व्यापार एक दूसरे से अभिन्न बने दिखाई देते हैं । आज के साहित्य में सच्चाई कम और पाखंड ज्यादा है । समाज के स्वार्थी लोगों ने साहित्य को व्यापार का एक माध्यम बना दिया है । परसाईजी ने इसी बात को समाज के सामने प्रस्तुत किया है ।

(५) निरर्थक साहित्य :

आधुनिक युग में साहित्यकार की मनोवृत्ति बदल गयी है, उसमें पाखंड, झूठा अहम् एवं ईर्ष्याभाव आ गया है । फलतः साहित्य को व्यापार की दृष्टि से देखा जाता है । केवल धन उपार्जन का एक माध्यम ही माना जाने लगा है । इसके कारण आज स्थिति यह है कि साहित्यकार निरर्थक साहित्य की रचना करने लगे हैं । धन की आशा में लिखे गये आज के साहित्य में कोई उद्दात्त सार्थकता नहीं दिखाई देती । आज के कवि, लेखक एवं साहित्यकारों को केवल सम्मान, अभिनंदन एवं वाहवाही ही चाहिए, परिणामतः उनके साहित्य में प्राचीन साहित्य के जैसी महानता नहीं दिखाई देती ।

परसाईजी ने 'रानी नागफनी की कहानी' में ऐसे निरर्थक साहित्य की बात कही है, जो केवल बकवास या निरर्थक आलाप ही कहा जायेगा । इसके मूल में मात्र धन कमाने की लालसा ही दिखाई देती है । इस उपन्यास में एक कवि अपनी कविता सुनाता है –

''काले आकाश का शोक–वस्त्र पहने,
　　अँधेरे मौसम की सुबह है,
और काँव–काँव करते काले कौए,
　　मेरे आर–पार निकल जाते है,

लेकिन एक बेहद काला और बूढ़ा कौआ
मुझमें कहीं फँसा रह गया है ?
(डरता हूं, वह मेरी आत्मा में कहीं घोंसला न बनाये !
कहीं अण्डे न दे ।)
अब मुझमें इतनी भी ताकत नहीं है
कि उस बूढ़े कौए को अपने बाहर निकाल सकूँ
आह ! मैं इस कदर गया–गुजरा और दुबला
कि अपने कन्धे पर रखे अपने ही सलीब का
बोझ ढ़ो नहीं सकता... ।"[६२]

यह आज के युग की नयी कविता है, जिसमें न कोई अर्थ है और न ही अर्थगांभीर्य । केवल शब्दों की मायाजाल है, जो धन के लिए रची गयी है । परसाईजी ने आधुनिक युग में रचे जाते ऐसे निरर्थक साहित्य पर व्यंग्य कसकर प्रहार किये हैं ।

परसाईजी ने अपने साहित्य में यह संकेत दिया है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत के साहित्य जगत में गुटबाजी, अवसरवादिता, स्वार्थ, चापलूसी एवं इसी प्रकार की अन्य प्रवृत्तियाँ व्याप्त हो गयी है । प्राचीन समय में जो साहित्यकारों एवं लेखकों का 'सर्वान्तसुखाय' का उद्देश्य था, वही आज के साहित्यकारों का केवल 'स्वान्तःसुखाय' का रह गया है । लेखकों का पैसे के लिए यथार्थ न लिखना, सता से दबना और बिकाउपन आज एक आम बात हो गयी है । फल स्वरूप साहित्य का घिनौना रूप सामने आ रहा है, वह साहित्य जिसे श्रेष्ठ कहा जा सकता है, अब खो गया है । कवियों के कवि सम्मेलन, अभिनंदन, साहित्य से संबंधित हर पहलू की कुरीतियों का परसाईजी ने पर्दाफाश किया है । उन्होंने आत्म–व्यंग्य अपनाते हुए, कहीं उपहास द्वारा और कहीं विडंबना द्वारा लेखक की बेहयाई को बेनकाब किया है ।

पत्र–पत्रिकाओं की बहुलता और गिरते स्तर की ओर भी परसाईजी ने व्यंग्य बाण छोड़े हैं । पत्रकार की गैर जिम्मेदारी और स्थिति पर मतिवैदग्ध्य

द्वारा व्यंग्य किये है । साहित्य के विषय में परसाईजी स्वयं लिखते है, "साहित्य हमारे यहाँ व्यापार कभी नहीं रहा, वह धर्म रहा है । अभी भी वह धर्म है, एक '***Mission***' है । इसमें मिटना पड़ता है । जो इसमें बनना चाहते है, वे बेहतर है कि आढत की दुकान खोले । इसमें तो कबीर की तरह घर फूँककर बाहर निकलना पड़ता है, यह 'खाला का घर' नहीं है ।"[६३]

परसाईजी ने अपने साहित्य में साहित्य के क्षेत्र में फैली हुई विभिन्न विसंगतियों पर अपनी कलम चलाकर साहित्यिक पृष्ठभूमि का संपूर्ण यथार्थ पाठक के सम्मुख रख दिया है । परसाईजी का साहित्य आधुनिक युग के साहित्य को समझने का सही माध्यम है ।

❀ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :

सांस्कृतिक से तात्पर्य उस तत्त्व से है, जो देश की जनता के जीवन का संस्कार करती है । भाषा, वर्ण, रहन-सहन की अनेकता को एकता में बाँधती है । हर देश की अपनी अलग-अलग संस्कृति होती है । भारत की भी अपनी विश्व में सबसे प्राचीनत्तम संस्कृति है । अनेकता में एकता जिसकी मुलभूत विशेषता है । लेकिन आज के आधुनिक युग में हर पहलू में आयी विसंगतियों ने सांस्कृतिक जीवन को भी पूरी तरह विसंगत कर दिया है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की संस्कृति का कितना ह्रास हो चुका है । इसका संकेत श्री डॉ. माधव सोनटक्के इस प्रकार देते है, "स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमारे सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रश्न-चिन्ह लग गया है । प्रजातंत्रीय व्यवस्था को अपनाने के बाद प्रजातंत्रीय जीवन-मूल्यों का विकास अनिवार्य हो जाता है । बाह्यरूप में आज हमारे समाज में उन जीवन मूल्यों का आभास जरुर होता है, लेकिन भीतरी रूप में मध्यकालीन जीर्ण-शीर्ण मूल्यों में ही हमारा स्वाधीन समाज चिपका हुआ दिखाई देता है । इसीलिए स्वातंत्र्योत्तर सांस्कृतिक परिवेश मूल्य-विघटन और मूल्य-हीनता का शिकार है । देश में प्रजातंत्र, मन में मध्यकालीन मूल्य-बोध और बाह्यरूप में पाश्चात्यों की वैज्ञानिक मूल्य-धारणा को

हम एक साथ ओढ़ना चाह रहे हैं, जो हमारी कई विसंगतियों का कारण बना हुआ है ।"[६४]

स्वाधीन भारत की संस्कृति में फैली इन विसंगतताओं को परसाईजी ने अपने साहित्य में प्रदर्शित की है । भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी संस्कृति का हमला, आधुनिकता, फैशन परस्ती, संगीत, नृत्य, वस्त्र, कैबरे, शराब, अंग्रेजी भाषा, रहन–सहन आदि सभी पहलू पर परसाईजी की व्यंग्य दृष्टि गयी है और संस्कृति का आज क्या रूप समाज में रह गया है, इसका भी सजीव चित्रण उन्होंने किया है । परसाईजी ने आज की संस्कृति को सडी–सुपारी की संस्कृति, बनिया संस्कृति, जेबकट की सभ्यता जैसे अनेक नामकरण दिये हैं ।

परसाईजी के सांस्कृतिक विचारों के संदर्भ में डॉ. मनोहर देवलिया लिखते है, – "परसाई के लेखन और विचार में संस्कृति की भोली मानवतावादी समझ ही काम नहीं करती, वे संस्कृति की वैज्ञानिक वस्तुपरक समझ के कायल है । संस्कृति जिसमें श्रम की प्रतिष्ठा हो, जिसमें सबकी हिस्सेदारी हो, जो सबके लिए सुलभ हो और जिसे यथार्थ के धरातल पर विश्लेषित किया जा सकता हो । जिसमें पुरातन को पूजने का नहीं, समझने का बोध हो, जो मनुष्य को अधिक मानवीय, संवेदनशील और सृजनात्मक बनाये, जो उसकी आत्मा को मुक्त करे और दिमाग को विवेकशील बनाये । परसाई के सांस्कृतिक विचार किसी प्रकार के मोह से ग्रस्त नहीं है । उन्होंने न तो भारत के प्राचीन गौरव का कीर्तिमान किया और न व्यर्थ के आदर्शो को दोहराया है, परसाई ने निष्ठापूर्वक भारत के सांस्कृतिक पतन की जीती–जागती साफ तस्वीर खींची है । उन्होंने मानव जीवन में होनेवाले नैतिक सामाजिक मूल्यों के विघटन में सांस्कृतिक पतन के चिन्ह खोजे हैं ।"[६५]

परसाईजी ने सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत इन बातों का उल्लेख किया है । –

(१) नैतिक एवं सच्चे मूल्यों का ह्रास :

आज के युग में सच्चे एवं नैतिक मूल्य, जो जीवनोपयोगी है, उसका ह्रास होने लगा है । समाज में कुछ शक्तियाँ ऐसी है, जो ऐसे मूल्यों को बरबाद कर रही है, जिनसे समाज की प्रगति होती है । जीवन में नैतिकता और सच्चाई की बहुत कीमत होती है । इनसे संस्कृति का विकास होता है, परंतु स्वाधीन भारत में जहाँ संस्कृति का विकास होना था, वहीं पर संस्कृति के मूल में जो नैतिक एवं सच्चे मूल्य होते हैं, उन्हीं का पतन होता गया । फलतः समाज में विकृतियाँ आने लगी । सर्वत्र झूठ एवं अनैतिकता का साम्राज्य छा गया । आज भी समाज हर जगह झूठी अनैतिकता से भरे मूल्य दिखाईदेते है, जिनका कोई महत्त्व नहीं होता ।

परसाईजी ने अपने साहित्य में समाज में फैली विकृत संस्कृति का चित्रण किया है । उनकी 'भेड़ें और भेड़िये' कहानी में उन्होंने नैतिक एवं सच्चे मूल्यों का ह्रास दिखाया है । चुनाव के समय परिस्थिति यह है कि बहुमती भेडे की है, फिर भी जीतना भेडिये चाहते हैं । इसी कारण सियार जो भेडियें के चमचे हैं, उसे षडयंत्र से चुनाव जीत जाने के लिए उकसाते है । यहाँ जो सच्चाई है, उसके हक में नहीं, अपितु झूठ के पलड़े में विजयश्री जाती है । परसाईजी ने झूठ के मूल्य को फैलाते सियार के मुख से कहलवाया है – "जो यहाँ त्याग करेगा, वह उस लोक में पायेगा । जो यहां दुःख भोगेगा, वह वहाँ सुख पायेगा । जो यहाँ राजा बनायेगा, वह वहाँ राजा बनेगा, जो यहाँ वोट देगा, वह वहां 'वोट' पायेगा । इसलिए सब मिलकर भेडिया को वोट दो । वे दानी है, परोपकारी है, सन्त है, मैं उनको प्रणाम करता हूँ ।"[६६]

प्रवर्तमान समाज में सब जगह अनैतिकता एवं पाखंड ही छा गये हैं । फलतः संस्कृति का सर्वनाश होता जा रहा है ।

(२) मिथ्या सम्मान एवं मिथ्या सहानुभूति :

आज का मनुष्य यश, कीर्ति एवं सम्मान पाने के लिए न जाने क्या–क्या आडंबर करता है । एक ओर मिथ्या यश कमाने के लिए चन्दे के रूप में पैसा देकर शिलालेखों पर अपना नाम खुदवा लेता है, तो दूसरी और एक प्रकार की विशेष मनोवृत्ति को पालते हुए सम्मान, यश और प्रतिष्ठा का सौदा करता है । आधुनिक युग में प्रत्येक मनुष्य को मिथ्या सम्मान एवं मिथ्या सहानुभूति से लगाव हो गया है । कहीं पर भी मानव की वास्तविक अनुभूति का दर्शन नहीं होता । सर्वत्र मिथ्याचार ही दृष्टव्य होता है । मानव–मानव के बीच सच्चा प्रेम एवं सहानुभूति की जगह केवल मिथ्या सहानुभूति रह गयी है । अपने आपका सम्मान होते देखने की सबकी लालसा बढ गयी है । आजादी के बाद भारतीय समाज में बहुत से लोग ऐसे है, जिनका समाज में सम्मान हो या न हो, कोई फर्क नहीं पड़ता, परन्तु ज्यादातर लोग ऐसे है, जिनका आचरण कुछ ओर होता है, और समाज में मिथ्या सम्मान पाने की चाह रखते है । ऐसे मिथ्याचरण से ही संस्कृति का विनाश होता है ।

दुहरी नैतिकता बरतनेवाले तथाकथित उच्चवर्गियों पर व्यंग्य करते हुए परसाईजी कहते हैं कि दूसरों के जिस आचरण को ये लोग नाक कटने के समान बतलाते है, वैसा ही आचरण करते हुए ये अपनी 'फौलादी नाक' सुरक्षित रख लेते हैं । उनके शब्दों में – "कुछ बड़े आदमी, जिनकी हैसियत है इस्पात की नाक लगवा लेते हैं और चमड़े का रंग चढ़वा लेते है । कालाबाजारी में वे जेल हो आये है और औरत खुलेआम दूसरे के साथ 'बाक्स' में सिनेमा देखती है । लड़की का सार्वजनिक गर्भपात हो चुका है । कोई उस्तरा लिये नाक काटने को घूम रहे हैं । काटे कैसे ? नाक तो स्टील की है । चेहरे पर पहेले जैसी ही फिट है और शोभा बढ़ा रही है ।"[६७]

समाज के लोगों ने मिथ्या सम्मान एवं मिथ्यासहानुभूति पाने के लिए भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों को ही बदल दिया है । परसाईजी ने इस परिस्थिति का यथार्थ चित्रण किया है ।

(३) मानवीय संबंधों का विघटन :

जब समाज बदलता है, मनुष्य के रूप बदलते है, नैतिक के संबंध में नयी दृष्टि उभरती है । पुराने मूल्य टूटते है और उनकी जगह नये मूल्य उजागर होते है, तो स्वभावतः मनुष्यों का चरित्र और उसकी संबंध भावना भी बदलती है । आज के युग में पुराने संबंधों की भावुकता, बौद्धिकता के थपेड़ो से विचलित हुई है । स्वार्थ अब सब प्रकार के संबंधों के ऊपरी सतह पर तैरकर आया है । संबंधों की काया ही नहीं, उसको संचालित करनेवाले मूल्य भी बदल गये हैं । एक विवशता है, जो मनुष्य को सड़े–गले संबंधों में ही जीने के लिए विवश कर रही है । व्यक्ति अवसरवादी बनकर काम निपटाने की कला में प्रवीण हो गया है ।

परसाईजी ने संस्कृति के इसी ह्रास का चित्रण किया है । आज की संस्कृति में मानव संबंधों के भीतर प्रेम का नैसर्गिक स्वरूप ही नष्ट हो गया है । वासनापूर्ति को प्रेम का नाम देने और उसके साथ खिलवाड़ करने की प्रवृत्ति पर परसाईजी ने लिखा है । उनकी ‘एक लड़की : पाँच दीवाने’ कहानी में इसी बात का संकेत है – ‘‘पर दीवानों ने अपनी हरकतों से उसे भान करा दिया कि उसके पास रोटी बनाने, कपड़े धोने और घर साफ करने के सिवा कुछ और भी है, जो घर के नहीं, बाहरवालों के काम का हैं । यों उम्र पाकर हर लड़की को यह बोध हो ही जाता है, पर इसे थोड़ा पहले ही दीवानों ने करा दिया ।’’[६८]

वास्तव में आज के युग में संबंधों की महानता नष्ट हो गयी है और चारों तरफ विकृतियाँ फैल गयी है, जिससे संस्कृति का मूल्य दीन–ब–दीन कम हो गया है ।

(४) ऊपरी टीमटाम एवं बाह्याडंबर युक्त थोथी संस्कृति :

वर्तमान युग में सांस्कृतिक कार्यक्रम, नृत्य, संगीत, कला आदि कोई बाह्याडंबर एवं दिखावे की, सजावट की वस्तुएँ बनकर रह गए है । यह आज

की छिछोरी संस्कृति के प्रतीक बन गये हैं । आज सांस्कृतिक समारोहों का आयोजन किसी स्वार्थपूर्ति, आत्मप्रशस्ति, चाटुकारी या फिर चंदा उगाहने के लिए किये जाते हैं । सब जगह ऊपरी टीमटाम एवं बाह्याडंबर ही दिखाई देते है । पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण का भी कुछ प्रभाव है, जो केवल बाह्याचरण का आभास करती है । समाज के मानवी में दिखावे की भावना बढ़ गयी है । फलतः सब जगह ढोंग, पाखंड, आडंबर एवं झूठे प्रचार का महत्त्व बढ़ गया है । इन्ही बुराईयों के कारण संस्कृति अपनी महानता खो रही है ।

आज के युग में बहुत से समारंभ एवं कार्यक्रम सिर्फ दिखावे की भावना से किये जाते हैं । सांस्कृतिक कार्यक्रमों के इस आडंबर पर परसाईजी ने अपने 'सांस्कृतिक हुल्लड़' नामक रचना में उक्ति–वैचित्र्य द्वारा व्यंग्य कसकर वास्तविक परिस्थिति का चित्रण किया है – ''साधो, वहाँ नृत्यु संगीत, नाट्य आदि हुए और कार्यक्रम में मेरा मन खुश हुआ । देखो, गलत मत समझना–नृत्य, संगीत, नाट्य देखकर खुश नहीं हुआ । वहाँ एक और कार्यक्रम हुआ, जिसका उल्लेख निमंत्रण पत्र पर नहीं था । साधो, वहाँ आवाजें कसी गयीं, गालियाँ बकी गयी । कार्यकर्ता ने माईक पर कहा कि सभी माताएँ, बहिनें रुक जाये । यह सुनकर पुरुषों को याद आया कि उनका क्या कर्तव्य है । उन्होंने महिलाओं पर कागज वगैरह फेंके । साधो, कुछ लोग इसे हुल्लड़ कहते हैं । वे गलत हैं । साधो, वास्तविक सांस्कृतिक कार्यक्रम यही है । संयोजक समझते है कि नृत्य, संगीत, नाट्य हमारी सांस्कृतिक उपलब्धि के चिन्ह है । यह सरासर झूठ है, इनके सिवा जो अन्य कार्यक्रम वहां होते हैं, वही हमारी संस्कृति के चिन्ह है ।''[६६]

आज के युग में हमारी संस्कृति केवल बाह्याचार एवं आडंबर से युक्त ही हो गयी है । आज पुराने समय के कोई नैतिक मूल्य दिखाई नहीं देते । पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण में हमारी अपनी संस्कृति पतन के मार्ग पर चल रही है, इसी का परसाईजी ने यथार्थ वर्णन किया है ।

(५) ईमानदारी एवं परिश्रम के गिरते मूल्य :

भारतीय संस्कृति में इमानदारी एवं परिश्रम का बहुत बड़ा महत्त्व माना जाता है । पर आज के आधुनिक युग में जहाँ समाज में अनेको बुराईयाँ फैल गयी है, वहाँ ईमानदारी एवं परिश्रम का कोई मूल्य नहीं रह गया है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में सर्वत्र बेईमानी एवं कामचोरी का प्रभुत्व छा गया है । प्रत्येक मनुष्य को शीघ्रता से अर्थोपार्जन करना है, अतः वे बेईमानी के मार्ग के धन कमाने की योजनाएँ बनाने लगे । परिणामतः समाज में निष्ठा या ईमानदारी का कोई मूल्य नहीं रहा । सबके विचारों में बेईमानी व कामचोरी की भावना फैल गयी । संस्कृति के आर्दश ऐसे इन तत्त्वों का कोई महत्त्व नहीं रह पाया । आजादी के बाद भारत ने अपनी संस्कृति का नाश करने में कोई कसर नहीं छोड़ी ।

परसाईजी ने अपने साहित्य में संस्कृति के इस मूल्यवान तत्त्वों का विनाश हो रहा है, इस बात का संकेत दिया है । 'जैसे उनके दिन फिरे', कहानी में परसाईजी ने राजा और उसके चारो बेटों की कथा के माध्यम से यह बात सिद्ध करना चाही है कि आज के युग में ईमानदारी एवं परिश्रम का कोई मूल्य नहीं है । राजा का एक पुत्र बड़ी ही महेनत एवं ईमानदारी से धन कमाकर अपने पिता को दिखाता है, पर उसकी जगह राजा ने दूसरे भ्रष्टाचारी बेटे को ही राजा बनाया । इस निष्ठावान बेटे को उसकी निष्ठा का कोई मूल्य नहीं मिलता । बड़ा पुत्र राजा से कहता है – "मैं जब दूसरे राज्य में पहुँचा, तो मैंने विचार किया कि राजा के लिए ईमानदारी और परिश्रम बहुत आवश्यक गुण है । इसलिए मैं एक व्यापारी के यहाँ गया और उसके यहाँ बोरे ढोने का काम करने लगा । पीठ पर मैंने एक वर्ष बोरे ढोये हैं, परिश्रम किया है । ईमानदारी से धन कमाया है । मजदूरी में से बचायी हुई ये सौ स्वर्णमुद्राएँ ही मेरे पास हैं । मेरा विश्वास है कि ईमानदारी और परिश्रम ही राजा के लिए सबसे आवश्यक है और मुझमें ये है, इसलिए राजगद्दी का अधिकारी मैं हूँ ।"[७०]

पर वास्तविकता इससे उल्टी ही होती है । राजा अपने छोटे पुत्र, जो बिलकुल अनैतिक एवं भ्रष्टाचारी है, उसे ही राजा बनाता है । यहाँ परसाईजी यही बताना चाहते है कि आज की संस्कृति में ईमानदारी एवं परिश्रम बिलकुल निरर्थक हो गये हैं । आज के युग में बेईमानी, षडयंत्र, पाखंड और झूठ ही संस्कृति के मानदंड बन गये है । आज के आधुनिक युग में संस्कृति का संपूर्ण ह्रास होता जा रहा है ।

आज का भारतीय सांस्कृतिक परिवेश विकृतियों, विसंगतियों से युक्त है । प्राचीन और नवीन सांस्कृतिक स्थिति एक विचित्र सी कश्मकश की स्थिति में झूल रही है । न तो पुराने आडंबर, परंपराएँ, रुढ़िगत संस्कार, अंधविश्वास आदि छूट पा रहे है और न ही कोई दृढ़ व नवीन सांस्कृतिक परिवेश बन पा रहा है । ऐसी विडंबनापूर्ण संस्कृति का संपूर्ण वास्तविकता से परिपूर्ण चित्रण परसाईजी ने व्यंग्य के माध्यम से किया है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जहाँ हमारी संस्कृति को और मजबूत होना था, वहां संस्कृति अपनी मान्यताओं, मानदंडों व सिद्धांतों पर खडी थी और नवीनता के नाम पर पश्चिम का प्रभाव स्पष्ट नजर आ रहा था । नई और पुरानी पीढ़ी ने पश्चिमी संस्कृति का ऐसा अंधानुकरण किया कि दुष्परिणाम सामने आने लगे । प्राचीन संस्कृति से जुड़ी पुरानी पीढ़ी को, यदि वह कुछ अच्छा ग्रहण करना भी चाहे, तो नहीं करने देती । नई क्रांति और आदर्श की बात को पुरानी पीढ़ी देश द्रोह कहती है । परसाईजी ने संस्कृति पर लिखा है, ‘‘जनता की नयी संस्कृति यानी ओछापन, टुच्चापन, उथलापन, नीचता, कमीनापन, नफरत, अविश्वास, अशिष्टता, दो मुँहापन । क्या इस नयी संस्कृति को हम लोग अपना ले ? ... मैं समझना चाहता हूँ, इस संस्कृति को । किसी की जीत पर बधाई न दे, नमस्ते का जवाब न दे, कोई बीमार पड़ जाये तो उसका हाल न पूछें, बीमार के इलाज का प्रबंध न करें ।’’[७१]

भारतीय संस्कृति जो विदेशों में भी प्राचीनता, अनेकता में एकता, राष्ट्रीय एकता और अखंडता के कारण मान प्राप्त कर रही हैं, आज पतन के गर्त में

जा रही है । विदेशी अंधानुकरण और आधुनिकता के कारण यह महान संस्कृति अपना आदर्श खो बैठी है । परसाईजी ने आलोचनात्मक शैली अपनाते हुए, कहीं उपहास और कहीं व्यंग्योक्ति द्वारा भारतीय संस्कृति के ह्रास का चित्रण किया है । परसाईजी का साहित्य भारतीय संस्कृति का वह प्रतिबिंब हे, जिसमें इसका विकृत रूप भी स्पष्ट दिखाई देता है ।

❀ निष्कर्ष :

"साहित्य समाज का दर्पण है ।" यह उक्ति परसाईजी के साहित्य पर पूर्णतः चरितार्थ होती हे । उनका सारा लेखन सोद्देश्य है और सभी रचनाओं के पीछे एक साफ–सुलझी हुई वैज्ञानिक जीवन दृष्टि है, जो अपने युग में फैले हुए भ्रष्टाचार, ढोंग, अवसरवादिता, अन्धविश्वास, सांप्रदायिकता आदि कुप्रवृत्तियों पर तेज रोशनी के लिए हर समय सतर्क रहती है । कहने का ढंग चाहे कितना हल्का फुल्का हो, किन्तु हर रचना आज की जटिल परिस्थितियों को समझने के लिए एक अंतर्दृष्टि प्रदान करती हे ।

परसाईजी के साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर भारत अथवा बींसवी शताब्दी के उत्तरार्ध का भारत प्रतिबिम्बित है । आपने अपनी रचनाओं में स्वातंत्र्योत्तर भारत की विभिन्न परिस्थितियों तथा उनकी राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक, आर्थिक इत्यादि विसंगतियों का संपूर्ण लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है । इन विसंगतियों में परसाईजी की दृष्टि व्याख्यात्मक नहीं है, बल्कि उन्होंने इसे सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उभारा है । कार्य एवं कारण संबंधों को पूरी तरह स्पष्ट किया है । परसाईजी का रचनाक्षेत्र बहुत ही व्यापक है । उनके साहित्य में भारतवर्ष का संपूर्ण समष्टि इतिहास, वातावरण, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश तो उपस्थित है ही, विश्व का प्रत्येक राजनैतिक घटनाक्रम भी मौजूद है । वहाँ पहुँचकर परसाईजी विश्व की संपूर्ण मानवीय चेतना के साथ एकाकार हो जाते हैं ।

परसाईजी के साहित्य पर डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते है – ‘‘आज आजादी के पचास वर्ष पर देश की स्थिति पर लिखने के लिए परसाई नहीं है । व्यक्ति पूजा की बात अलग । परसाई नहीं है, तो फिलहाल तो कोई और नहीं है । शायद बहुत दिनो तक । देश प्रेम एवं मानव प्रेम, सौंदर्य बोध के ही दायरे में आता है । जिसे अपने देश की संस्कृति की चिन्ता होती है, वही देश में घटनेवाली प्रत्येक घटना को इतनी चौक्सी से देखता है और अभावग्रस्त का पक्षधर होकर उसका लेखा–जोखा करता है । परसाई लगभग ४ दशकों तक देश और दुनिया की घटनाओं से व्यथित–क्षुब्ध, आह्लादित होते रहे । अनवरत रचना करते रहे । परसाई किसी सेठ या प्रतिष्ठान के अलंकार नहीं बने । यह निरन्तरता उस सौंदर्य बोध की माँग और जिम्मेदारी थी ।’’[७२]

परसाईजी ने मानव की ऊपरी शारीरिक विसंगति को नहीं देखा । इन्होंने मानव मन और उसके आस–पास की व्यवस्था और परिवेश की विसंगति को परखा और गहरे जाकर उस पर अपनी कलम चलायी । इन्होंने विसंगतियों को सुधार की दृष्टि से नहीं देखा । वे व्यवस्था और परिवेश को बदल ने में विश्वास रखते है । इनका साहित्य सामान्य जन को व्यवस्था और परिवेश के यथार्थ के निकट ले गया और इस रूप में यथार्थ से अवगत कराया है कि पाठक परिवर्तन के लिए चेष्टाशील हो जाए ।

श्री भीष्मसाहनीजी लिखते है कि ‘‘फिलीस्तान की एक कवयित्री को इजराइली अधिकारियों ने जेल में बन्द करते समय कहा कि उस कवयित्री की एक एक कविता एक फौजी ब्रिगेड के बराबर वार करती है । आज के हमारे विसंगतियों भरे जीवन में परसाईजी की लेखनी भी पांखड, अन्याय, अमानुषिकता पर वैसे ही सशक्त और पैने वार कर रही है । अपने देशवासियों को सामाजिक जीवन की विसंगतियों और अंतर्विरोधों के प्रति सचेत करना बड़े महत्त्व का काम हैं और इसे परसाईजी बड़ी खूबी से निभा रहे हैं । उनका व्यंग्य मनोविनोद का तथा पाठक को सचेत करने का ही अस्त्र नहीं, समाज

की सही तस्वीर पेश करनेवाला, संघर्ष की प्रेरणा देनेवाला शक्तिशाली अस्त्र भी है ।''[७३]

हरिशंकर परसाई आधुनिक युग के कबीर है । उन्होंने अपने साहित्य की पृष्ठभूमि में अपने युग की तमाम समस्याओं, यातनाओं तथा पीडाओं को वाणी दी है । समाज सेवा, धर्म, क्रान्ति तथा सुधार का नकाब पहने हुए लोगो के नकाब फाड़कर उन्हें खड़े बाजार नंगा करने का अपूर्व एवं अदम्य साहस और शौर्य का अपनी सशक्त लेखनी से परिचय दिया है । उनकी प्रत्येक रचना हिन्दी गद्य साहित्य का बेजोड़ रत्न है । परसाईजी का साहित्य कालजयी है, जीवन का कोई कोना ऐसा नहीं छूटा है, जहाँ परसाईजी के व्यंग्य तीर न पहुँचे हो और जो परसाईजी के साहित्य में न चित्रित हो । बड़ी व्यापक और पैनी नजर मिली है परसाईजी को । परसाईजी के साहित्य की पृष्ठभूमि का फलक इतना व्यापक है कि कागज की थोड़ी सी सीमा में सारे चित्र नहीं उरेहे जा सकते । यह तो केवल एक प्रयास है । तत्कालीन युगीन जो सारी विषमताएँ एवं विसंगतियाँ है, यही उनके साहित्य की पृष्ठभूमि है । परसाईजी का साहित्य वह दर्पण है, जिसमें आजादी के बाद का भारत अपनी संपूर्ण यथार्थता के साथ प्रकट होता है । वास्तव में परसाईजी का साहित्य युग का साहित्य है । अंत में श्रीकमला प्रसादजी का यह कथन लिखकर यहाँ समापन करते है कि ''हरिशंकर परसाई युग साक्षी रचनाकार थे । उनका लेखन स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का प्रामाणिक दस्तावेज है ।''[७४]

संदर्भ सूची :

क्रम	पुस्तक – लेखक	पृष्ठ
१	तुम्हारा परसाई – श्री कांतिकुमार जैन	२६६, २७१
२	हिन्दी व्यंग्य साहित्य – डॉ. ए. एन. चन्द्रशेखर रेड्डी	१६
३	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ – श्री हं. शं. परसाई 'जमाखोर की क्रांति'	१०२
४	परसाई रचनावली – भाग–१ 'आमरण अनशन'	३१२
५	परसाई रचनावली – भाग–२ 'चमचे की दिल्लीयात्रा'	१६३
६	परसाई रचनावली – भाग–१ 'हम बिहार से चुनाव लड़ रहे है'	२५३
७	परसाई रचनावली – भाग–१ 'जिसकी छोड़ भागी'	५५
८	परसाई रचनावली – भाग–१ 'भ्रष्टाचार का तावीज'	९८
९	परसाई रचनावली – भाग–१ 'सुदामा के चावल'	२६३
१०	परसाई रचनावली – भाग–१ 'सुदामा के चावल'	२६६
११	व्यंग्यकार ह.प. और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	८४
१२	परसाई रचनावली भाग–१ 'लघुशंका न करने की प्रतिष्ठा'	१६२
१३	परसाई रचनावली भाग–२ 'इन्स्पेकटर मातादीन चाँद पर'	१३८
१४	परसाई रचनावली भाग–३ 'कचहरी जानेवाला जानवर'	२०६
१५	परसाई रचनावली भाग–१ 'हनुमान की रेलयात्रा'	३९७
१६	परसाई रचनावली भाग–२ 'लिफ्ट'	३३४
१७	परसाई रचनावली भाग–१ 'जिसकी छोड़ भागी'	५४
१८	ह. प. और नागफनी की कहानी – डॉ. नन्ददाल कल्ला	९४
१९	आँखन देखी– बदलाव की पक्षधरता – श्रीमधुमासचन्द	४४४
२०	परसाई रचनावली भाग–१, 'भोलाराम का जीव'	१७०
२१	परसाई रचनावली भाग–१, 'जिसकी छोड़ भागी'	५५
२२	परसाई रचनावली भाग–२, 'तट की खोज'	९४
२३	परसाई रचनावली भाग–२, 'तट की खोज'	९४

२४	परसाई रचनावली भाग–२, 'रानी नागफनी की कहानी'	४०,४१
२५	परसाई रचनावली भाग–१, 'रामदास'	३६
२६	परसाई रचनावली भाग–१, 'दो नाकवाले लोग'	२७१
२७	परसाई रचनावली भाग–१, 'दो नाकवाले लोग'	२७२
२८	परसाई रचनावली भाग–१, 'जैसे उनके दिन फिरे'	३७१
२९	ऐसा भी सोचा जाता है – ह. परसाई	२६
३०	ह. प. व्यक्तित्व एवं कृतित्व – डॉ. मनोहर देवलिया	४२
३१	परसाई रचनावली भाग–१, 'सदाचार का तावीज'	१००
३२	परसाई रचनावली भाग–१, 'साधना का फौजदारी अंत'	८६
३३	परसाई रचनावली भाग–२, 'एक गोभक्त से भेंट'	१५८
३४	परसाई रचनावली भाग–१, 'भगत की गत'	४१४
३५	परसाई रचनावली भाग–१, 'वैष्णव की फिसलन'	१६५
३६	परसाई रचनावली भाग–१, 'राग विराग'	३३५
३७	परसाई रचनावली भाग–१, 'वैष्णव की फिलसन'	१६७
३८	परसाई रचनावली भाग–१, 'दो नाकवाले लोग'	२७४
३९	परसाई रचनावली भाग–४, 'महायज्ञ या पाखंडयज्ञ'	३५६
४०	परसाई रचनावली भाग–३, 'अपनी अपनी बीमारी'	१४४
४१	परसाई रचनावली भाग–२, 'भूख के स्वर'	२३१
४२	परसाई रचनावली भाग–१, 'भोलाराम का जीव'	१७०
४३	परसाई रचनावली भाग–१, 'अकाल उत्सव'	३१३
४४	परसाई रचनावली भाग–३, 'किताबों की दूकान और दवाओं की'	५३
४५	परसाई रचनावली भाग–१, 'जैसे उनके दिन फिरे'	३७०
४६	ह. प. व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि – प्रो. राधेमोहन शर्मा	५७
४७	परसाई रचनावली भाग–५, 'शिक्षकों की प्रतिष्ठा'	३०५
४८	परसाई रचनावली भाग–१, 'बैताल की छब्बीसवीं कथा'	३४०
४९	परसाई रचनावली भाग–१ 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया'	४२३

५०	परसाई रचनावली भाग–१, 'आचार्य जी, एक्स्टेन्शन और बागीचा'	५२
५१	परसाई रचनावली भाग–१, 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया'	४२४
५२	परसाई रचनावली भाग–१, 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया'	४२६
५३	परसाई रचनावली भाग–३, 'पगडंयिों का जमाना'	१६३
५४	परसाई रचनावली भाग–१, 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया'	४२३
५५	व्यंग्यकार ह. प. और उनका साहित्य डॉ. अर्चनासिंह	७६
५६	परसाई रचनावली भाग–६, 'रुचि और साहित्य'	२०६
५७	परसाई रचनावली भाग–१, 'आना और न आना रामकुमार का'	८८
५८	परसाई रचनावली भाग–१, 'वे बहादुरी से बिके'	२८८
५६	परसाई रचनावली भाग–१, 'अपने अपने इष्टदेव'	३६२
६०	परसाई रचनावली भाग–१, 'अपने अपने इष्टदेव'	३६४
६१	परसाई रचनावली भाग–१, 'साहब का सम्मान'	२०६
६२	परसाई रचनावली भाग–२, 'रानी नागठनी की कहानी'	३६
६३	परसाई रचनावली भाग–६, 'साहित्यकार का साहस'	१६७
६४	हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. माधव सोनटक्के	२७०
६५	ह. प. व्यक्तित्व एवं कृतित्व – डॉ. मनोहर देवलिया	४१
६६	परसाई रचनावली भाग–१, 'भेड़ें और भेड़िये'	१०५
६७	परसाई रचनावली भाग–१, 'दो नाकवाले लोग'	२७२
६८	परसाई रचनावली भाग–१, 'एक लड़की पाँच दीवाने'	८१
६६	परसाई रचनावली भाग–५, 'सांस्कृतिक हुल्लड़'	२५
७०	परसाई रचनावली भाग–१, 'जैसे उनके दिन फिरे'	३६६
७१	परसाई रचनावली भाग–४, 'शर्म ! शर्म ! संस्कृति'	११५
७२	युगसाक्षी ह. प. – 'परसाई के व्यंग्य का सौंदर्य बोध' – डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी	२०८
७३	आँखन देखी – 'लेखन एक शक्तिशाली अस्त्र' – श्री भीष्मसाहनी	४०२
७४	युग साक्षी हरिशंकर परसाई – श्री कमला प्रसाद	७

❀❀❀

तृतीय अध्याय
उपन्यासकार हरिशंकर परसाई

- विषय प्रवेश
- हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास
- उपन्यास के तत्त्व
- हिन्दी उपन्यास : विषय वैविध्य
- उपन्यास में व्यंग्य–प्रयोग
- उपन्यासकार परसाई
- परसाईजी के उपन्यास
  - ➢ कथ्यगत विशेषता
  - ➢ शिल्पगत विशेषता
  - ➢ चरित्रगत विशेषता
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

तृतीय अध्याय
उपन्यासकार हरिशंकर परसाई

❀ विषय प्रवेश :

साहित्य मनुष्य के भावों, विचारों एवं क्रिया कलापों की अभिव्यक्ति है । साहित्य का सृष्टा सामाजिक प्राणी होने के नाते अपनी रचना की सामग्री समाज से ग्रहण करता है । इसलिए साहित्य मनुष्य के भावों, विचारों और क्रिया-कलापों की अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति भी हो जाता है । साहित्य और समाज के सम्बन्धों के बारे में परंपरा से बहुत कुछ कहा और लिखा गया है, चूँकि साहित्य-सामाजिक जीवन से ही उत्पन्न होता है व प्राणरस ग्रहण करता है, अतएव दोनों का संबंध अत्यन्त घनिष्ठ माना गया है । समाज अपने स्तर पर साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य अपने ढंग से समाज पर अपनी छाप छोडता है । साहित्य और समाज का सम्बन्ध द्वन्द्वात्मक और अन्योन्याश्रित है ।

यदि भारतीय साहित्य के विकासक्रम को देखे तो प्राचीनकाल से लेकर पूरे मध्यकाल तक साहित्य मुख्यतः पद्य रूप में ही उपलब्ध होता है, हमारे यहाँ १९ वीं सदी से साहित्य और समाज के आधुनिक युग का प्रारंभ माना गया है । १९ वीं सदी में ही विज्ञान और औद्योगिकरण की शुरुआत हमारे यहाँ हुई और १९ वीं सदी से ही भारतीय समाज में आधुनिक चेतना का प्रसार और प्रचार हुआ । इसी सदी के साहित्य के सन्दर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना साहित्य में गद्य विधा का आविर्भाव है । गद्य-विधा के साथ ही गद्य-भाषा भी १९ वीं सदी की देन है । संपूर्ण भारतीय साहित्य में गद्य-विधा १९ वीं सदी में गद्य-भाषा के साथ सामने आयी और प्रेस तथा अन्य वैज्ञानिक सुविधाओं की वृद्धि के साथ गद्य के अनेक रूप प्रकाश में आये । इसलिए

उपन्यास, कहानी एवं गद्य की अन्य विधाओं को आधुनिक युग की देन माना जाता है ।

यों तो गद्य का रूप क्षेत्रीय भाषाओं में मध्यकाल में भी उपलब्ध होता है, परन्तु जिसे खड़ीबोली का गद्य कहते है, उसका प्रारंभ १६ वीं सदी में आधुनिक काल के साथ ही होता है । खड़ीबोली गद्य की जो विधाएँ आधुनिक काल में विकसित हुई, उनमें उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त निबन्ध, लघुकथा, आलोचना, रेखाचित्र, संस्मरण आदि प्रमुख है । इनमें भी उपन्यास और कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय विधाएँ है । खड़ीबोली गद्य की उपन्यास विधा अपने आप में अनूठी एवं प्रभावशाली रही है, हम उपन्यास विधा के विषय में विस्तार से देखे ।

❀ हिन्दी उपन्यास – उद्भव एवं विकास :

'उपन्यास' शब्द का व्युत्पति–लभ्य अर्थ है = उप अर्थात् निकट और न्यास अर्थात् रखा हुआ । तात्पर्यार्थ जो जीवन के अत्यन्त निकट हो, वह उपन्यास है । साहित्य का यह अंग महत्त्वपूर्ण है, जिसका विकास अपेक्षाकृत आधुनिककाल में हुआ है । भारतीय संस्कृत–साहित्य में हितोपदेश, पंचतंत्र, कथा–सहित्सागर, बृहत्कथा, वैतालपंचविशंति, वासवदत्ता, दशकुमार चरित तथा कादम्बरी आदि कथा–साहित्य ग्रंथो में औपन्यासिकता अपने यत्किंचित रूप में विकसित हो चुकी थी । हाँ, यह दूसरी बात है कि उक्त ग्रंथो में आधुनिक उपन्यासों के सारे गुण और योग्यताएँ मिलनी सम्भव नहीं है । कतिपय विद्वानो के अनुसार बाण की 'कादम्बरी' भारत का पहला उपन्यास है । इसका प्रमाण यह है कि मराठी साहित्य में 'उपन्यास' शब्द का पर्यायवाची शब्द 'कादम्बरी' आज भी प्रचलित है । किन्तु 'कादम्बरी' में अलौकिकता, भावात्मकता और अलंकारिकता के अत्यधिक आग्रह के कारण उसे आधुनिक उपन्यास की परिभाषा के अर्थ में ग्रहण करना असंगत होगा । 'दशकुमार चरित' में आधुनिक उपन्यास की बहुत सारी योग्यताएँ विद्यमान है ।

हिन्दी में उपन्यास नामक गद्य की विधा का वर्तमान रूप में प्रादुर्भाव आधुनिककाल से ही माना जा सकता है । उपन्यास को मानव–सम्बन्धो की कथा समझा गया है । डॉ. श्यामसुन्दरदासने उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा माना है, तो प्रेमचंदजी जैसे उपन्यास सम्राटने उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र समझा है । स्पष्टतः कहा जा सकता है कि मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना तथा उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल कार्य है । हिन्दी उपन्यास के उद्भव–विकास के सन्दर्भ में डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखते है कि – ''आधुनिक हिन्दी साहित्य के अन्य अंगो के समान उपन्यास का विकास भी अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव और सम्पर्क से हुआ है । युरोप में उपन्यास साहित्य का विकास रोमांटिक कथा–साहित्य से हुआ । युरोप का रोमांटिक कथासाहित्य भारतीय प्रेमाख्यानों की अरबों के माध्यम से विश्वयात्रा के समय उनसे निश्चित रूप में प्रभावित हुआ होगा । इस प्रकार भारतीय कथा साहित्य अपने थोडे बहुत रूप–परिष्करण और परिवर्तन के पश्चात उपन्यास के रूप में पुनः भारत लौटा । निःसंदेह भारतीय साहित्य में आधुनिक उपन्यासों के बहुत से उपकरण विद्यमान थे, किन्तु १९ वीं शती के हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्भव और विकास अंग्रेजी साहित्य के परिणाम स्वरूप हुआ ।''[१]

हिन्दी साहित्य में मौलिक उपन्यासों का उद्भव भारतेन्दु–युग में ही हो गया था । हिन्दी उपन्यास के इतिहास को एक शताब्दी जितना समय बित चुका है । इन सौ वर्षो में यह विधा अनेक मोडो से गुजरी है । अध्ययन की सुविधा के लिए इस विधा को तीन सोपानों में विभाजित किया गया है –

१. प्रेमचंद पूर्व युग – सन १८८२ से १९१६ तक
२. प्रेमचंद युग – सन १९१६ से १९३६ तक
३. प्रेमचंदोत्तर युग – सन १९३६ से आजतक

लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' उपन्यास हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाता है । डॉ. महेन्द्र भटनागर के शब्दों में – ''लाला श्रीनिवासदास के

'परीक्षा–गुरु' को हिन्दी के प्रथम उपन्यास का गौरव प्राप्त है ।"[२] श्री प्रकाश के शब्दों में – "श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरु' को अधिकांश विद्वानोंने वस्तु, शिल्प, भाषा आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी का पहला उपन्यास माना है ।"[३] सर्वप्रथम उपर्युक्त तीनों विभाजन को विस्तृत रूप से देखने का प्रयत्न करे, जो वास्तव में उपन्यास का विकास माना जाता है ।

➢ *विकास : प्रेमचन्द पूर्व युग : १८८२ से १९१६ तक :*

उपन्यास आधुनिक युग की लोकप्रिय विधा है । प्रेमचंद – पूर्व युग के उपन्यासकारों ने प्राचीन परम्परा के आधार पर विषय और उद्देश्य को प्रस्तुत किया है । पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा सरित्सागर और विविध आख्यायिकाओं में से अपना कथ्य चुना है । इन उपन्यासकारों का उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करने के साथ समाज सुधार का भी रहा है । इस युग के उपन्यासकारों ने घटना को महत्त्व दिया । पाश्चात्य प्रभाव क्रमशः उपन्यास की शैली पर बढता हुआ नजर आता है । पाठकों की सुविधा के लिए प्रेमचंदपूर्व युग के उपन्यासों को तीन विभागों में विभाजित किया जाता है –

१. मनोरंजन प्रधान उपन्यास
२. उपदेश या बोधप्रद उपन्यास
३. ऐतिहासिक उपन्यास

मनोरंजन प्रधान उपन्यासों में लेखक उसकी घटना इस तरीके से प्रस्तुत करता है कि पढ़नेवाला दंग रह जाये, दाँतो तले अंगुलियाँ दबाने लगे और कह उठे – 'कमाल है' । उपन्यासकार अनेकविध 'करिश्मो' को प्रस्तुत करता जाता है और पाठकों का कौतुहल शनैः शनैः बढता जाता है । मनोरंजनप्रधान उपन्यास की भाषा सरल बोलचाल की भाषा रही है । जासूसी उपन्यास में जासूस अपने बुद्धि–कौशल से पाठको को विस्मित करता है और घटना का भेद प्रस्तुत करके – खोलकर कौतूहल का शमन करता है । प्रेमचंदपूर्व–युग के उपन्यासकारों में बाबू देवकीनंदन खत्रीजी का नाम सर्वाधिक लोकप्रिय है । इनके

उपन्यासों में तिलस्म का एक जाल फैला हुआ नजर आता है । डॉ. कृष्णा मजीठिया ने अपने 'प्रेमचंद पूर्व हिन्दी के जासूसी व तिलस्मी उपन्यास' नामक लेख में देवकीनन्दन खत्री के बारे में लिखा है – "उस युग में जब हिन्दी क्षेत्र में उर्दू का बोलबाला था, हिन्दी के पाठक बहुत कम थे । खत्रीजी ने हिन्दी को असंख्य पाठक दिये । उनके उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें पढ़ने के लिए लोगों ने हिन्दी सीखी । यह खत्रीजी की कलम का कमाल था ।"[४] खत्रीजी की प्रसिद्ध तिलस्मी रचनाओं में 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता संतति' और 'भूतनाथ' अत्यधिक लोकप्रिय रचनाएँ रही हैं । कहा जाता है कि भूतनाथ के सम्पूर्ण होने के पहले खत्रीजी का स्वर्गवास हो गया । इसलिए शेष १५ भाग इनके सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने लिखे ।

मनोरंजन के साथ-साथ उपदेश के तत्त्व को प्राधान्य देनेवाले उपन्यासों में बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान और एक सुजान', राधा कृष्णदास का 'निस्सहाय हिन्दू' और लज्जाराम मेहता के 'आदर्श हिन्दू', 'बिगडे का सुधार' इत्यादि उपन्यासों का समावेश होता है । उपदेश प्रधान उपन्यासों का उद्‌देश्य उपदेश या बोधप्रद बातें कहकर समाज में सुधार लाना होता था । अतः इस युग में उपदेश प्रधान उपन्यास भी लिखे गये । कुछ उपन्यासकारों ने इतिहास को प्रधानता देकर ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे । इस प्रकार के उपन्यासों का विषय-वस्तु इतिहास से लिया जाता था । इस प्रकार के उपन्यास लिखनेवालों में श्री किशोरीलाल गोस्वामी का नाम प्रमुख है, जिन्होंने इस युग में ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, तिलस्मी इत्यादि सभी विषयो को लेकर उपन्यास लिखे है । इस युग के एक अन्य उपन्यासकार गोपालराम गहमरी थे, जिन्होंने हिन्दी में जासूसी उपन्यास का प्रारंभ किया था । इस तरह इस युग में विभिन्न विषयों पर उपन्यास लिखे गये, अपितु इनका उद्‌देश्य विशेषकर मनोरंजन के साथ ज्ञान-प्रदान था ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंदपूर्वयुग एक निर्माण – काल रहा है, जिसके अंतर्गत उपन्यास अपने शैशवावस्था में था । सरल बोलचाल की जन

सामान्य सुलभ भाषा का प्रयोग करते हुए इस युग के उपन्यासकारों ने उपन्यास विधा को अत्यन्त लोकप्रिय बनाया । इस काल के उपन्यासों के संदर्भ में डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखते हैं – ‘‘प्रेमचन्द से पूर्व इस काल की कोई भी ऐसी कृति नहीं है, जो कि साहित्य की स्थायी सम्पति बनने के योग्य हो । प्रेमचन्द पूर्व के उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है ।.... इस काल के उपन्यासों में जीवन की आलोचना और गम्भीर दृष्टि का अभाव हैं ।’’[५]

➢ *प्रेमचन्दयुग – सन १९१६ से १९३६ :*

प्रेमचंद–युग हिन्दी उपन्यास साहित्य का स्वर्णकाल है । प्रेमचन्द–पूर्व युगीन साहित्यकारों ने मिलकर उपन्यास विधा की नींव डाली और उस पर भव्य–प्रासाद खडा करने का कार्य इस युग के साहित्यकारों ने किया । इस युग के प्रमुख साहित्यकारों में स्वयं प्रेमचंदजी, प्रसादजी, विश्वम्भरनाथ शर्मा ‘कौशिक’ और पांडेय बेचेन शर्मा ‘उग्र’ प्रसिद्ध है । प्रेमचंदजी ने हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा दी है । डॉ. महेन्द्र भटनागर के शब्दों में – ‘‘प्रेमचंद को लोगों ने हिन्दी साहित्य का प्रथम सौन्दर्य प्रसाधक कहा है । उन्होंने उपन्यासों के अंग–प्रत्यंग को इस सौष्ठवपूर्ण ढंग से सजाया कि कहीं कोई भी कडी असंगठित–सी न मालूम पड़े । जिसे अंग्रेजी में ‘ओडरली अनफोल्डिंग’ कहते है । वह अपने पूर्ण गौरव के साथ सामने आया ।’’[६]

इसी युग से उपन्यास को एक मंजी हुई, कसी हुई मुहावरेदार भाषा मिली, जिसमें भाषाभिव्यंजकता के दर्शन हुए । इसके साथ ही साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं का चित्रण प्रारंभ हुआ । ग्रामीण समाज का सर्वप्रथम चित्रण प्रेमचंदजी के उपन्यासों में मिलता है । इस युग के उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में मध्यम वर्ग के जीवन का चित्रण यथार्थ ढंग से किया है । इसके साथ ही विधवा नारी की समस्याओं का निरूपण भी यथेष्ठ ढंग से हुआ है । भाषा और रचना–शैली की दृष्टि से उपन्यास शिल्प का इस युग में उत्तरोत्तर विकास होता गया । डॉ. शिवकुमार ने यथार्थ लिखा

है – ‘‘उपन्यासकार सम्राट मुंशी प्रेमचंद के पदार्पण से उपन्यास साहित्य की रिक्तता की पूर्ण–अर्थो में पूर्ति हुई । वस्तुतः वे हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार तथा युग–प्रवर्तक है । इनके उपन्यासों में प्रथम बार जन–सामान्य को वाणी मिली और कला केवल मनोरंजन का खिलवाड न रहकर जीवन मर्मो को उद्घाटित करनेवाली बनी ।’’[७] इस युग के महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में ‘गोदान’, ‘गबन’, ‘रंगभूमि’, ‘कर्मभूमि’, ‘सेवासदन’, ‘प्रतिज्ञा’, ‘निर्मला’, ‘कंकाल’, ‘तितली’, ‘इरावती’, ‘माँ’, ‘भिखारिणी’ इत्यादि सभी उपन्यास प्रमुख है । वास्तव में प्रेमचंदजी शताब्दियों से पददलित अपमानित और उपेक्षित कृषको की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद–पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकारों के महत्त्व के प्रचारक थे । यदि हम उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझ–बूझ जानना चाहते है, तो प्रेमचंदजी से उत्तम परिचायक हमें और कोई नहीं मिल सकता । प्रेमचंदजी ने अपने उपन्यासों में झोंपडियों से लेकर महलों तक, खोमचे वाले से लेकर बैंको तक, गाँव से लेकर धारा–सभाओं तक–जीवन के हर पहलू पर बड़े ही कौशलपूर्वक एवं प्रामाणिक भाव से अपनी लेखनी चलायी है । अतः यह पूरा युग उन्हीं के नाम से पहचाना जाता है ।

इस प्रकार प्रेमचंदयुग में उपन्यास विधा के अंतर्गत विशाल जन–जीवन और विशेषतः भारत के किसान और मध्यवर्गीय जीवन की अनेकमुखी समस्याएँ कलात्मक रूप से चित्रित हुई ।

➢ *प्रेमचंदोत्तर युग : सन १९३६ से अब तक :*

प्रेमचंदजी का निधन सन १९३६ में हुआ । इसी युग में ‘प्रगतिशील लेखक संघ’ की स्थापना हुई । इसके साथ ही एक नये साहित्यिक युग का प्रारंभ हुआ । डॉ. मिश्रजी के अनुसार – ‘‘हिन्दी कथा–साहित्य को प्रेमचंद की सबसे महान देन यथार्थवाद है । प्रेमचंद की इस परम्परा को प्रगतिशील

जीवन दृष्टि से प्रभावित परवर्ती कथाकार न केवल आगे बढाते हैं, सम-सामयिक अनेक कथाकारो के विपरीत प्रयत्नों से उसकी रक्षा करते हुए, उसे पुष्ट भी करते हैं । यशपाल, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, नागार्जुन, मार्कण्डेय, अमरकान्त, राजेन्द्र यादव, एवं अमृतराय का स्मरण इस क्रम में स्वाभाविक ही है ।"[८] प्रेमचंदजी के बाद हिन्दी-उपन्यासों में सामाजिक चित्रण अधिक यथार्थ ढंग से होने लगा । इस युग के प्रारंभ में भारत के राजनीतिक क्षेत्र में भी बड़े भारी परिवर्तन आये और कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई, जिसका प्रभाव इस युग के समग्र साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था । स्वतंत्रता-संग्राम, भारत की आजादी के बाद देश की स्थिति एवं युग की विभिन्न परिस्थितियों तथा युगीन घटनाओं की गहरी छाप तत्कालीन उपन्यास साहित्य में दृष्टिगोचर होती है ।

इस युग के उपन्यासकारों ने अनुभूत सत्य को शब्द-बद्ध किया और उसे बोधकता के साथ व्यक्त करने लगे । गरीबी, बेरोजगारी, पारिवारिक विघटन, टूटते दाम्पत्य-जीवन, कुण्ठा और अभावों का चित्रण उपन्यासों में सर्वत्र अधिक होने लगा । मार्क्स, फ्राईड और सार्त्र की विचारधारा के प्रभाव में आकर जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी और अज्ञेय जैसे साहित्यकारोंने भूख, काम और अस्तित्व को लेकर उपन्यास लिखे । इस तरह इस काल के उपन्यासकारों पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट झलकने लगा । काम और कुष्ठा का अधिकतर चित्रण होने से एक विकृति सी नजर आने लगी । जीवन के प्रति घोर निराशा के कारण व्यक्तित्व कुण्ठित होने लगा और एक हीनता ग्रंथि फैलने लगी, जिसका चित्रण इस युग के उपन्यासों में अधिक दिखाई देता है । दूसरी और मुक्त यौनाचार की प्रवृत्तियाँ समाज में व्यक्ति-स्वातंत्र्य के आधाक्यि के कारण बढ़ने लगी । डॉ. वार्ष्णेयजी के मतानुसार - "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की एक उल्लेखनीय दिशा यौन-सम्बन्धों की विवेचना भी रही है । किन्तु आज केवल सेक्स, परिवार-विघटन, व्यक्ति आदि की छोटी-सी दुनिया में विचरण करनेवाले बहुसंख्यक उपन्यासकारों के अतिरिक्त कुछ उपन्यासकार ऐसे भी है, जो

स्त्री–पुरुष के सेक्स–स्वातंत्र्य, परिवार आदि से सम्बन्धित परिवर्तित परिवेश में दायित्व – बोध का परिचय देते हुए भी देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विसंगतियाँ पर दृष्टिपात करते और मध्ययुगीन संस्कारों या सामन्तवादी एवं पूंजीवादी संस्कारो पर प्रहार करते और नई पीढी की आशा–आकांक्षाओं का चित्रण करते है ।"[९] भूख, काम और यौनाचार के चित्रणो की बाढ में भी कुछ ऐसे चित्रण हुए है, जिनसे श्रद्धा और आस्था के दर्शन होते है । घोर निराशा में आशा की एक किरण नजर आती है ।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों ने अपने प्रारंभिक रोमानीयत, भावुकता, नैतिकता, उपदेशवादिता इत्यादि से मुक्ति पाकर यथार्थ के नये आयामो की सृष्टि की है । इस संदर्भ में डॉ. नेमीचन्द जैन का मत है कि – "पिछले दस–पन्द्रह वर्षो में हिन्दी–उपन्यास अपनी सार्थकता के लिए कई नये परिप्रेक्ष्य खोजता रहा है और अब उसमें व्यक्ति के आंतरिक सत्य का बाह्य परिवेश के समंजन, रोमान्टिक दृष्टि के बजाय जीवन के यथार्थ साक्षात्कार का प्रयास, भावुकता या भाव प्रधानता के स्थान पर तीखापन, कलात्मक संयम और निर्ममता आदि विशेषताएँ क्रमशः अधिकाधिक दिखने लगी है । अब उपन्यासकार प्रायः यह प्रयत्न करता है कि गहन से गहन अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भी साधारण जीवन के यथासंभव सहज और दैनन्दिनपक्षो का ही सहारा ले, बल्कि शायद उसे यह अनुभव हो सकता है कि गहनतम सत्य और उसकी अनुभूति साधारण जीवन में ही अधिक सम्भव है ।"[१०] वर्तमानयुग के उपन्यासकारों ने जीवन की विसंगतियों का चित्रण यथार्थ ढंग से किया है । सहजानुभूति की सहजाभिव्यक्ति आज के उपन्यासों की एक विशिष्टता रही है । उपन्यास–विधा का सौ वर्षो में हुआ विकास सराहनीय है ।

❀ उपन्यास के तत्त्व :

उपन्यास की आलोचना करते हुए विद्वान पहले छः तत्त्वों की महत्ता पर ध्यान देते थे । जैसे कथावस्तु, चरित्र–चित्रण संवाद या कथोपकथन,

भाषा–शैली, देशकाल–वातावरण एवं उद्देश्य । इन छः तत्त्वों का पूर्णतः निर्वाह किसी भी उपन्यास में होना चाहिए, ऐसा विद्वान का मानना था, लेकिन आज स्वातंत्र्योत्तर युग, जिसे उत्तर आधुनिक युग कहा जाता है और जो उपन्यास की दृष्टि से समृद्ध कहा जाता है, उसमें उपन्यास साहित्य में कथ्यगत एवं शिल्पगत वैविध्य को ही प्राधान्य दिया जाता है । अर्थात् कथ्य एवं शिल्प–दोनों की दृष्टि से उपन्यास की आलोचना हो । ये दोनों तत्त्व आज के युग में उपन्यास–विधा के मानदण्ड माने जाते है । इन दोनों तत्त्वों के साथ कभी–कभी विद्वान चरित्र–तत्त्व की अलग से आलोचना करते हैं । अतः चरित्र को भी उपन्यास के लिए महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है । ऐसा होने पर भी आज के युग में कथ्य–शिल्प में ही सब विशेषताएँ सम्मिलित है, ऐसा मानकर ही इन दो विशेषताओं का निर्वाह उपन्यास–साहित्य में होना पर्याप्त माना जाता है । विद्वानो के मतानुसार कथ्यगत विशेषताओं के अंतर्गत कथानक, चरित्र, रस, भाव, परिवेश, उद्देश्य इत्यादि की चर्चा होती है और शिल्पगत विशेषताओं के अंतर्गत भाषा, शैली, संवाद, छन्द, अलंकार, शब्दचयन, कहावतें, मुहावरे, आदि सभी बातों की चर्चा होती है । वर्तमान उपन्यास–साहित्य के कथ्य–शिल्प की विशेषताओं को लेकर डॉ. शिवकुमार लिखते हें, – ''उसके (उपन्यास के) शिल्प–विधान के क्षेत्र में रिपोर्ताज, वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, व्यंग्यात्मक, डायरी–संस्मरण, रेडियो कमेन्टरी तथा संभाषण आदि शैलियों का उपयोग कर नये–नये औपन्यासिक प्रयोग किये जा रहे है । अतः कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से हिन्दी उपन्यास का भविष्य उत्साहजनक प्रतीत होता है ।''[99]

❀ हिन्दी उपन्यास : विषय–वैविध्य :

हिन्दी उपन्यास – साहित्य के इतिहास को देखा जाय, तो इस विधा में प्रारंभ से लेकर आज तक बहुत–सी विविधता देखने को मिलती है । कई उपन्यासकारों ने इस विधा को अपने नवीनत्तम प्रयोग से सजाया सँवारा है । प्रेमचंदजी से पूर्व हिन्दी उपन्यास–साहित्य में लालाश्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट,

किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी जैसे उपन्यासकार हो गये, जिन्होंने उपन्यास में कल्पना, तिलस्मी एवं जासूसी का प्रयोग करके उपन्यास को रोमांचक बनाया था । इस युग के उपन्यासों के सम्बन्ध में श्री राजनाथ शर्मा लिखते हैं, – ''इन उपन्यासों में एय्यारी का बटुआ लिए कुशल एय्यारों के दाँव–पेच, तिलस्मों के अदभुत लोक, विचित्रताओं, अदभुत घटनाओं आदि का ऐसा कुशल संयोजन हुआ है कि उपन्यासकार पाठकों की इस जिज्ञासा को कि 'आगे क्या हुआ' – निरन्तर उभारे रहता है । इन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इतने खंडो में विभाजित होते हुए भी कथा में कहीं भी शिथिलता नहीं आ पाती ।''[१२]

फिर प्रेमचंदयुग में प्रेमचंदजी, प्रसादजी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सियारामशरण गुप्त, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, जैनेन्द्रकुमार, भगवती प्रसाद वाजपेयी, सुदर्शन, निराला आदि अनेक प्रसिद्ध उपन्यासकार हुए, जिन्होंने उपन्यास–विधा को कल्पना एवं तिलस्मी के जाल से बाहर निकाला और समाज के सामान्य मानव के जीवन के साथ जोड़कर उपन्यास के भीतर समाज एवं आममानव की जिन्दगी को स्थान दिया । श्रीराम प्रसाद मिश्रजी लिखते हैं – ''प्रेमचंद ने हिन्दी–उपन्यास को लक्ष्य दिया । वे उसे ऐय्यारी, तिलस्मी, जासूसी और काल्पनिक भूमि से निकालकर स्वाभाविकता के ध्येय की ओर प्रेरित कर सके ।''[१३]

ऐसे ही प्रेमचंदोत्तर युग में अनेक उपन्यासकारों ने उपन्यास लिखे और आज भी स्वातंत्र्योत्तर युग में कई उपन्यासकार उपन्यास लिख रहे हैं । कई नयी–पुरानी युवा प्रतिभाओं ने इस काल के उपन्यास साहित्य को विषय–वैविध्य और सम्पन्नता प्रदान करने में अपना योगदान दिया है । यशपाल, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि पूर्वकालीन रचनाकारों की परवर्ती रचनाएँ इस काल को उनकी परिष्कृत प्रतिभा से लाभान्वित करती रही है । फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती आदि नये रचनाकारों ने परिवेशानुकूल उपन्यास

को नया रूप दिया, तो रामदरश मिश्र, विवेकीराय, जगदीशचन्द, हिमांशु जोशी, धीरेन्द्र अस्थाना, नरेन्द्र कोहली, हरिशंकर परसाई आदि साठोतर रचनाकारों ने उसे नये आयाम प्रदान किये है । अन्य विधाओं के समान उपन्यास में भी वैयक्तिक मूल्यों से लेकर जनवादी मूल्यों तक की यात्रा के कई पड़ाव दिखाई देते है । मोटे तौर पर आजादी के बाद मूल्यविघटन, राजनीतिक प्रपंच, सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार और व्यवस्थागत दबावों में पिसते लोग उपन्यास के केन्द्र में आये, तो दूसरी ओर वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करनेवाले उपन्यासों की बड़ी मात्रा में सर्जना हुई है । इस विषय में डॉ. शिवकुमार शर्मा यथार्थ लिखते है कि – ''आज का हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द द्वारा प्रदर्शित स्थान से काफी आगे निकल चुका है । आज हिन्दी उपन्यास साहित्य में पर्याप्त विषय वैविध्य है । उसमें सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आंचलिक, व्यक्तिप्रधान, प्रगति एवं प्रयोगपरक, मनोवैज्ञानिक मनोविश्लेषणात्मक आधुनिकता के बोध व सौन्दर्य की समाहिति से युक्त तथा अधुनातन जीवन की नाना जटिलताओं व समस्याओं को संदर्भित करनेवाले उपन्यास निरन्तर लिखे जा रहे हैं ।''[१४]

फलतः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में उपन्यास की व्यक्तिचेतना प्रधान, जनचेतना प्रधान, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, प्रयोगवादी, आधुनिकतावादी, आँचलिक, समाजवादी, राजनैतिक–व्यंग्य बोध, व्यंग्यात्मक, लघुव्यंग्यात्मक आदि कई विधाएँ प्रचलित हुई है ।

अंत में हिन्दी उपन्यास–साहित्य के विषय–वैविध्य को डॉ. गणेशन के शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं – ''जीवन की यथार्थ समस्याओं की गम्भीरता से अनभिज्ञ रहकर आश्चर्यमय अनुसंधियों से आँखमिचौनी खेलनेवाले देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी से लेकर जीवन की गम्भीर–से–गम्भीर समस्याओं का मुँह–दर–मुँह सामना करनेवाले प्रेमचन्द तक, जीवन की विषमताओ के सामाजिक स्वरूप को स्पष्ट करनेवाले प्रेमचन्द और प्रसाद से लेकर मानव–मन की गहराई में उन विषमताओं के मूल का अन्वेषण करनेवाले जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय और देवराज तक, जीवन के उत्कृष्ट आदर्शो के

मधुर स्वप्न देखनेवाले आदर्शवादी श्रीनिवासदास और लज्जाराम मेहता से लेकर कुत्सित से कुत्सित यथार्थो को निरावृत प्रस्तुत करनेवाले उग्रवादी उग्र और मन्मथनाथ गुप्त तक, अतीत की विस्मृतियों को स्मृतितट पर प्रकीर्ण करनेवाले नागार्जुन और रेणु तक, उपन्यास–साहित्य जो विस्तृती और विविधता प्राप्त कर सका है, वह सचमुच एक उज्जवल भविष्य की आशा प्रदान करनेवाला है ।''[१५]

❀ उपन्यास में व्यंग्य–प्रयोग :

हिन्दी उपन्यास की नवीन सृजन परंपरा, सर्वथा नवीन कथ्य और शिल्प के साथ, नए भावबोध के साथ, अनुभूतियों की प्रामाणिकता और जीवन के यथार्थ धरातल का संस्पर्श करते हुए प्रवाहमान हो रही है और जो जीवन तथा समाज के अन्तर्विरोधी पक्षो को अभिव्यक्ति प्रदान करने में समर्थ है । जीवन की मौन वेदना और घुटनशील आत्मचेतना की मुक्ति का आभास इन नवीन औपन्यासिक विधाओं ने प्रदान किया । उपन्यासों के विकास में यह नई गतिशीलता है । एक सर्वथा नवीन स्वरूप जीवन–दर्शन का निर्माण करने के लिए उपन्यासकार ने जीवन की असंगतियों, अन्तर्विरोधों कुण्ठाओं, भावोन्मादो तथा बौद्धिक विक्षोभ का गहराई से अध्ययन किया और फिर समाज के इस रुग्ण को सडने से बचने के लिए नई शल्यक्रिया की पद्धति का अनुशीलन किया । जीवन का मशीनीकरण, खोयी हुई मध्यवर्गी पीढी का अस्तित्व संकट एवं मूल्यों के प्रति अनास्था, सर्वत्र रिक्तता व शून्य का अनन्त फैलाव और विकट परिस्थितियों के तनावपूर्ण क्षणों ने आगे चलकर उपन्यास में एक और नवीन प्रयोग को जन्म दिया, जिसमे उपन्यासकारों ने व्यंग्य के माध्यम से इन सभी विसंगतियों को प्रभावशाली अभिव्यक्ति प्रदानकर मनुष्य की दुखती रगो पर अँगूली रखने का प्रयास किया है ।

वैसे तो आधुनिक हिन्दी–साहित्य में व्यंग्य का प्रारम्भ भारतेन्दुजी से हुआ है । श्री सुदर्शन मजीठिया लिखते हैं – ''भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी व्यंग्य के जनक थे ।...... उसके बाद हिन्दी में साठ के पश्चात व्यंग्य को प्रधानता

मिली । व्यंग्य प्रधान साहित्य हिन्दी में व्यंग्य के नाम से जाना गया । व्यंग्य शब्द ही व्यंग्य प्रधान साहित्य का पर्याय बन गया ।''[१६] परिवेश की मुखरता, मोहभंग की भयानक अनुभूति, जीवन की दुरुहता और अस्तित्व संकट की विद्रूप परिस्थितियों के कंटक जाल से व्यंग्य ही उबार सकता था, इसीलिए उपन्यास में 'लघुव्यंग्यात्मक उपन्यास' का जन्म हुआ । उन समस्त औपन्यासिक कृतियों को 'लघु व्यंग्य उपन्यास' कहा जा सकता है, जिनमें व्यंग्य की निस्संग चेतना के साथ सामाजिक विसंगतियों का उद्घाटन समाज को बदल डालने के उद्देश्य से होता है । आधुनिक परिवेश में लघु व्यंग्य रचनाओं को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हो रही है । व्यंग्यात्मक दृष्टि आधुनिक मानसिकता का एक प्रमुख लक्षण है । लेकिन यह व्यंग्यात्मक दृष्टि भी उपन्यास जैसी लोकप्रिय विधा के माध्यम से ही अधिक प्रभावशाली हो सकती है । वस्तुतः लघु व्यंग्य उपन्यासों की सर्जना लेखनी के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियों के विरुद्ध कांटा चुभाने के प्रयोजन से होती है । डॉ. विनीत गोस्वामी लिखते है, – ''स्वतंत्रता के बाद एक ओर तो व्यंग्य उपन्यास लिखे गये, दूसरी और वे उपन्यास जो व्यंग्य प्रधान न होते हुए भी सामाजिक यथार्थ की आँच से गुजरते हुए विक्षोभ और आक्रोश भरे तीखे व्यंग्य से सामाजिक मर्म को उद्घाटित करते है । इन व्यंग्य उपन्यासों में आदमी की भूख की पीड़ा बड़ी गहराई से व्यंजित हुई है, भूख की भयावहता सामने आ जाती है ।''[१७] हिन्दी उपन्यास में व्यंग्य का सर्वाधिक प्रयोग करनेवाले उपन्यासकारों में रेणु, शिवप्रसादसिंह, नागार्जुन, रामदरशमिश्र, हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, रांगेय राघव, राधाकृष्ण, नरेन्द्र कोहली इत्यादि प्रमुख है । इन साहित्यकारों ने उपन्यास में व्यंग्य को स्थान देकर उपन्यास की विधाओं को अधिक विस्तृत करते हुए उपन्यास को ओर भी समृद्ध एवं सम्पन्न बनाया है । इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास–साहित्य में अनेक नवीन प्रयोग हुए, जिनमें 'व्यंग्य' भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है ।

सारांशतः हिन्दी उपन्यास साहित्य का उपर्युक्त विवरण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हिन्दी की इस विधा ने आशातीत उन्नति की है । इसने विकसित होते हुए आज वह स्थिति और रूप प्राप्त कर लिया है, जिस पर मात्र हिन्दी भाषी ही नहीं, अपितु प्रत्येक भारतीय गर्व कर सकता है । हिन्दी उपन्यास विभिन्न युगीन एवं देशी–विदेशी उपन्यास साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ क्रमशः विकसित हुआ है । अपने इस विकास में उसने वस्तुगत, पात्रगत एवं शिल्पगत नवीन उपलब्धियों के रूप प्रकट किये हैं । अत्याधुनिक हिन्दी उपन्यास इन समस्त उपलब्धियों को आत्मसात कर व्यक्ति और समाज–दोनों की आशा–आकांक्षाओं, जीवन की विषमताओं सुख–दुःख भरी अनुभूतियों का अंकन करते हुए अपूर्व विश्वास आत्मबल और दृढता के साथ आगे बढ रहा है । निःसंदेह यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि भविष्य में हिन्दी–उपन्यास नवीन विकास की मंजिलों को पार करता हुआ युग–जीवन को अधिक शक्ति और उन्नत कला द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करता रहेगा और अमर साहित्य की रचना–सृष्टि पाठकों के समक्ष होगी ।

❀ उपन्यासकार परसाई :

हिन्दी उपन्यास साहित्य समृद्ध एवं विकासशील है । इसमें विभिन्न विषयों पर वैविध्यसभर उपन्यास लिखे गये हैं और अनेक प्रतिभाशाली उपन्यासकारों ने अपना योगदान दिया है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में श्री हरिशंकर परसाई एक ऐसे उपन्यासकार रहे है, जिन्होंने साठोत्तरकाल में व्यंग्य को माध्यम बनाकर लघुउपन्यासों का सृजन किया है । परसाईजी के उपन्यास यथार्थ की प्रामाणिकता एवं अनुभति की सूक्ष्म अभिव्यक्ति के सशक्त और प्रभावोत्पादक माध्यम है । इन उपन्यासों की कालयात्रा ने जीवन के यथार्थ धरातल का संस्पर्श किया है । परसाईजी के उपन्यास औपन्यासिक सृष्टि की एक विलक्षण संरचना है, जिसका प्रयोजन और शिल्प नितान्त अप्रतिम है । यहाँ हम उनके उपन्यास साहित्य का शोध परक अध्ययन करेंगे ।

परसाईजी के उपन्यास :

परसाईजी के उपन्यासों में वर्णित विषयवस्तु प्रेमचंदजी के उपन्यासों की विषयवस्तु से कुछ अलग नहीं है । प्रेमचंदजी के उपन्यास का परिवेश ग्रामीण भारत है, किन्तु परसाईजी ने न केवल ग्रामीण परिवेश बल्कि भारतीय समाज के सम्पूर्ण परिवेश को ग्रहण किया है और परिवेश जनित विसंगतियों एवं दोगलेपन को उभारने का प्रयास किया है । परसाईजी के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय समाज के सुन्दर चित्र उभरते है, जो न केवल मध्यमवर्गीयजनों की कठिनाइयों को व्यक्त करतें है, बल्कि मध्यमवर्गीय संघर्ष की प्रवृत्ति के द्योतक है ।

परसाईजी ने कुल चार उपन्यास लिखे है, जिनमें से एक उपन्यास अपूर्ण है, जिसके केवल चार अध्याय है, अन्य तीन उपन्यासों में दो उपन्यास दीर्धकथा की श्रेणी में आते हैं और एक अपेक्षाकृत विस्तृत है । परसाईजी के उपन्यास इस प्रकार है, –

१. तट की खोज (लघु उपन्यास) – १९५६
२. रानी नागफनी की कहानी – १९६२
३. रिटायर्ड भगवान की कथा (अपूर्ण) – १९७९
४. ज्वाला और जल (उपन्यासिका) – २००३

परसाईजी के उपन्यासों के संदर्भ में डॉ. अर्चनासिंह लिखती है – ‘‘परसाईजी के उपन्यासों में समकालीन परिवेश का ही चित्रण हुआ है । मध्यमवर्गीय संघर्ष को परसाईजी ने समझा है । मध्यमवर्गीय परिवेश के साथ ही साथ उन्होंने राजनीतिक चारित्रिक पतन को भी प्रस्तुत किया है । परसाईजी का लेखन मध्यमवर्गीय परिवेश से जुडा हुआ है । मध्यमवर्गीय मानसिकता का सुन्दर प्रस्तुतीकरण ‘ज्वाला और जल’ तथा ‘तट की खोज’ नामक उपन्यास में हुआ है । समाज तथा राजनीति में व्यक्त विसंगतियों पर परसाईजी की सूक्ष्म पकड़ है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के भारत का सम्पूर्ण दर्शन प्रेमचन्द की रचनाओं में होता है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारत का दर्शन हमें

परसाईजी की रचनाओं में ही होता है । यह इतना सहज एवं आसान नहीं है – बल्कि इसके लिये सूक्ष्म अवलोकन दृष्टि चाहिए ।"[१८] हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंदजी की परंपरा में ही परसाईजी ने समाज पर अपनी कलम चलायी है । समाज की विकृतियों को उन्होंने खोल के रख दिया है । अपने लेखन के प्रारंभ से ही हरिशंकर परसाई कभी भी कोरें आदर्शवाद को महिमागान के लिए लेखन को माध्यम नहीं बनाते, बल्कि समाज की वास्तविक परिस्थिति की परतों को उजागर करते हुए पाठकों के सोचने–समझने के लिए एक बड़ी जमीन छोड देते हैं । उनकी अन्य रचनाओं की तरह उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है । सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू जो आज भी पाठकों को आकर्षित करता है, वह यह है कि रचना के किसी मोड पर कोई भी पात्र जिस रूप में भी सामने आता है, उससे अन्त तक पाठक घृणा नहीं कर सकते । प्रेमचंदजी की विरासत लिये परसाईजी प्रेमचंद को दोहराते नहीं है, बल्कि एक नयी दिशा भी देंते हैं, जो न केवल समकालीन और सार्थक है, बल्कि परसाईजी के लेखकीय दायित्व के बोध को अलग से चिन्हित करते हैं ।

१. तट की खोज :

परसाईजी के इस लघु उपन्यास का प्रकाशन सन १९५६ ई में हुआ था । यह 'परसाई रचनावली' भाग–२ में संकलित है । इस उपन्यास के विषय में कांतिकुमार जैन लिखते हैं – "आसपास के जीवन की सच्ची घटनाओं को आत्मकथा से संपृक्तकर 'कमेंटेटर, नैरेटर और थिंकर' के व्यक्तियों को एक साथ मिलाकर उन्होंने एक उपन्यास लिखा 'तट की खोज' ।"[१९] आजादी के बाद प्रकाशित परसाईजी की यह रचना एक ऐसी रचना है जिसके बारे में आलोचक तय नहीं कर पाते कि यह दीर्घकथा है या लघु उपन्यास । हालाकि परसाईजी ने अपने सम्पूर्ण लेखन में विधाओं की सीमाएँ तोडी है, इस कारण शास्त्रीय दृष्टि से इसका परीक्षण कर निष्कर्ष निकाला जाए तो भी हमारे हाथ कुछ नहीं लगेगा । स्वयं परसाईजी 'तट की

खोज' के विषय में लिखते हैं – ''मैं आज भी नहीं समझ पाता कि 'तट की खोज' बहुत साल पहले मुझसे कैसे लिखा गया । यह एक ऐसी कहानी है, जिसे लघु उपन्यास कहा जाता है । मूल घटना मुझे अपने कवि मित्र ने सुनायी थी । वे काफी भावुक थे । मेरी उम्र भी तब भावुकता की थी । कुछ रुमानी भी था । तार्किक कम था । तभी तगादा लगा था, 'अमृत प्रभात' के दीपावली विशेषांक के लिए किसी लम्बी चीज का । जल्दी का मामला था । मित्र ने जो घटना सुनायी थी, वह मेरे मन में गूंज रही थी । मेरी संवेदना कहानी की उस लड़की के प्रति गीली थी । मैंने दो रात जागकर इसे लिख डाला ।''[२०]

कथानक :

किसी भी उपन्यास के लिए उसका कथानक महत्त्वपूर्ण होता है । कथानक के आधार पर ही उपन्यास का सम्पूर्ण ढाँचा तैयार होता है । उपन्यास की सफलता उसके सफल कथानक पर ही आधारित होती है । जिस प्रकार बिना हड्डियों के शरीर का कोई हलनचलन नहीं होता, उसी प्रकार बिना कथानक के उपन्यास का गतिशील अस्तित्व नहीं होता । अतः किसी भी उपन्यास की महत्ता सिद्ध करने हेतु उसमे एक सफल कथानक का होना अनिवार्य माना जाता है ।

परसाईजी ने इस कृति को लघुउपन्यास माना है, किन्तु रचनावली में इसे दीर्धकथा कहा गया है । फिर भी इसका कलेवर लघुउपन्यास जैसा ही है । अतः इसकी आलोचना लघु उपन्यास मानकर ही की जा रही है । इस उपन्यास में तीन पात्र मुख्य है, जिसके इर्दगिर्द सम्पूर्ण कथानक चलता है । शीला महेन्द्रनाथ और मनोहर इस कृति के मुख्य तीन पात्र है । इन्हीं तीन पात्रों के द्वारा इस उपन्यास का कथानक रचा गया है । इनमें शीला पमुख पात्र है । वह उपन्यास की नायिका है और संपूर्णतः कथा उसीको ध्यान में रखते हुए लिखी गयी है । संक्षेप में इस लघुउपन्यास की कथा इस प्रकार है,

– शीला एक मेघावी एवं स्वाभिमानी लड़की है, जिसका विवाह वांछित दहेज न दे पाने के कारण नहीं हो पा रहा है । पिता सेवा निवृत्त है और अत्यंत निर्धन । उनके घर के रास्तेवाली गली में महाविधालय के व्याख्याता महेन्द्रनाथ रहते हैं । वे शीला के रूप लावण्य पर रीझकर उसे पत्र द्वारा विवाह का प्रस्ताव भेजते है, किन्तु इसके चौबीस घण्टों बाद ही एक अनहोनी घटना घट जाती है । रात में फिल्म देखकर लौटती शीला गुण्डों से घिर जाती है । वह संयोग वश महेन्द्रनाथ के घर में बचावहेतु घुस जाती है । बाहर शोर मचने पर महेन्द्रनाथ पीछे के रास्ते से खिसक जाता है । पड़ोसी उसे व्यभिचारिणी के रूप में प्रचारित कर देते हैं । एकदिन पिता की मृत्यु हो जाती है । पिता के अंतिम संस्कारादि से निबटकर शीला महेन्द्रनाथ के पास जाती है, किन्तु वह उसे नकार देता है । यह झटका न झेल पाने के कारण वह बीमार हो जाती है । धीरे–धीरे विमला के भाई मनोहर से प्रेम हो जाता है । वे दोनों परिणय सूत्र में बँधने सहमत हो जाते हैं, परन्तु मनोहर का परिवार इसके लिए राजी नहीं होता । मनोहर के विद्रोह करने पर भी शीला वह स्थान छोडकर नये तट की खोज में चली जाती है । यहाँ पर उपन्यास पूर्ण हो जाता है ।

डॉ. मदालशा व्यास 'तट की खोज' के संदर्भ में लिखती है, – ''पुराने संस्कारों और नवीन परिस्थितियों का द्वंद्व आज की नारी के लिए भीषण समस्या के रूप में खडा है । वह इस द्वंद्व में अपने आपको असामन्जस्य की स्थिति में पाती है । यही असामन्जस्य की स्थिति उसकी नियति बन गयी है । किन्तु 'तट की खोज' की नायिका शीला परम्पराओं और आदर्शो के बंधनों को तोडकर पुरुष से विद्रोह करके अपना नया जीवन प्रारंभ करती है । उसका संघर्ष ही यथार्थ है ।''[२१] नारी की विवशता और प्रेम की विफलता 'तट की खोज' उपन्यास का आधारभूत प्रश्न है । महेन्द्रनाथ स्वयं को आदर्शवादी तथा भावप्रवण समझता है । शीला उसकी आदर्शवादिता को कायरता मानती है । उपन्यास की मूल–कथा शीला की कथा है, जो एक दृढ निश्चयी, संघर्षशील मध्यवर्गीय युवती है । पूरी कथा का केन्द्र–बिन्दु शीला ही है । अन्य कथाएँ

जैसे शीला महेन्द्रनाथ की कथा, शीला–विमला की कथा, शीला मनोहरलाल की कथा अनुस्यूत कथाएँ है, फिर भी शीला की कथा को आगे बढाने में सहायक बनती है । पूरा उपन्यास दो भागों में विभक्त है । 'शीला' और 'मनोहर' । दोनों उत्तम पुरुष में अपनी–अपनी कथा कहते है । प्रथम भाग में शीला अपनी कहानी कहती है । दूसरे भाग में मनोहर की कथा है । दोनों कथा को जोड़ने का कार्य शीला करती है । शीला अपनी सहेली विमला के भाई मनोहर के सम्पर्क में आती है, तो पाती है कि मनोहर का उसकी तरफ झुकाव प्यार नहीं, मेहरबानी है । वह शीला पर दया करके उसकी सहायता करता है । शीला मनोहर को लिखती है, – "आपके मन में मेरे लिए अपार करुणा है, प्रेम शायद बहुत कम ।"[२२] शीला इसी करुणा और मेहरबानी को अपने अहं की रक्षा के लिए स्वीकार नहीं करती । शीला के प्रति मनोहर केवल झूठी संवेदना ही जताता है । उपन्यास की नायिका महेन्द्रनाथ से धोखा खा चुकी है । वह पुनः किसी पुरुष–वर्ग की दिखावटी संवेदना नहीं चाहती, इसलिए वह मनोहर की उपेक्षा करके चली जाती है, क्योंकि वह अपना जीवन स्वतंत्र रूप से जीना चाहती थी ।

परसाईजी ने मध्यवर्ग की मिथ्या–नैतिकता से पीड़ित नारी के स्वाभिमान एवं प्रखर व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर यह उपन्यास लिखा है । शीला का जीवन मध्यवर्गीय नैतिकता के बोझ से आक्रांत था, किन्तु उपन्यास की इस नायिका ने पूरे समाज को चुनौती देकर अपने व्यक्तित्व को कहीं भी झूकने नहीं दिया । इस उपन्यास में एक निम्न–मध्यमवर्गीय दर्पीली प्रबुध्द लड़की के फौलादी चरित्र और निर्भ्रान्त नैतिक सामाजिक दृष्टि के माध्यम से मध्यमवर्गीय समाज में नर–नारी के आपसी रिश्तों की सच्चाई को विश्लेषित करने का संकल्प प्रकट होता है । इस सच्चाई को उजागर करने के लिए परसाईजी ने दो मध्यमवर्गीय नवयुवकों की सृष्टि की है । प्रथम युवक भीतर से रुढियों का गुलाम है और 'लोग क्या कहेंगे' से निरन्तर अपनी रीढ़ की हड्डी को घुलता हुआ अनुभव करता है और केवल बाहर से विद्रोह और क्रांति की बड़ी–बड़ी

बाते करता है । दूसरा युवक हमदर्दी को प्यार समझनेवाला सदाशय उदार युवक है । नारी के प्रति ये दोनों 'इंटर एक्शन' समस्या को केवल टालते है और उसे धुंधला बनाते है । ये दोनों 'पैसिव रोमांस' की गिरफ्त में पड़े हुए नारी को उसकी अस्मिता की खोज में बाधा पहुँचाते है । शीला, महेन्द्रनाथ और मनोहरलाल हमारे समाज की जीती जागती सच्चाइयाँ है और परसाईजी ने बड़ी यथार्थवादी संवेदना से अंकित किया है । शीला प्रेमचंदजी की सुमन या शरदचन्द्र की कमल या जैनेन्द्र की मृणाल से हटकर गढ़ा हुआ चरित्र है । यह कहानी सम्भवतः पहली बार यह स्थापित करती है कि नारी की मुक्ति और विकास के लिए पुरुष का अवलंबन अनिवार्य नहीं है । इसमें मध्यमवर्गीय मिथ्याभिमान, खोखली नैतिकता और परपीड़न की भावना से त्रस्त नारी के स्वाभिमान एवं साहस की प्रखर अभिव्यक्ति है ।

परसाईजी भले ही कहे कि उन्होंने इसे रूमानी भावुकता एवं गीली संवेदना में लिखा है, क्योंकि तब राजनीति की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों की मिथ्याचारिता उनका खास निशाना थी, परन्तु वे अन्जाने में ही कालजयी न सही, शताब्दीजयी रचना तो दे ही गये है । यह उपन्यास आज के शिक्षित मध्यवर्गीय समाज के टूटते बनते आदर्शो का प्रासंगिक रूप से ही सही यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है । जीवन में प्रेम हैं, किन्तु प्रेम ही जीवन नहीं है । आज के मध्यवर्गीय समाज में उसकी स्थिति जीवन संघर्ष की कटुता और यथार्थ की भयंकरता के सामने शून्य में बदल गयी है । इसी कारण से शीला प्रेम और करुणा को छोडकर यथार्थ का सामना करने को तैयार होती है । इसी बात को डॉ. मनोहर देवलिया इस प्रकार कहते है, – ''मनोहर शीला को केवल करुणा दे पाते है, प्रेम नहीं । इसी कारण से शीला मनोहर का साथ भी छोड देती है, क्योंकि वह जानती है कि विवाह के बाद यह करुणा भी समाप्त हो जायेगी, वैसे भी शीला को कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं, फिर वह सचेत होकर जीना चाहती है । जिन्दा रहने के लिए साहस की जरुरत होती है, वह जीने के लिए तन और मन, दोनों को आवश्यक मानकर चलती है । जीवन

को जो डर के जीते हैं, समाज उन्हें जीने नहीं देता उसका यह आवेश – विद्रोह महज एक मुद्रा नहीं, बल्कि जिजीविषा की विकट लड़ाई, वह अकेली लड़ने को तैयार है ।''[२३] इस उपन्यास की कथा में हमारे समाज की जीवित सच्चाईयाँ है । समाज की वास्तविकताओं को बड़ी कुशलता और संवेदनशीलता से अंकित किया गया है । आजादी के बाद जीवन के बारे में हमारे नजरियों में परिवर्तन आया है । जिन्दगी बदल रही है, उसके साथ उसके मानव–मूल्य भी । किन्तु आज भी हमारा समाज नारी में मध्यकालीन सतीत्व को ही देखना चाहता है । सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सिर्फ पुरुष–सम्बन्धी चिन्तन में बदलाव को ही मान लिया गया है ।

कथा में नारी–शिक्षा की बात करते हुए परसाईजी विभिन्न उपमाओं से जो चित्र निर्मित करते हैं, उससे हमारे समाज की मानसिक विपन्नता, दानवता और जडीभूत सौन्दर्यानुभूति प्रकट होती है । हमारे विद्वान भारत के अतीती वैभव, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक सम्पन्नता का कितना ही गुणगान करें, परन्तु मध्यमवर्गीय परिवारों में लड़की की स्थिति रद्दी के कागज से बेहतर नहीं है । स्त्री शिक्षा के झूठे आँकडे बताकर विदेशों में साक्षरता का ढोल पीटनेवाले शिक्षाविदों, नारी–मुक्ति आंदोलनो के पदाधिकारियों, महिला संगठनों और नेताओं के इस तथ्य के लिए आँखे खोलकर स्वीकार करना चाहिए कि लड़कियों का पढ़ना केवल सामाजिक चेतना के कारण ही नहीं, बहुत कुछ दहेज के दबाव में हो रहा है । इस कथा के माध्यम से परसाईजीने शिक्षा की वास्तविक स्थिति बता दी है कि शिक्षा का मूल्य मानसिक स्तर उठाने के लिए नहीं रह गया है, बल्कि जीवन के लिए एक 'कमीशन' की तरह हो गया है, – ''शिक्षा उस पोलिश की तरह प्रयुक्त होती है, जो चीज को चमकदार बनाता है तथा ग्राहक को आकर्षित करता है ।''[२४] शीला का विवाह सिर्फ इसलिए नहीं हो पाता क्यों कि उसके पिता के पास 'दहेज' के नाम देने को कुछ नहीं था । वह आर्थिक दृष्टि से कमजोर थे, इसलिए जहाँ भी शादी की बात चलती, वहाँ 'दहेज' सामने आ जाता था । और बात टूट जाती थी । हमारे समाज में नारी से

नहीं, उसके दहेज से विवाह होता है और इस सच्चाई से इंकार भी नहीं किया जा सकता । डॉ. मदालशा व्यास लिखती है, – ''जहाँ इस उपन्यास में आज की नारी की वेदना को रूपायित किया है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक जीवन संदर्भो की कृत्रिमता और खोखलेपन को बड़ी सूक्ष्मता से उतारा गया है । यथार्थ से अपना संतुलन स्थापित न कर पाने के कारण कितनी मानसिक यंत्रणाओ से व्यक्तियों को गुजरना पड़ता है, इसे परसाई ने बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है ।''[२५]

इस तरह इस उपन्यास में नारीजीवन की एक ऐसी कथा है, जिसमें नारी के स्वाभिमान एवं संघर्ष का यथार्थ चित्रण है । परसाईजीने भारतीय समाज का और उसमे नारी की स्थिति का वास्तविक चित्र अंकित किया है । कथानक की दृष्टि से देखा जाय तो प्रस्तुत उपन्यास 'तट की खोज' अपनी बहुत कुछ विशेषताओं के साथ सफल है ।

चरित्र :

चरित्रांकन एक कला है, जिसके जरिए साहित्यकार कुछ प्रतिभा पैदा कर सकता है, जिसकी एक अमिट छाप अपने पाठकों के दिमाग पर वह छोड जाता है । कथानक के साँचे में ढलनेवाले और कथा के प्रवाह को आगे बढाने में सहायक चरित्र ही सार्थक सिद्ध होते है । प्रस्तुत उपन्यास 'तट की खोज' के मुख्य रूप से तीन पात्र है – शीला, महेन्द्रनाथ और मनोहर । इसके अतिरिक्त विमला एवं मथुराबाबू सहायक पात्र है । इस उपन्यास के विषय में डॉ. मालमसिंह लिखते है, – ''मेरी दृष्टि से इसे पात्र–प्रधान कथा कहना ज्यादा उपयुक्त होगा, हालाकि इसमें घटनाएँ भी है, परन्तु परसाई का उन पर अधिक जोर नहीं है । विभिन्न स्थितियों में पात्र अपने वर्गीय चरित्र के साथ उभरते हैं ।''[२६]

➩ शीला :

शीला इस उपन्यास की प्रमुख पात्र एवं नायिका है । शीला इस कृति के केन्द्र में है । उसके तीन रूप देखे जा सकते है, – करुणामयी, निराश और साहसी । उसके चरित्र को तीन भागों में बाँटा जा सकता है । पहली अवस्था किशोरावस्था की है, जब जीवन में हीनता ओर निराशा को कोई स्थान नहीं होता । दूसरी अवस्था शीला के मोहभंग की अवस्था है । महेन्द्रनाथ के कायरतापूर्ण व्यवहार, समाज के ताने, पिता की बीमारी और फिर उनकी मृत्यु से शीला एकदम टूट जाती है और उसके जीवन में निराशा आ जाती है । तीसरी अवस्था शीला के प्रौढ और परिपक्व विचारों की अवस्था हैं । यहीं उसके चरित्र की उत्कृष्टता के दर्शन होतेहै । जीवन के कटु यथार्थ का सामना करते हुए मझधार में डूबने के लिए नहीं, बल्कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने तट की खोज के लिए दृढता से निकल पड़ती है । डॉ. मालमसिंह लिखते हैं – ''शीला की यह महानता है कि दुनिया भर की बदनामी झेलकर भी वह निराश नहीं होती, बल्कि इसके विपरीत रचनात्मक निष्कर्ष निकालती है ।''[२७]

'तट की खोज' की नायिका हिन्दी कथा साहित्य का शायद पहला ऐसा नारी चरित्र है, जो भावुकता में नहीं, मजबूरी में नहीं, संयोगवश नहीं, जिद में नहीं, परिस्थितियों के दबाव में नहीं बल्कि अपनी समग्र विचार चेतना के साथ मुक्ति की चुनौती को स्वीकार करता है और मुक्ति की खोज में यह नारी–पात्र सुरक्षा संरक्षा के सारे सूत्रो को स्वयं छिन्न–भिन्न कर केवल अपने आत्मबल के सहारे एक कठिन एवं क्रूर समय में अकेले निकल जाता है । महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि यह औरत सफल रही या असफल, महत्त्वपूर्ण उसका निर्णय है । शीला समाज से विद्रोह करती है । वह किसी की दया और सहानुभूति भी स्वीकार नहीं करती । वह दया के पात्र मनोहर का भी साथ त्याग देती है और स्वयं एक नये जीवन की खोज में निकल जाती है । दरअसल यह उसका जीवन से पलायन नहीं है, बल्कि समाज से विद्रोह करने

का विकट साहस और विश्वास है । डॉ. मदालशा व्यास लिखती है – “ ‘तट की खोज’ की नायिका समाज से विद्रोह करती है, क्योंकि वह प्रेम में असफल हो जाती है और फिर किन्हीं अज्ञात कारणों से उसमें ऊब पैदा हो जाती है । वह अकेली होती है, यही अकेलापन उसमें एक विचित्र–सी निराशा, शारीरिक कुंठा और क्रोध पैदा कर देता है । शीला महेन्द्रनाथ से विद्रोह करती है और मनोहर के विवाह प्रस्ताव को मंजूर भी नहीं करती हैं । कारण यह है कि विवाह के बाद मनोहर का परिवार के प्रति, उसके प्रति जो संघर्ष चल रहा है, वह अस्थायी है । इसी कारण शीला मनोहर का सहारा भी छोड देती है और वह एक नये जीवन की तलाश में निकलती है ।”[२८] वह स्वयं कहती है – “मैं जीवन को फिर से आरम्भ करने जा रही हूँ, यहाँ की परिस्थितियों में जीवन फिर आरम्भ नहीं कर सकती । यहाँ की जमीन विषाक्त हो गयी है, मेरे लिए । मैं दूसरी जमीन में जाकर जीवन का रोपा लगाऊँगी । मैं पलायन नहीं कर रही, नये जीवन की खोज में जा रही हूँ ।”[२९]

शीला में आत्म–गौरव की भावना अधिक है, वह किसी की दया एवं सहृदयता की पात्र नहीं बनना चाहती । वह निरन्तर अपनी परिस्थितियों की विषमताओं, दुरुहताओं, तथा असंगतियों से संघर्ष करती है । उसमें अपार जिजीविषा, साहस और आत्मविश्वास है । इस प्रकार इस उपन्यास में शीला का चरित्र और उसका अस्तित्व किसी कठोर चट्टान या दैदीप्यमान सूर्य की तरह चित्रांकित किया गया है । शीला ने न तो स्थितियों से पलायन किया है और न ही उनकी हारकर स्वीकृति की है, बल्कि उसने तो हीनता और निराशा को अपनी प्रतिभा एवं जीवटता से रौंद दिया है और एक नवीन उत्साह एवं हिंमत से जीवन का नया तट खोजा है ।

➫ महेन्द्रनाथ :

उपन्यास का दूसरा पात्र महेन्द्रनाथ आज के युवा वर्ग का प्रतीक है, जो कथनी से कुछ और करनी से कुछ और होते हैं । महेन्द्रनाथ में यथार्थ से

साक्षात्कार कर सकने की क्षमता नहीं है । शीला गुण्डों से बचने के लिए रात के समय महेन्द्रनाथ के घर में शरण लेती है, तब महेन्द्रनाथ उसे बचाने की अपेक्षा समाज के डर से वहाँ से पलायन हो जाता है । उसके चरित्र और व्यक्तित्व में कोई साम्य नहीं है । शीला जब समाज में बदनाम हो जाती है, तब भी उसे अपनाने की बात न करते हुए उसे अपमानित करके तिरस्कृत करता है, जबकि वह शीला को मन ही मन चाहता था । वह बहादुरी एवं क्रांति के ओजस्वी लेख लिखता है, पर वास्तव में वह एकदम डरपोक एवं ढोंगी व्यक्तित्व का मनुष्य है । वह उन आधुनिक बुद्धिजीवियों के वर्ग का है, जो जीवन में दोहरे मापदण्ड लेकर चलते हैं ।

महेन्द्रनाथ में सच्चाई का सामना करने की हिंमत नहीं है । वह खतरों से डरता है और उसकी दृष्टि में भावनाओं का कोई मूल्य नहीं है । महेन्द्रनाथ के खोखले व्यक्तित्व को शीला के शब्दों में परसाईजी ने सचोट रूप से व्यक्त किया है – ‘‘झूठ के डर से आप सत्य को अंगीकार नहीं कर सकते । प्रतिष्ठा तो एक वाहन है, जिस पर बैठकर आगे बढना चाहिए । पर आप उसे माथे पर लादे है । उसके नीचे दबे जा रहे हैं । समाज व्यवस्था के बदलने का आवाह्न करनेवाले आपके वे क्रान्तिदर्शी लेख उनका क्या होगा ? वे आपने दूसरो के लिए लिखे होंगे । आप स्वयं उसी जगह पड़े रहेंगे । कीचड के डबरे में पड़े आप गंगा–स्नान का मंत्र जपते हैं । कितने पाखण्डी है आप । कितने कायर । कितने भीरु ।’’[३०] इस तरह उपन्यास के प्रारंभ में आकर्षक व्यक्तित्व का धनी होते हुए भी महेन्द्रनाथ का चरित्र मेरुदण्ड विहीन एवं कमजोर है ।

➫ मनोहर :

उपन्यास का तीसरा महत्त्वपूर्ण पात्र मनोहर का है, जो सदाशय उदार युवक है और शीला की परिस्थितियों के कारण उससे सहानुभूति रखता है । शीला को बेसहारा जानकर मनोहर उसका सहारा बनने के लिए अपने परिवार

से भी विरोध करता है । मनोहर शीला की सहेली विमला का भाई है और शीला से विवाह करके उसे सुखमय जीवन देना चाहता है । अपितु शीला उसकी सहानुभूति में करुणा और दया का भाव देखती है और उसकी मेहरबानी एवं विवाह के बाद की उसकी परेशानियों पर विचार करके उसे छोडकर चली जाती है । भले ही मनोहर शीला को दया के भाव से अपना रहा हो, परन्तु समाज द्वारा कलंकिता का हाथ थामना भी बहुत बड़े साहस और त्याग का काम है । जहाँ उपन्यास में शीला का स्वाभिमान स्तुत्य है, वहीं पर मनोहर का समर्पण भी कम सराहनीय नहीं है । ऐसे युवकों के द्वारा ही समाजोत्थान हो सकता है । मनोहर के व्यक्तित्व के संदर्भ में शीला के ये वाक्य बहुत ही सार्थक प्रतीक होते है, – ‘‘आपकी विराट आत्मा में इतनी उदारता और निष्ठा है कि आप मेरे लिए जीवन उत्सर्ग कर देना चाहते है ।’’[३१] इस प्रकार इस उपन्यास में मनोहर का चरित्र दृढनिश्चयी, विद्रोही एवं नारी के प्रति सम्मान की दृष्टि रखनेवाले हिंमतवान युवक के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है ।

➢ *गौणपात्र :*

प्रस्तुत उपन्यास ‘तट की खोज’ के गौण–पात्र में विमला और शीला के पिता मथुराबाबू आते है । विमला शीला की सहेली है और शीला के प्रति आत्मियता रखती है । शीला की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में वही उसका साथ देती है और अपने भाई मनोहर के साथ शीला को निराशा से बाहर निकालने का प्रयास करती है । शीला जब टूट जाती है, तब उसका कोई सहारा नहीं बनता, ऐसी स्थिति में एक विमला ही ऐसा व्यक्तित्व था, जिसके सहारे शीला कुछ कर सकती है । अपने जीवन को फिर भी दृढता से जीने का संकल्प करती है । इस तरह विमला का चरित्र एक सहानुभूति पूर्ण एवं दयालु नारी के रूप में इस कृति में उभरता है ।

शीला के पिता मथुराबाबू एक रिटायर्ड सरकारी नौकर थे । निहायत ईमानदार थे । इसलिए गरीबी में दिन काट रहे थे । हृदय पर पत्थर रखकर पत्नी और जबान बेटे की मृत्यु का दुःख सहा था । मथुराबाबू दहेज प्रथा से त्रस्त एक मध्यवर्गीय पिता है, जो अपनी जवान बेटी का विवाह किसी अच्छी जगह कर देने की असफल कोशिश में लगे हुए थे, लेकिन हर बार निराशा, अपमान और बेबसी का सामना करना पड़ता था । अपनी इसी हीन और दयनीय अवस्था के कारण वे विकृत मानसिकता के शिकार हो रहे थे । वे अत्यधिक आत्मग्लानि के शिकार और एकान्तप्रिय हो गये थे, मानों बेटी की शादी न करके कोई घोर पाप किया हो । आखिर समाज में बेटी की बदनामी न सह पाने के कारण उनका बिमार शरीर मृत्यु की शरण में जा पहुँचता है । उनके चरित्र के द्वारा परसाईजी ने हमारे भारतीय समाज के प्रत्येक उन लाचार पिता का चित्र प्रस्तुत किया है, जो दहेज के कारण अपनी पुत्री के विवाह की चिंता में मशीन की तरह जीवन बिताते हैं । शीला के शब्दों में मथुराबाबू की दयनीय जिन्दगी की झलक मिलती है, – ‘‘मेरा विवाह नहीं हो रहा था और पिता को चिन्ता के कारण नींद नहीं आती थी । माँ की मृत्यु पहिले हो गयी थी, फिर जवान भाई हमें एक दिन छोड गया । पिताने हृदय पर पत्थर रखकर दोनों आघात सहे और मेरे प्रति माँ, भाई, पिता–तीनों के कर्तव्य निभाये । इतना जहर उन्होंने किस तरह पचाया होगा । जीवन में कोई रुचि नहीं रह गयी थी, कोई आकांक्षा नहीं थी । जीवन के अन्तिम समय में आदमी जिस सुख और शान्ति की आशा करता है, वह बड़े भाई की मृत्यु के साथ छिन गयी थी । उनका जीवन अब एक मशीन की तरह हो गया था । मशीन को भी एक सुभीता होता हैं – उसमें चेतना नहीं होती – उसे सुख–दुःख की अनुभूति नहीं होती, लेकिन चेतन की यही मजबूरी है कि जीवन के हर आघात से कराहना होता है ।’’[३२] डॉ. मदालशा व्यास लिखती है, – ‘‘आज कितने ही मथुराबाबू हमारे देश में दहेज न जुटा पाने के कारण एक अपराधी भाव लिये जी रहे हैं और जीते–जी नरक की यातना भुगत रहे हैं ।

दहेज हमारे यहाँ सदियों से चली आ रही कुप्रथा है । समय के साथ–साथ दहेज के रूप और माप–दंड बदलते गये, किन्तु यह खत्म नहीं हुआ ।"[३३] इस प्रकार मथुराबाबू का चरित्र इस उपन्यास में एक दीन, लाचार एवं मजबुर पिता के रूप में उभरता है ।

इस तरह 'तट की खोज' उपन्यास के मुख्य एवं गौण – सभी पात्र हमारे ही समाज के जीवित एवं सच्चे पात्र है । ये सभी पात्र इस समाज की वास्तविकताओं को उजागर करते है । परसाईजी ने इन पात्रों के द्वारा अपनी कुशलता एवं संवेदनशीलता को माध्यम बनाकर हमारे समाज के खोखलेपन को जगत के समक्ष खोल के रख दिया है । इस उपन्यास को लिखे कई वर्ष बित गये है, लेकिन उसके पात्र आज भी हमारे समाज में है । वर्तमान युग में भी कहीं न कहीं शीला, मथुराबाबू, महेन्द्रनाथ, मनोहर जैसे व्यक्ति अवश्य होंगे, जो समाज के बदलते मूल्यों को देखते और भुगतते होंगे । प्रस्तुत उपन्यास के पात्र कालजयी पात्र है । सारांशः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि 'तट की खोज' उपन्यास चरित्र की दृष्टि सफलतम कृति है ।

शिल्प :

रचनाकार की रचना तब सफल कही जाती है, जब प्रस्तुत रचना के दोनों पहलू समान हो । अर्थात् भाव और भाषा जिसे कथ्य और शिल्प कहा जाता है, उसके सामन्जस्य के अभाव में कृति को सफलता नहीं मिलती । साहित्यकार अपने हृदयगत भावों को किस ढंग से प्रस्तुत करता है, यह बात महत्त्व रखती है । उत्कृष्ट कथ्य को प्रकट करने के लिए सौन्दर्यपूर्ण शिल्प भी आवश्यक है । जहाँ पर श्रेष्ठ भावों को सम्पन्न भाषा के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, वहाँ रचना की महत्ता स्वयं ही बढ जाती है । इस दृष्टि से शिल्प का अपने आप में एक अनूठा महत्त्व है । शिल्प के अंतर्गत भाषा, शीर्षक, शब्द–चयन, शैली और अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमो की चर्चा की जाती है । आलोच्य उपन्यास 'तट की खोज' का कथ्य तो यथार्थ है ही, साथ में

उसके शिल्प में भी कुछ वैविध्य एवं सुंदरता दृष्टिगोचर होती है । इसी कृति के शिल्प को विस्तृत रूप से देखा जाय, –

➢ *शीर्षक :*

'तट की खोज' परसाईजी का एक लघु उपन्यास है, जिसे रचनावली में दीर्घ–कथा कहा गया है । इसका कथानक संक्षिप्त है और दो भागों में विभक्त है । इन दोनों अध्यायों के नाम क्रमशः 'शीला' और 'मनोहर' है । ये शीर्षक आत्मकथ्य कहते हुए दो प्रमुख पात्र के नामानुसार दिये गये है । इन दोनों खण्डों में ये दोनों पात्र अपने–अपने जीवन की कथा कहते हैं और इसकथा में परसाईजी ने भारतीय समाज में फैली नारी–जीवन की समस्याओं को वाणी दी है । इस कृति का शीर्षक 'तट की खोज' भी एक सार्थक शीर्षक है, जिसमें रचना की नायिका अपने जीवन को किसी पर भी आश्रित न रखते हुए स्वयं अपने नये जीवन का प्रारंभ करने के लिए तट की खोज करने निकल जाती है । परसाईजी ने कृति के अंत में नायिका के शब्दों में शीर्षक की सार्थकता को प्रकट किया है – "एक लहर मँझदार में ले जाकर डुबा देती है, तो दूसरी उछालकर किनारे लगा देती है । मैं दूसरी लहर में जा रही हूँ । मैं तट की खोज में हूँ ।"[३४] अर्थात्प्रस्तुत उपन्यास को दिया गया शीर्षक सर्वथा सार्थक है ।

➢ *भाषाशैली :*

भाषा–शैली शिल्प का महत्त्वपूर्ण अंग है । वैसे तो भाषा को ही शिल्प का पर्याय माना जाता है । भाषा की विशेषताएँ ही शिल्प के सौन्दर्य को बढाकर रचना को प्रभावशाली बनाती है । भाषा के अंतर्गत बहुत सी बातें अर्थात् शबद– चयन, कहावतें, मुहावरे, सुक्तियाँ, शैली, संवाद, अलंकार इत्यादि सभी की चर्चा होती है । किसी भी रचना के लिए श्रेष्ठ भाषा–शैली ही उसके सफल शिल्प की पहचान है । परसाईजी एक महान लेखक है । उनकी रचनाओं की सफलता का एक कारण उनकी भाषा को माना जाता है ।

परसाईजी की रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं चोटदार चीज उनकी भाषा है, यह बात उनके उपन्यासों को भी लागू होती है । अर्थात् परसाईजी के उपन्यास भी उनकी समृद्ध भाषा से परिपूर्ण है ।

परसाईजी की भाषा सहज एवं प्रवाहमयी है । उनका लेखन सर्वहारा वर्ग का समर्थन करता है । उनके उपन्यास समाज के सामान्य मानवी से जुडे हुए होने के कारण उनकी भाषा में एक सहजपन एवं प्रवाहमयता अनायास ही आ गये है । परसाईजी की प्रवाहमयी भाषा के कारण ही उनके साहित्य को पढ़नेवाला हर पाठक उसे अपनी भाषा समझता है और उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर पाता है । परसाईजीने अपनी भाषा को प्रवाहमयी बनाने हेतु उसमे बोली और सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है । फलतः उनकी भाषा में अपनत्व की झलक पायी जाती है । उनकी भाषा के इस पहलू के विषय में डॉ. सीता किशोर ने सत्य ही लिखा है, – ''परसाई ने ध्वनितत्त्व, भावतत्त्व और शब्दभंडार के स्तर पर भाषा का जो स्वरूप स्थिर किया है, वह बोली के आंगन का है । इसीसे उनका लेखन गाँव का मामूली पढ़ा किसान और मजूर अपना मानता है और नगर का हर वह वर्ग जो सर्वहारा है, अपना माने बैठा है ।''[३५] 'तट की खोज' में कथानक के प्रवाह को अस्खलित गति से बहाने के लिए परसाईजीने भाषा का सुंदर अनूठा रूप प्रयुक्त किया है । इस उपन्यास की भाषा सरल एवं पात्रानुकूल है । पूरी रचना में हिन्दी के तत्सम रूप की सुंदर छटा दिखाई देती है । चरित्र के अनकूल सहज भाषा के कारण परसाईजी ने इस रचना में अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है । इस कृति के सभी मुख्य पात्र शिक्षित एवं बुद्धिशाली वर्ग के है । अतः इन पात्रों की भाषा में अंग्रेजी आदि भाषा के शब्द होना स्वाभाविक है । अतः भाषा में शब्द वैविध्य देखने को मिलता है । प्रस्तुत कृति में निम्नांकित शब्द–चयन देखा जा सकता है ।

➢ *शब्द–चयन :*

➭ अंग्रेजी :

होमलायब्रेरी, कॉलजे, वेटिंगरुम, फिंडरगार्डन, फर्नीचर, क्वालिटी, मजिस्ट्रेट, डाक्टर, रिटायर्ड आदि ।

➭ संस्कृत :

हत्‌तेज, निश्चेष्ठ, स्वयं, स्वस्थ, श्रृंगार, विक्षुब्ध, शीघ्र, व्यस्त, स्वप्न, निष्ठा, उत्सर्ग, उज्जवल, प्रतिष्ठा ।

➭ अरबी–फारसी :

लहर, मजबूर, किताब, आलमारी, मरघट, जिल्लत, इम्तहान, शादी, मुसाफिर, मुसाफिरखाना, मुसीबत, गवाही, ईमानदारी, तराजू आदि ।[३६]

प्रस्तुत उपन्यास में इन विभिन्न भाषाओं के शब्द–प्रयोग से कोई भी भाषाकीय आपत्ति नहीं होती और न ही इस कृति की भाषा को विशेष क्षति पहुँचती है । बल्कि इस कारण तो इसमें एक स्वाभाविकता के दर्शन होते है । परसाईजीने इसमे अपनी अनुभूति की तीव्रता को आम आदमी की जबान में प्रस्तुत किया है । रचना की भाषा में रोचकता एवं प्रवाह बनाये रखने के लिए परसाईजी ने इस कृति में बहुत से सुंदर और सचोट वाक्यों का भी सृजन किया है, जो अर्थ गांभीर्य की दृष्टि से भी श्रेष्ठ है और जिनमें भाषा की उत्कृष्टता दिखाई देती है । 'तट की खोज' में ऐसे सचोट वाक्य बहुत से हैं ।

➢ *सचोट वाक्य :*

- 'भीड का हृदय होता है, मस्तिष्क नहीं ।'
- 'शिक्षा उस पोलिश की तरह प्रयुक्त होती है, जो चीज को चमकदार बनाता है तथा ग्राहक को आकर्षित करता है ।'
- 'बिना माँ की जवान लड़की ऐसी फसल होती है, जिसका रखवाला नहीं है और जिसे वासना के उजाडू पशु चरने को स्वतंत्र है ।'

- ‘प्रतिष्ठा के बोझ के नीचे सत्य किस कदर चीखता है ।’
- ‘पाप के हाथ में हंमेशा पुण्य की पताका लहराती है ।’
- ‘पिंजडे में बन्द परिन्दे, आजाद पक्षी को घायल होते देखकर बड़े प्रसन्न होते है, क्योंकि उनकी घुटन से उत्पन्न हीनता की भावना को शान्ति मिलती है ।’
- ‘कमजोरी नैतिकतावाद की माँ होती है और फिर क्षुद्रता तो हंमेशा से ही महत्ता का उपदेश देती आयी है ।’
- ‘मोम तो आघात से दबकर रह जाता है, पर पत्थर पर आघात पड़ने से दरार पड़ जाती है ।’
- ‘ठुकराई हुई धूल आँधी की राह देखती रहती है, जब वह सर पर चढ सके ।’
- ‘दूसरे के मामले में हर चोर मजिस्ट्रेट हो जाता है ।’
- ‘नारी मन से खूब प्यार करके भी, उपर से निरपेक्ष भाव बनाये रख सकती है, यह छल नहीं है, उसकी प्रकृत्ति है ।’[३७]

➢ *संवाद :*

संवाद शिल्प का महत्त्वपूर्ण अंग हैं । संवाद से रचना में सजीवता आती है । संवाद के द्वारा पात्रों का परिचय, उनकी मनःस्थिति, घटनाओं की विशेष जानकारी प्राप्त होती है । ‘तट की खोज’ में वैसे तो परसाईजीने आत्मकथ्य के द्वारा पूरा कथानक वर्णित किया है, फिरभी इस कृति में कई स्थान पर मार्मिक एवं सटीक संवाद की सृजना हुई है । इस उपन्यास में वर्णित सभी संवाद बड़े ही हृदय स्पर्शी बन पाये है । शीला और मनोहर के बीच का यह संवाद शीला की निराशा एवं उसके हृदय में व्याप्त करुणा का स्पष्ट आभास दे जाता है, –

- मैंने (मनोहरने) कहा, ‘‘तुम अपने को भुला रही हो और मुझे भी । तुम उस सीमा तक पहुँच गयी हो, जब आदमी भले और बुरे का भेद करना बन्द कर देता है । बनने और बिगडने में कोई अन्तर नहीं

मानता । जीवन से उसका विश्वास उठ जाता है । यह चरम निराशा की स्थिति है । जीवन से बढकर कुछ नहीं है । वह इस तरह नष्ट नहीं किया जाता ।''

- वह उसी प्रकार देखते हुए बोली, – ''लेकिन जब जीना मरने से बदतर हो जाये, तब ? नहीं, अब मुझे जीने की इच्छा नहीं है ।''
- मैंने कहा, – ''तुम्हारे पास विधा–बुद्धि है अटूट शक्ति है, जो मैंने देखी है । तुम बड़े विश्वास से जी सकती हो ।''
- वह उसी तरह निराश स्वर में बोली, – ''नहीं, अब नहीं जी सकती । अब मैं बिलकुल हार गयी हूँ । कोई तो मेरा नहीं है । इस तरह बे–सहारे जिन्दगी कैसे चल सकती है ?''[३८]

'तट की खोज' के संवाद कई स्थान पर लम्बे अवश्य है, लेकिन इन संवादो में जो मार्मिकता एवं सजीवता है, वह प्रशंसनीय है । परसाईजी ने इस उपन्यास में संवादो के द्वारा समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जगत का सच्चा स्वरूप दिखाया है । प्रस्तुत उपन्यास की संवाद–कला उसकी भाषा–शैली के रूप–श्रृंगार को बढ़ावा देती है ।

➢ *शैली :*

आलोच्य उपन्यास की भाषा प्रवाहयुक्त एवं सरल होते हुए भी अत्यन्त असाधारणतः का बोध कराती है । इसीलिए इस रचना में परसाईजी की भाषा का चुम्बकीय आकर्षण न केवल पाठकों के मन अपितु मस्तिष्क को भी अपनी ओर खींच लेता है । परसाईजी का कथा कहने का ढंग अत्यन्त सशक्त एवं सुनियोजित है । अतः इस कृति में उनकी भाषा के साथ शैली भी निखर उठी है । इस रचना में परसाईजी ने सरल प्रवाहमयी शैली का प्रयोग किया है, जिसमें आत्मकथात्मक शैली भी प्रधान है । कहीं–कहीं पत्रात्मकशैली भी अपनायी है । विशेषकर परसाईजी ने इस कृति में 'फलेश–बैक' अर्थात् पूर्व दृश्य पद्धति का भी प्रयोग किया है, जो वर्तमान उपन्यासों में अत्यन्त लोकप्रिय पद्धति बन

गयी है । उपन्यास की संपूर्ण कथा दो पात्र द्वारा बतायी गयी है, जिसमें दोनों पात्र अपने विगत–जीवन की घटनाओं का वर्णन करते हैं अर्थात् अपना आत्मकथ्य पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं । उपन्यास में सुंदर एवं सचोट वाक्यों के द्वारा परसाईजी ने अर्थगांभीर्य प्रकट किया है । 'तट की खोज' में परसाईजी की भाषा एवं शैली दोनों के उत्कृष्टरूप दिखाई देते है । कहीं पर भी शिल्प – सम्बन्धी कोई क्षति प्रकट नहीं हो पाती । परसाईजी की शिल्प–कला के जो उत्तम गुण है, उसके संदर्भ में श्री भगीरथ मिश्र यथार्थ लिखते है – ''परसाईजी की अभिव्यंजना शैली बड़ी सहज है । उनकी भाषा में कहीं भी कृत्रिमता और बोझिलता नहीं । उनकी शब्दावली सरल और मुहावरेदार है, उसमें किसी प्रकार की जटिलता या उलझाव नहीं । पढ़नेवालों को ऐसा लगता है, जैसे उनकी सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति और विचार–तरंगो में इतनी स्वच्छता और स्पष्टता है कि वे उन्हें सहज बोलचाल की भाषा में इस तरह कहते चले जाते है कि अनुभूति की चुभन और विचार की अकुलाहट उसमें स्वतः उतरती चली जाती है । उनकी रचना, उनकी अनुभूतिया संवेदना की अनायास किन्तु परिपूर्ण एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति लगती है । इतना ही नहीं, दूसरों में भी संवेदना जगाने की उसमें अदभुत शक्ति है । पर विशेषता यह है कि शब्द वही है, जो हम सब नित्यप्रति बोलते है, फिर भी अपने विशिष्ट संदर्भ और मुहावरे से जुडकर वे गहरा घाव करते हैं । परसाईजी सरल भाषाशैली के समर्थ लेखक है ।''[३६]

इस प्रकार 'तट की खोज' का शिल्प भी कथ्य की तरह प्रभावशाली है । परसाईजी ने इस उपन्यास में सार्थक भाषा का प्रयोग किया है । उनकी भावाभिव्यक्ति सचोट एवं प्रभावोत्पादक है ।

सारतः कथ्य और कथन की दृष्टि से परसाईजी का यह उपन्यास सफल रहा है । क्योंकि इसमें एक तरफ नारी की वेदना को बड़ी मार्मिकता के साथ रूपायित किया गया है, तो दूसरी तरफ यह उपन्यास आधुनिक जीवन सन्दर्भो की कृत्रिमता और खोखलेपन को उजागर भी करता है । अनुभूति और

अभिव्यक्ति दोनों स्तर पर प्रस्तुत लघु उपन्यास 'तट की खोज' सफल एवं हृदय स्पर्शी है ।

२. रानी नागफनी की कहानी :

'रानी नागफनी की कहानी' परसाईजी का एक लघु व्यंग्य उपन्यास है । इसका प्रकाशन सन १९६२ ई. में हुआ था । इसकी भूमिका में परसाईजी ने लिखा है, – ''सात–आठ साल पहले मुंशी इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' पढ़ते हुए मेरे मन में भी एक 'फेण्टेसी' जन्मी थी । वह मन में पड़ी रही और उसमें परिवर्तन भी होते रहे । अब वह 'रानी नागफनी की कहानी' के रूप में लिखी गयी । यह एक व्यंग्य–कथा है । 'फेण्टेसी' के माध्यम से मैंने आज की वास्तविकता के कुछ पहलुओ की आलोचना की है । 'फेण्टेसी' का माध्यम कुछ सुविधाओं के कारण चुना है । लोक–कल्पना से दीर्घकालीन सम्पर्क और लोकमानस से परंपरागत संगति के कारण 'फेन्टीसी' की व्यंजना प्रभावकारी होती है । इसमें स्वतंत्रता भी काफी होती है और कार्यकारण सम्बन्ध का शिकंजा ढीला होता है । यों इसकी सीमाएँ भी बहुत है ।''[४०]

कथानक :

साहित्य की कोई भी रचना हो, उसमें कथानक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है । विशेषकर उपन्यास में उसकी कथा ही उसकी सफलता के लिए सर्वोपरी होती है । कथानक श्रेष्ठ, तो उपन्यास सर्वोत्कृष्ट । अतः किसी भी उपन्यासकार के उपन्यास की कथा सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण होनी चाहिए ।

'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास परसाईजी का फन्तासी में लिखा गया लघु उपन्यास है । यद्यपि इसमे एक ही कथा है – अस्तभान और नागफनी के प्रेम की, तथापि बीच–बीच में मुफतलाल के इन्टरव्यू, निर्बलसिंह के विवाह प्रस्ताव, भैयासा'ब के जीव की सहायक कथाएँ भी है । चूँकि उपन्यास का कलेवर ही लघु है, अतः सहायक कथाएँ भी अति संक्षिप्त है । बावजूद इसके, इसकी अन्तर्वस्तु का फलक विस्तृत है । अपनी अनूठी कल्पना–शक्ति

और भेदक–दृष्टि से परसाईजी ने युगीन यथार्थ को 'गागर में सागर' के समान भर दिया है । यह उपन्यास इंशाअल्ला खाँकी कथा 'रानी केतकी की कहानी' के कथातंत्र के आधार पर लिखा गया एक कल्पित कथानकवाला उपन्यास है । इसमें पात्र और घटनाओं के कल्पित होने के बावजूद सब कुछ ताजा और समकालीन है । इस देश में पूँजीवादी–सामन्तवादी व्यवस्था की खिचड़ी जिस तरह सक्रिय रूप से पकायी जा रही है और जिसके कारण प्राथमिक की भूमिका रखनेवाला आम आदमी द्वितीयक की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर हो जाता है, परसाईजी ने उसी मिश्रित व्यवस्था को इस कल्पित कथा में इस प्रकार रूपायित किया है, जिससे अधिक से अधिक इसकी सारवस्तु इसमें समेटी जा सके । कल्पित कथा होने के कारण ही इसमें सारवस्तु को व्यापक रूप से आच्छादित करने की क्षमता पैदा हो सकी है । श्री गुलाबसिंह लिखते है, – ''यह रचना एक व्यवस्था की प्रतीक है, जिसमें कोई एक राजा और उनकी प्रजा नहीं इसके बदले राज–परिवार के नाम से सारे पात्र व्यवस्था के अलग–अलग चेहरे हैं । आज की स्थिति में यह व्यवस्था कितनी अक्षम, स्वार्थपूर्ण और बेहूदा है, इसकी मिसाल अस्तभान, नागफनी, भयभीतसिंह, राखडसिंह और निर्बलसिंह हैं । इनके पास एक ही चीज है, वह है – सत्ता की शक्ति, जिससे उन्होंने लेखक, कवि, चित्रकार, योगी, सैनिक, डोक्टर, मंत्री, विरोधी दल आदि सबको जोड रखा है ।''[४१]

इस उपन्यास में शिक्षा–व्यवस्था की दरिद्रता के संकेत है, राज–परिवारों की संतानो की मूर्खताएँ है, प्रेम सम्बन्धी सामाजिक रुढिवादिता, पीत पत्रकारिता के वर्णन है । साथ ही साथ रीतिकालीन कवि, शास्त्रीय गायक, विद्रोही कवि, क्षणवादी आधुनिक एवं शास्त्रीय चित्रकार, नीमहकीम चिकित्सक, नालायक प्रेम–विशेषज्ञ ओझा, लोकसेवा आयोग की चयन पद्धति, विवाह लोलुपता, अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक प्रवृत्तियाँ, ढोंगी एवं पाखण्डी तांत्रिक साधु, दहेजलोभी, सतालोभी मुख्य अमात्य, असंतुष्ट नेता, चाटुकार मक्कार छात्र आदि के विभिन्न रूपों से भरा–पूरा रंगमंच हैं । कथा पूरी तरह कल्पित है, किन्तु घटनाओं की

प्रकृत्ति व पात्रों के चरित्र वर्तमान राजनीति एवं समाज का यथार्थ है । नागफनी और अस्तभान को तथाकथित प्रेम की खिल्ली उड़ाते हुए चित्रित किया गया है । पूँजीवादी जनतंत्र – समाज में मनुष्य आज एक खुबसूरत बिकाउ माल में रूपांतरित हो गया है । इस तरह उपन्यास में ऐसी कई बाते हैं – जिसमें आज की सामाजिक व्यवस्था और राजनैतिक षडयंत्र की परसाईजी ने आलोचना की है । यह लम्बी फेण्टेसी सामन्ती परिवेश और पात्रों के माध्यम से हमारे समय की यथार्थ कथा कहती है, जिसमें सामाजिक पतन और राजनैतिक अवमूल्यन है । यह उपन्यास हमारे समाज की वास्तविकता की प्रखर व्यंग्यात्मक आलोचना है । ऊपर से मनोरंजक और हल्की-फूल्की प्रेमकहानी लगनेवाली 'रानी नागफनी की कहानी' में लेखक ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की विसंगतियों को बड़े कायदे से उठाया है और प्याज के छिलके उतारते-उतारते सम्पूर्ण रिक्तता का एहसास भी करा दिया है । डॉ. मदालशा व्यासने लिखा है, – "कहानी कहते-कहते परसाईने बड़ी खूबी से राजनीति, शिक्षा, सरकारी नौकरशाही, पत्रकारिता, चिकित्सा-प्रणाली, समाज और संस्कृति, सभी कोनों की रिक्तता को खोलकर दिखा दिया है । साधारण-सी प्रेम कहानी लगनेवाला यह उपन्यास भाषा के सरलीकरण और तीखे व्यंग्य के कारण अविस्मरणीय बन गया है ।"[४२]

अपने इस उपन्यास के माध्यम से परसाईजी ने पतनशील सामंतीवर्ग और नवीन उपभोक्तावादी युगबोध को प्रेम कहानी की फन्तासी में कसा है । ऊपर ऊपर से उपन्यास ऐसा लग सकता है, जैसे किन्ही मध्यकालीन सामन्ती पात्रों की कहानी हो, उसमें पात्र, वातावरण, संवाद और माहौल सामंती परिवेश के लिये गये है, किन्तु जो यथार्थ उपन्यास प्रस्तुत करना चाहता है, वह हमारा समकालीन सामाजिक यथार्थ हैं । अपने लघु कलेवर और सीमित घटनाओं के होते हुए भी परसाईजीने समकालीन भारत ही नहीं, विश्व की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियो को नये एवं वास्तविक आयाम सन्दर्भ देकर साहित्य की जनप्रतिबद्धता को दृढ किया है ।

आदि से अंत तक यह मूर्ख राजकुमार एवं राजकुमारी की कथा होते हुए भी यह आज की वास्तविकता के कुछ पहलू सामने रखता है । इस वास्तविकता में लेखक एक ही साथ हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था, अर्थ प्रणाली, सामाजिक जीवन मूल्य राजनैतिक कदाचरण और पूरी व्यवस्था में जहर की भाँति फैले भ्रष्टाचार पर तीखा व्यंग्य किया है । डॉ. मालमसिंह लिखते है, – ‘‘आद्योपांत फन्तासी में सृजित इस उपन्यास को मुंशी इंशाअल्ला खाँ की कृति ‘रानी केतकी की कहानी’ का छाया उपन्यास कहा जाता है, परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है । उसी तर्ज पर रचा यह उपन्यास अपनी स्वतंत्र जमीन निर्मित करता है । यद्यपि विषयवस्तु दोनों में प्रेम कहानी है, तथापि ‘रानी केतकी की कहानी’ का उद्देश्य जहाँ मनोरंजन मात्र है वहीं परसाई अपने समसामयिक परिवेश में प्रेम और मानवीयता के अवमूल्यन को लेकर चिन्तित होते है और साथ ही सामन्ती अवशेषों और पूँजीवादी अन्तर्विरोधों की दुःस्थिति पर तीखा व्यंग्य करते हैं । ‘रानी केतकी की कहानी’ का शिल्प सीधा सादा फैन्टेसी का है, किन्तु ‘नागफनी’ की व्यंग्यात्मक फैन्टेसी में तीखी वक्रता है ।’’[४३]

इस उपन्यास में कुँवर अस्तभान बी.ए. में चार बार फैल हो जाने के कारण आत्महत्या करना चाहते है, उसी प्रकार नागफनी प्रेम में पाँच बार निष्फल हो जाने के कारण आत्महत्या करना चाहती है, वही दोनों का मिलन होता है, फिर दोनों की प्रेमकहानी शुरु होती है और इसी प्रेम कहानी की सामान्य कथा कहते कहते परसाईजीने वर्तमान समाज की सभी विकृतियो को स्पष्टतः उजागर कर दिया है । इस उपन्यास के सम्बन्ध में यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि उपन्यासकार का अभीष्ट हमारे समकालीन यथार्थ का उद्घाटन करना था, तो वह बगैर फैंटेसी का सहारा लिये भी यह कर सकते थे । इस उपन्यास को आखिर फन्तासी में ही क्यों रचा गया ? वास्तविकता यह है कि उपन्यास की कथा और द्वंन्द्व अथवा उसके अन्तः बाह्य व्यक्तित्व के सूक्ष्म विश्लेषण के बजाय हमारे समय की कथा कही गयी है और समकालीन सामाजिक व्यवस्था की वास्तविकता को ही जैसे एक पात्र बना दिया

गया है । व्यवस्था अमूर्त होती है आदमी मूर्त । सामंती पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार इस मौजूदा व्यवस्था की वास्तविकता को सामने रखते हैं । फेन्टेसी में चीजे, सम्बन्ध और यथार्थ एक संश्लिष्ट इकाई बन जाते है, वह प्रतीक या संकेत भर नहीं होती, उसका अपना एक व्यक्तित्व स्वयं बन जाता है । आज का जटिल यथार्थ एक सामन्ती फैन्टेसी में अपने अन्तर्विरोधों और विद्रूपताओं को जैसे स्वयं नग्न करता जाता है । परसाईजी ने प्रेम और सौन्दर्य के स्वाभाविक रस को विकृत कर देनेवाली व्यवस्था को भी नंगा कर दिया है । कितना तीखा और सार्थक व्यंग्य है – ''राजकुमारी की आँखों से आँसू निकल रहे हैं । दाएँ–बाएँ दो दासियाँ पाउडर का डिब्बा लिये खडी है, ज्यो ही आँसू निकलता है, दासी उसे पौछकर पाउडर छिडक देती है । राजकुमारी का सिर गोद में लिए उसकी सखी करेलामुखी बेठी है ।''[४४]

कहना न होगा कि यह उपन्यास परसाईजी की आगामी रचनाओं की पूर्व पीठिका है । इसमें उल्लेखित घटनाओं व स्थितियों पर बाद में उन्होंने कई स्वतंत्र निबन्ध भी लिखे । उन्होंने पात्रों की जातीय प्रवृत्तियो पर व्यंग्य करने का एक भी अवसर नहीं गँवाया । अस्तभान व नागफनी के आत्महत्या करने जाने के पूर्व लिखे पत्रों एवं चित्रकारो द्वारा बनाये चित्रों के सन्दर्भ नोट देखकर क्रमशः वर्तमान के भ्रष्ट पुस्तकालयाध्यक्षों, डाक विभाग के घपलों और पूर्वसामन्तवादियों की परवर्ती संतानों की प्रवृत्ति दिखा दी है । उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें बेरोजगारी, प्रेम की असफलता तथा अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओं के समाधान के लिए आत्महत्या विभाग तथा लोकसेवा आयोग के लिए प्रार्थनापत्र का प्रारूप बनाकर परसाईजीने व्यवस्था के लुके–छिपे षडयंत्रो की कलई खोल दी है । यह कलई बहुत ही बेहरमी से खोली गयी है । सांकेतिक ढंग से व्यवस्था का कोई पुरजा नहीं बचा, जिसे उन्होंने स्पर्श न किया हो । एक प्रकार से यह भारत के समकालीन पूँजीवादी जनतंत्र और उसके अन्तर्गत समाज के उच्च एवं मध्यवर्ग के चरित्र का प्रामाणिक दस्तावेज है । परसाईजी का अभीष्ट बीते समय के किन्हीं ऐसे अस्तभान की कथा

कहना नहीं है, जो इतिहास के कूडे घर में फैंक दिये गये है, बल्कि उनका आशय तो उस व्यवस्था के व्यक्तित्व का अन्तर्बाह्य दर्शन कराना है जिसमें हमारा पूरा समाज कैद है ।

इस प्रकार परसाईजी के 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास की विषयवस्तु समकालीन समाज और राजनीति में व्याप्त पाखण्ड, विसंगतियों, छदम और प्रवृत्तियो का यथार्थपरक विश्लेषण कर बौद्धिक विवेचन करना है । परसाईजीने चुन–चुन कर उन सारी स्थितियों को लिया है, जिनके बीच राजनीतिक एवं पूर्व राजतंत्री जीवन जीते हैं । वास्तव में इस उपन्यास के माध्यम से इतिहास शेष राजतंत्रीय और सामन्तवादी परम्पराओं पर चोट की है और आधुनिक विचारो को सामने रखा है । इस तरह से वे इतिहास और आधुनिकता को साथ–साथ लेकर चले हैं । परसाईजीने भूत और समकालीन यथार्थ की विद्रूपता का एक–एक रेशा खोलते हुए तीखी सच्चाई सबके सामने ला दी है । उनके प्रहारों से कोई नहीं बच पाया । इसमें भारतीय प्रजातंत्र की वह तस्वीर दिखाई गई हैं, जिसके अन्तर्गत सबकुछ उलट–पलट गया है । कहा जा सकता है कि यह उपन्यास परसाईजी के साहित्य क्षेत्र में जीवित रहने के लिए पर्याप्त है । जिस प्रकार गुलेरीजी 'उसने कहा था' कहानी के दम पर जिन्दा है, उसी प्रकार परसाईजनी 'रानी नागफनी की कहानी' के बल पर सदैव याद किये जायेंगे । डॉ. नन्दलाल कल्ला सत्य कहते है, – ''रानी नागफनी की कहानी' हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनोखा प्रयोग है । यह 'गोदान' या 'मैला आँचल' की तरह महाकाव्योचित गरिमा मंडित उपन्यास नहीं है अथवा यह 'राग दरबारी' की तरह बहुआयामी पूर्ण उपन्यास न होकर लघु व्यंग्य उपन्यास है । इसकी कथा वामनी है, परन्तु व्यंग्य–व्यंजना की माया त्रिलोक को अपने में समेटनेवाली है । जो आद्योपरांत हमारे संश्लिष्ट जीवन के कोणों को व्यंग्य में 'रानी नागफनी की कहानी' में प्रस्तुत करती है ।''[४५]

संक्षेप में परसाईजी की यह रचना एक 'थियेटर' है, यही कारण है कि देश के विभिन्न हिस्सों में इसका अलग–अलग नाटय रूपान्तरण और मंचन

हुआ है । इतने लघु आकार में व्यवस्था का प्रतिबिम्ब या तो मुक्तिबोध की कविताओं में मिलता है या परसाईजी की व्यंग्य रचनाओं में । यह युग 'केतकी' का ही नहीं, 'नागफनी' का है । इसलिए इस फैंटेसी में समकालीन भारतीय यथार्थऔर कलारूप की परंपरा का विकास मिलता है । समकालीन जीवन के विश्लेषण एवं विवेचन के लिए ऐसी रचनाओं की अहं भूमिका की आज भी प्रासंगिकता और अहमियत है । यह उपन्यास परसाईजी की सफल रचनाओं में से एक है ।

चरित्र :

किसी भी रचना में चरित्र का सफल निर्माण उस कृति की सफलता में चार चाँद लगा देता है । चरित्र का कथानुसार चित्रांकन करना कृति के लिए महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि पात्रों के द्वारा ही रचना की कथा यथार्थ एवं सार्थक बन पाती है । अतः साहित्य में चरित्र का विशेष महत्त्व माना जाता है ।

'रानी नागफनी की कहानी' एक व्यंग्यात्मक उपन्यास है । यह उपन्यास चौदह शीर्षको के खण्डों में विभाजित है । इस उपन्यास में केन्द्रीय पात्र अस्तभान और नागफनी हैं । मुख्यपात्र मुफतलाल, करेलामुखी, राजा निर्बलसिंह, जोगी प्रपंचगिरि, मुख्य अमात्य गोबर्धनदास है । सहायक पात्र राजा भयभीतसिंह, राजा राखडसिंह, भैयासाब, उडाउमल, गायक, विदुषक कवि, चित्रकार, पत्रकार, ओझा प्रोफेसर, प्रेम–विशेषज्ञ आदि है । इस उपन्यास के पात्रों को दो वर्गो में बाँटा जा सकता हैं – एक वर्ग वह है, जिसमें राजसत्ता से सम्बन्धित व्यक्ति आते है और दूसरे वर्ग में जनता के साधारण व्यक्ति । सभी पात्र प्रतीकात्मक एवं व्यंग्यात्मक है । उनके नाम ही इस बात के द्योतक है कि यह व्यवस्था ह्रासोन्मुखी हैं । पात्रो के साथ जो कथानक जुडा है, उसमें डूबते हुए सामन्ती और पूँजीवादी भव्यता और शानोशौकत का अस्त होता सूरज साफ दिखाई देता है । क्रमशः इस उपन्यास के प्रमुख पात्र के चरित्र को विस्तार से देखें, –

➡ कुँअर अस्तभान :

कुँअर अस्तभान उपन्यास का नायक है । समूचा कथा–तंत्र उसीके इर्द–गिर्द घूमता है । यह राजा भयभीतसिंह का पुत्र है, राज्य का भावी कर्णधार । परीक्षा में कई बार फैल हो चुका है, मंदबुद्धि और नवधनिक वर्ग के बिगड़े सपूत का प्रतीक है । कुंअर अस्तभान उन युवकों का प्रतनिधित्व करता है, जो स्कूल या कोलेज में पढ़ाई करने में रुची नहीं रखते, बल्कि अपनी किताबे बेचकर फिल्म देखना, लड़कियों से छेडखानी करना, परीक्षा में नकल करना, विश्वविधालयों से कोरी परीक्षा कापियाँ चुराना, परीक्षा के बाद परीक्षको को नम्बर बढ़ाने के लिए रिश्वत देना तथा डिग्रियाँ खरीदना अपनी शान समझते है । अपना अहं तुष्ट करने के लिए बहुत सामान्य किस्म के स्वार्थो के आधार पर युद्ध छेड देना वह अनुचित नहीं समझता । पूरे उपन्यास में अस्तभान का कार्य प्रेम करना, उसमें असफल होना और प्रेम की सफलता के लिए अथक प्रयास करना ही है, उसीमें वह तन–मन–धन से लगा हुआ है । वह पूरी की पूरी ह्रासशील यवस्था का वाहक है । उसके मन में अपने पिता तथा अन्य बड़े लोगों के प्रति तनिक भी श्रद्धाभाव नहीं है । वह कहता है – ‘‘मेरे पिता बेवकूफ हैं, ऐसा माने बिना प्रगति ही नहीं हो सकती ।...... मेरा बाप लोभी है । पैसे के सामने उसका क्षत्रित्व नाक रगडता है । अगर कोई उससे कहे कि एक लाख रूपये देंगे, तुम अपनी एंठी मूँछे मुँडा दो तो वह मुँडा देगा ।’’[४६]

परसाईजी ने अस्तभान के माध्यम से कहा कि राजतंत्र और सामन्तवाद को एक न एक दिन नष्ट होना ही था, क्योंकि वह एक पतनशील व्यवस्था थी । उसमें उत्तराधिकारी मूढ और नालायक ही होते रहे । उनकी अपनी न कोई विचारधारा होती थी, न योजनाएँ । अस्तभान की भी यही दशा है । वह चारों ओर से मुँह लगे दरबारियों से धिरे रहनेवाले राजाओं की तरह मुफतलाल की गिरफत में हैं । मुफतलाल ही उसके लिए सबकुछ है । वह कहता है – ‘‘तू जानता है मैं तेरी सलाह मानता हूँ । जो कपड़ा तू बताता है, वही

पहनता हूँ । जो फिल्म तू सुझाता है, वही देखता हूँ, तू ही बता, मैं क्या करुं ।[४७] खुद को वीर कुल का कहनेवाला अस्तभान फैल होने के लिए खुद को जिम्मेदार न मानकर शिक्षण व्यवस्था को मानता है । उसका कहना है कि, ‘‘जिन्हें दोनों जून खाने को नहीं मिलता, उन्हें तो डिग्री मिल जाती है और हम फैल हो जाते हैं । हमें जिन्हें बिना परीक्षा के ही डिग्री दे देनी चाहिए एक–एक नम्बर के लिए दर–दर भटकना पड़े और जिनके पास फूटी कौडी नहीं हैं, वे घर बैठे नम्बर पा जाये । घोर अन्याय है ।’’[४८] राजा की संतान होने की वजह से वह गरीबों को निकम्मा तथा बेईमान समझता है । पैसे के घमंड से वह शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र को भी खरीदना चाहता है । अस्तभान द्वारा लिखी चिट्ठियों के माधयम से परसाईजी ने उसकी अशिष्टता को उजागर किया है । इन पत्रों का मकसद यह बताना है कि जैसी विरासत मिलेगी, वैसी ही संतान होगी । अस्तभान जिस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें संस्कारों को उचित महत्त्व नहीं दिया जाता । वह अपने पिता को लिखी चिट्ठी में कहता है, – ‘‘मेरे कमरे की आलमारी में १०० साल पुरानी शराब रखी है जो मैंने जंगल मुहकमे के फरनेव्हीज साहब के मारफत मँगायी थी । यह बहुत बढिया शराब है ।.... आपने मेरी मित्र मिस सुरमादेवी से मेलजोल बढाना चाहा था, जो मैंने नहीं बढने दिया । अब आप बढा सकते हैं ।’’[४९]

सुंदर लड़कियाँ अस्तभान की कमजोरी है । इसलिए वह सुंदर युवतियों को कीमती वस्तुयें भेंट के रूप में देता है । भेड़ाघाट पर आयी हुई नागफनी को देखकर मुर्च्छित होना यह इस बात का प्रमाण है । अपने प्रेम के खातिर वह संघर्ष करके भी रानी नागफनी से विवाह करने का रास्ता बनाता है । मुफतलाल को डेप्यु. कलेक्टर की नौकरी के लिए शिफारिश करके उसने सच्चे दोस्त का नाता भी निभाया है । जब मुफतलाल उसके साथ आत्महत्या करने की बात कहता है, तो वह उसे रोकता है और कहता है कि – ‘‘तेरे लिए आत्महत्या का मौका तब आयेगा, जब तेरी नौकरी नहीं लगेगी । तू तो जानता है कि कोई युवक परीक्षा में फैल होने से चाहे बच जाये, पर बेकारी से नहीं

बच सकता ।"[५०] यहाँ इस कथन में अस्तभान का चरित्र कडवी सच्चाई बोलनेवाले युवक के रूप में उभरता है, अपितु इसमें सक्षमता अधिक नहीं है, क्योंकि जानवर की तरह खुद की निलामी वह नहीं रोक सकता । उसके पिता दहेज के नाम पर जब उसका टेंडर बुलाते है, तब वह विरोध नहीं करता, बल्कि राजा राखडसिंह के मुख्य अमात्य से मिलकर उसे टेंडर भरने की बात करता है । एक तरफ प्रेमविवाह करना चाहता है, तो दूसरी तरफ दहेज का टेंडर भराता है । बी.ए. तक पढ़ा होने पर भी पुराने विचारों में जकडा हुआ, गैर जिम्मेंदार, झूठीशान जतानेवाला कुँअर अस्तभान व्यंग्य उपन्यास का ऐसा नायक है, जो सब कुछ कर सकता है । परन्तु कुछ भी वह कर नहीं पाता । आज के युवक सर्वशक्ति सम्पन्न होते हुए भी अकर्मण्य है । यह भाव परसाईजीने व्यंजित किया है ।

(२) रानी नागफनी :

रानी नागफनी इस लघु, व्यंग्य उपन्यास की नायिका के रूप में हमारे सामने आती है । वह राजा राखडसिंह की बेटी है । रानी नागफनी उन युवतियों का प्रतीकरूप है, जो पश्चिमी संस्कृति से अधिक प्रभावित होकर एक से अधिक युवकों से प्रेम सम्बन्ध रखती है, साज–श्रृंगार–मेकअप को सुंदरता के लिए अनिवार्य समझती है । परसाईजी ने रानी नागफनी को राजतंत्र और सामंतवादी समय की नारी–स्थिति के प्रतीक रूप में चित्रित किया है । उस समय नारी मात्र उपभोग की वस्तु थी । न वह प्रेम कर सकती थी, न उसका कोई सत्ता से स्वतंत्र अस्तित्व था । उसे सत्ता के समीकरणों में इस्तेमाल किया जाता था । जिस प्रकार केकई, सीता, द्रोपदी पौराणिक उदाहरण है, संयोगिता, राजमति, पद्मावती, जोधाबाई इत्यादि ऐतिहासिक चरित्र वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराते हैं । उसी प्रकार नागफनी मध्यकालीन नायिकाओं की याद ताजा कराती हैं, जो प्रेम में विकल रहती थी, परन्तु राजशासन के बंधनों में जकड़ी होने से ऐसा करने के लिए स्वतंत्र नहीं थी । नागफनी की न परिवार

में कोई भूमिका है, न सामाजिक महत्त्व । सच्चे अर्थो में वह एक 'शो–पीस' है । घर की चहार–दीवारी के अंदर कुछ भी निरर्थक करने की छूट है – भौंड़े श्रृंगार से लेकर छिछला प्रेम तक । देखिए – ''राजकुमारी की आँखो से आँसू निकल रहे हैं । दायें–बायें दो दासियाँ पाउडर का डिब्बा लिये खड़ी है । ज्यों ही आँसू निकलता है, दासी उसे पोंछकर पाउडर छिड़क देती है ।''[५१]

रानी नागफनी अपने नाम के अनुरूप ही विषैली, कटीली, कठोर और वातावरण को विषाक्त बनादेनेवाली पात्र है । वह प्रेम में पाँचवी बार असफल होकर आत्महत्या का निश्चय करती है, किन्तु एन मौके पर कुँअर अस्तभान को देखकर उसके प्रेम में बंध जाती है । यहाँ उसकी चारित्रिक दुर्बलता एवं मानसिक अप्रौढता दिखाई देती है । रानी नागफनी की दृष्टि में आत्महत्या और विवाह दोनों समान है । अतः वह आत्महत्या करने जाने से पहले अपने एक पत्र में लिखती है, – ''मैं तो जा रही हूँ । पर मैं अपनी बहिनों को सावधान करती हूँ कि जब तक कोई पुरुष आत्महत्या या विवाह करने का वादा न करे, उससे प्रेम न करे ।''[५२] सामन्ती विलासिता के संदर्भ में भी वह राजा निर्बलसिंह के बाद दूसरा मील का पत्थर है । अनेकों प्रेम करने के बाद भी अस्तभान के विरह की ताप में इतनी तपती है कि उसकी सखी को कूलर लगाना पड़ता है । तन का ताप तो दूर हो जाता है, किन्तु मनःताप दूर करने के लिए नगरशेठ के लड़के उडाउमल से प्रेम का नाटक रचती है और यह जताते हुए कि यह सबकुछ वह अस्तभान के लिए कर रही है । यहाँ प्रेम की पवित्रता और शालीनता कहीं नहीं है । परसाईजी यहाँ कहना चाहते है कि आज के युग में प्रेम की पवित्रता का कोई अर्थ नहीं है । सब ओर आज नागफनी – जैसे पात्र ही फलते–फूलतेहैं । जो आदर्शवाद को लेकर बैठा रहता है, वह मूर्ख माना जाता है । डॉ. मदालशा व्यास लिखती है, – ''रानी नागफनी नामक पात्र का नामकरण लेखक ने बड़ा सोच–समझकर किया है । एक समय कैक्टस अर्थात् नागफनी को आधुनिक भावबोध का प्रतीक माना जाने

लगा था । कैक्टस इस बात का प्रतीक बन गया था कि आज की जिन्दगी कितनी कटीली, संत्रासपूर्ण, कुण्ठाग्रस्त और बेमतलब हो गयी है । लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास की यात्रा में भी यही गुण आरोपित करने का प्रयत्न किया है ।"[५३]

अस्तभान की तरह रानी नागफनी का बचपना भी उसके विचारों से झलकता है । वास्तव में इसके माध्यम से परसाईजी ने उसकी मानसिक दरिद्रता को प्रकट किया है, – "एक वह जमाना था कि एक राजकुमारी के लिए सैंकड़ों युवक प्राण देने को तैयार रहते थे और अब मुझे एक मरनेवाले का टोटा पड़ रहा है । यह देश कहाँ जा रहा है ? इस देश का कितना पतन हो गया ।"[५४] एक नारी दूसरी नारी का सुख देखकर या उसकी सुंदरता देखकर इर्ष्या का भाव रखती हैं, वही भाव रानी नागफनी में भी दिखाई देता है । इस बात का पता हमें उसके वक्तव्य से चलता है, वह अपनी सहेली करेलामुखी से कहती है कि – "उस भानमती को ही देखो–न अच्छी साडियाँ हैं उसके पास और न ठीक से मेकअप करती है । पर उसके प्रेमीने उससे विवाह कर लिया । जूही के प्रेम में अभी तक दो आदमी आत्महत्या कर चुके हैं ।"[५५] इस वक्तव्य से रानी नागफनी में नारी स्वभावगत ईर्ष्या का भाव दिखाई देता है । अपने रूप की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना नारी स्वभाव है, उसी प्रकार नागफनी अपने रूप की प्रशंसा सुनकर खुश होती है । वह जब आत्महत्या करने भेड़ाघाट जाती है, तब उसे देखकर कई युवक उसके आगे–पीछे घूमते हैं । अपने रूप का प्रभाव देखकर उसे विश्वास होता है कि वह आत्महत्या करने के बाद उस लोक में उर्वशी और मेनका को अपने से कम रूपवती साबित करके उनको उनके आसन–से हटाकर उस आसन पर खुद बिराजमान हो जायेगी ।

इस प्रकार झूठा दिखावा, घिनौनास्वार्थ, प्रेम और सौन्दर्य को हास्यास्पद बतानेवाली व्यवस्था नागफनी के चरित्र से परिलक्षित होती है । प्रस्तुत उपन्यास में रानी नागफनी चंचल स्वभाव की, मेकअप में अधिक रुची लेनेवाली, पश्चिमी

संस्कृति के अधीन हुई, साडी की तरह प्रेमी बदलनेवाली धोखेबाज प्रेमिका तथा कामुक स्त्री के रूप में प्रतीत हुई है । सम्पूर्ण उपन्यास में रानी नागफनी का चरित्र कोई सार्थक भूमिका नहीं निभाता ।

➡ *मुफतलाल :*

मुफतलाल 'रानी नागफनी की कहानी' के कथानक में कुँअर अस्तभान का सहयोगी तथा मित्र है । वह अस्तभान के साथ बचपन से बी.ए. तक पढ़ा है । गरीबी के कारण वह मन चाहे तरीके से पढ़ाई नहीं कर सका । इसलिए कुँअर अस्तभान के साथ रहकर जैसे तैसे अपनी पढ़ाई करता है । अस्तभान के साथ मिलकर मूंगफली खाना, परीक्षा में नकल करना, बकरे की बोली बोलना यह वह अपनी मजबूरी की खातिर करता है । वह जानता है कि अगर राजकुमार अस्तभान नाराज हो गये तो उसकी पढ़ाई नहीं होगी और उसे नौकरी भी नहीं मिलेगी । इसीलिए वह कुँअर अस्तभान की बात को राजाज्ञा समझता है, जो बात कुँअर कहेगा वही सही रहेगी । कुँअर का विरोध करके वह अपना भविष्य बर्बाद नहीं करना चाहता । वह हंमेशा अपनी झूठी मीठी बातों से अस्तभान को खुश करता रहता है ।

मुफतलाल के नाम से ही प्रतीत होता है कि यह उच्चकोटि का चमचा है, जो मुफ्त में खाता पीता और एश करता है । ऐसे लोग किसी बड़े का सहारा ढूँढकर उससे चिपटे रहते है और अपना मतलब सीधा करते रहते हैं । मुफतलाल जैसे व्यक्तियों का उद्देश्य एश करके जिन्दगी गुजरना और हो सके तो भविष्य के लिए अपना पूरा इन्तजाम करना होता है । डॉ. मालमसिंह लिखते है, – "मुफतलाल उन सारे गुलामो, मानसिक दिवालियों का प्रतिनिधि पात्र है, जो अपनी हित साधना के लिए अहर्निश सत्ताधारियों की जय–जयकार व मक्खनबाजी करते रहते हैं । वह अपना स्वार्थ अस्तभान के जीवन–मरण के समय भी नहीं भूलता ।"[५६] वर्तमान युग में जहाँ एक ओर भुक्तभोगी, गरीब, अशक्त, शोषितजन घुट–घुटकर मर रहे हैं, वहीं आज अनेको मुफतलाल

देखने को मिलते हैं, जिन्हे शासक की मौत की नहीं, अपनी डिप्टी कलेक्टरी की फिक्र है । अस्तभान अपने विवाह की व्यवस्था कर रहा था और मुफतलाल मन ही मन शंकित हो रहा था कि कहीं शादी हो जाने के बाद यह मेरा काम नहीं कर पायेगा तो ? फिर भीउसने अपनी शंका दबाकर उपर से उत्साह दिखाया, क्योंकि ''मित्रता का सिद्धान्त वह जानता था – भीतर कुछ और उपर कुछ और होना चाहिए । दोनों चले जा रहे थे । मुफतलाल को नियुक्ति की चिन्ता परेशान कर रही थी । उसने धीरे से कहा – 'मेरा आर्डर अभी तक नहीं आया ।''[५७] डिप्टी कलेक्टर बनने के बाद भी वह कई बार घूस लेने के मामले में फँस गया, किन्तु इसलिए छोड दिया गया कि वह रानी साहिबा की सखी का पति है, क्योंकि मुफतलाल ने अस्तभान के विवाह के बाद रानी नागफनी की सखी करेलामुखी से शादी कर ली थी ।

मुफतलाल कुँअर अस्तभान को प्रेम के सम्बन्ध में सभी बाते बताता है और नागफनी के विरह में बिमार अस्तभान की विभिन्न रूप में मदद करता है, उसके पत्र नागफनी तक पहुँचाता है, अस्तभान के पिता राजा भयभीतसिंह से कुँअर की शादी की बात भी वही करता है और ऐसे ही अमात्य के लिए भैयासाब का जीव लाने के लिए भी वह अस्तभान के साथ जासूस बनकर जाता है । मुफतलाल बड़ा चतुर और बुद्धिमान है । जब जोगी प्रपंचगिरि के साथ पुलिस उसे भी पकड लेती हैं, तो वह कहता है कि मैं पुलिस की मदद कर रहा हूँ । वह प्रपंचगिरि पर रखे इनाम को लेकर वहां से निकल आता है । जब मुख्य अमात्य पच्चीस लाख रूपये बचाने के लिए अस्तभान को सरकारी विवाह दफतर में जाकर शादी की बात करता है, तब मुफतलाल वह होने नहीं देता और मुख्य अमात्य की चाल को अस्तभान को समझाता है, तब कुँअर उसकी चतुराई की दाद देता है ।

इस प्रकार इस उपन्यास में मुफतलाल नाम की तरह ही सब मुफत में चाहनेवाला, चतुर, बुद्धिमान, झूठी आस्था दिखाकर कुँअर से काम निकालनेवाला पात्र है । आज के प्रवर्तमान युग में मुफतलाल जैसे लोग सत्ताधिशो को खुश

करके लाभ अर्जित करने में अपनी प्रतिभा, योग्यता एवं दक्षता तक को गिरवीरख देते हैं । वे अपनी सारी उम्र इनकी चाटुकारिता में गुजार देते हैं । मुफतलाल जैसे लोग ही जनता और शासन के बीच दलाल बने घूमते हैं और इन्हीं के कारण मध्यवर्ग इस अव्यवस्था को जानकर भी और चाहते हुए भी इसका विरोध नहीं कर सकते । वास्तव में मुफतलाल प्राचीन स्वार्थी दरबारियों और आधुनिक नेताओं के चमचों का प्रतीक है ।

➭ *करेलामुखी :*

करेलामुखी इस कृति में रानी नागफनी की दासी है, अपितु पूरे कथानक में वह रानी नागफनी की सहेली के रूप में दिखाई देती है । करेलामुखी – जैसा कि नाम से ही प्रकट है, सारे समाज, मानवता और राष्ट्र को कडुवाहट से भर रही है । करेलामुखी ने जब पहली बार बोलना सीखा तो उसके मुख से सर्वप्रथम गाली ही निकली, इसलिए यथा नाम तथा गुण बताने के लिए इसका नाम करेलामुखी रख दिया गया । वह हर समय रानी नागफनी को सलाह देती रहती है । जब राजकुमारी प्रेम में विफल होने की वजह से आत्महत्या करना चाहती है, तब वह समझाती है कि "राजकुमारी, इतनी उतावली मत करो । जैसे पाँच वैसे छः । एक 'ट्रायल' और करो ।"[५८] इस वक्तव्य से उसका चरित्र स्पष्ट हो जाता है ।

करेलामुखी जैसे पात्र ही राजसत्ता और जनसामान्य के बीच के दलाल हैं, जो दोनों ओर से अपना हित पहले देख लेते हैं । वह राजकुमारी के साथ दहेज में जाकर राजसुख लूटने को लालायित है । वह मुफतलाल के साथ मिलकर अस्तभान और नागफनी के विवाह कराने का प्रयत्न करती है ताकि उन दोनों की आमदनी का जरिया बंद न हो । करेलामुखी राजकुमारी नागफनी के आत्महत्या के इरादे से दुःखी होकर रोती है, किन्तु जब नागफनी कहती है कि उसके उम्रभर के खर्च की व्यवस्था उसने कर दी है, तो निश्चित होकर आत्महत्या की व्यवस्था करने चली जाती है । जब रानी नागफनी कुँअर

अस्तभान के विरह में जलती है तो करेलामुखी कहती है – ''राजकुमारी धीरज धरो । हर काम समय आने पर ही होता है । प्रेम में विरह जरुरी है । विरह से प्रेम पकता है ।''[५६] करेलामुखी के इस कथन से यह पता चलता है कि यदि नागफनी की जगह करेलामुखी विरह से तड़पती, तो एक सच्ची विरहिणी के रूप में इस उपन्यास में अपना स्थान निश्चित कर लेती । ऐसे ही वह राजकुमारी को विरह के गानों की पुस्तक देती है और विरहगीत गाने को कहती है । राजकुमार अस्तभान को पत्र भेजने के लिए वह 'प्रेमपत्र भेजने की तरकीबे' नामक किताब पढ़ती है । उस किताब में से तरकीब निकालकर वह नागफनी को पत्र लिखने को कहती है – और दोनों में पत्र–व्यवहार शुरु करवाती है ।

इस उपन्यास में करेलामुखी अपनी सहेली रानी नागफनी के प्रेम में व्यस्त रहने के कारण स्वयं पेंम नहीं कर पाती, किन्तु जब रानी नागफनी का विवाह अस्तभान से हो जाता है, तब वह उसके मित्र मुफतलाल से शादी कर लेती है । इस प्रकार करेलामुखी नागफनी की सहयोगी तथा गौण पात्र होते हुए भी नागफनी के राज को जाननेवाली, अपना स्वार्थ साधने के लिए नागफनी का इस्तेमाल करनेवाली नारी पात्र के रूप में हमारे समक्ष आती हैं । परसाईजी ने इस उपन्यास में करेलामुखी के माध्यम से उन मुफ्तखोर चापलूसों का चरित्र उजागर किया है, जो राजे–रजवाडों के यहाँ 'ठकुर सुहाती' कहते है और अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते है ।

➢ *गौण पात्र :*

'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास में राजा राखडसिंह, राजा भयभीतसिंह, राजा निर्बलसिंह, जोगी प्रपंचगिरि, मुख्य अमात्य तथाभैयासाब आदि है । इन सभी पात्रों के द्वारा परसाईजीने समकालीन राजकीय एवं सामाजिक विषमताओं तथा अव्यवस्थाओं का भंडा फोडा है ।

➡ *राजा राखडसिंह :*

राजा राखडसिंह रानी नागफनी के पिता है । वह इस उपन्यास में धूर्त, धोखेबाज, धन का लोभी एवं कुटील राजा के रूप में देखने को मिलता है । राजनीति में वह सफल एवं कुशल राजा नहीं है, क्योंकि अपने सभी कार्य वह मुख्य अमात्य के द्वारा करवाता है, स्वयं निर्णय नहीं ले पाता । ऐसे ही अपनी पुत्री का अनेक पुरुषों के साथ प्रेम सम्बन्ध है, फिर भी उसको कुछ पता नहीं होता, जो एक पिता के लिए शोभनीय बात नहीं है । अतः वह एक सफल पिता भी नहीं कहा जा सकता । राजा राखडसिंह समझदार एवं विचारशील मनुष्य नहीं थे । अतः परसाईजीने लिखा है, – ‘‘राजा राखडसिंह विचार में पड़ गये । विचार करने का उन्हें कभी अभ्यास नहीं था, इस लिए विचार की पीड़ा उनके मस्तक पर स्पष्ट उभर आयी ।’’[६०] राजा राखडसिंह धन का लोभी है । जब उससे राजा भयभीतसिंह राजकुमारी नागफनी का हाथ कुँअर अस्तभान के लिए माँगता है, तब वह इस प्रस्ताव को नामंजूर करता है । वह जानता है कि अगर अस्तभान के साथ नागफनी का विवाह करना पड़ा, तो दहेज के रूप में तमाम संपत्ति जायेगी । वह किसी भी हालत में धन खोना नहीं चाहता । उल्टे नागफनी का विवाह वह सो वर्ष का बूढ़ा राजा निर्बलसिंह से करना चाहता है । जिससे उसे धन की प्राप्ति हो सके । अपनी लड़की के भविष्य की चिंता करना छोड़कर वह उसे निर्बलसिंह नामक मुर्दे जैसे आदमी को देना चाहता है । इससे स्पष्ट होता है कि राजा राखडसिंह धन का लोभी एवं बुद्धिहीन मनुष्य है ।

➡ *राजा भयभीतसिंह :*

राजा भयभीतसिंह कुँअर अस्तभान के पिता है और उनका चरित्र भी कुछ राजा राखडसिंह से मिलता जुलता है । ये भी धन के लोभी है । इनके लिए मानवीय मूल्य बेमानी हैं । ये अपने पुत्र की शादी के लिए ‘टेंडर’ आमंत्रित करते है और ऊँची से ऊँची बोली लगानेवाले की बेटी के साथ

अपने पुत्र का सम्बन्ध करना चाहते हैं । इसमें वे पुत्र के जन्म से लेकर उसके लालन–पालन व शिक्षा में हुआ पूरा खर्च जोड़ते हैं, जो वे लड़कीवालों से वसूल करना चाहते है । अपने पुत्र को लेकर वह कहता है, – "अस्तभान का अब तक का सारा खर्च देना होगा । आखिर मैंने लड़का इसीलिए तो पैदा किया है ओर पाला है कि उनकी लड़की को पति मिल सके ।..... अभी तक मैंने उसमें पूँजी लगायी है । अब माल जब बाजार में आ गया है, तब क्या मैं उसकी अच्छी कीमत नहीं लूँगा ?"[६१] राजा भयभीतसिंह दहेज के नाम पर धन कमाना चाहता हैं । अपने परिवार में भी वह लापरवाह पिता के रूप में सामने आता है । कुँअर अस्तभान पढ़ाई छोड़कर लड़कियों के पीछे भागता है, अपनी किताबे बेचकर सिनेमा देखता है, परीक्षा में नकल करता है, किन्तु राजा भयभीतसिंह उसकी गलतियों को नजर अंदाज करते हैं । बल्कि इतना ही नहीं, नकल करते–करते पकड़ जाने पर खुद शिक्षको को रिश्वत देकर अस्तभान को छुडाते है । इस प्रकार राजा भयभीतसिंह का चरित्र सदगुणों के बदले दुर्गुणों से भरा हुआ धन लोलुप राजा तथा गैर जिम्मेदार पिता के रूप में प्रस्तुत हुआ है ।

➪ *राजा निर्बलसिंह :*

इस उपन्यास में राजा निर्बलसिंह का चरित्र सामन्तीय विलासिता का प्रतीक है । इसने अपने राज्य में एक विलास मंत्रालय खोल रखा है और अपना सारा जीवन विलासिता में ही खोया है । राजा निर्बलसिंह की उम्र १०० वर्ष है, इसने अभी तक ५० शादियाँ की है और ५० राजकुमारो के पिता भी है । किसी भी सुन्दर स्त्री को देखकर वह उस पर फिदा हो जाता है और उससे विवाह करने की कामना करता है । अपनी सौ साल की उम्र में भी वह अपने राज्य का कारोबार चलाता है और रानी नागफनी से विवाह करना चाहता है । खुद मोत की शैय्या पर सोया हुआ है और दूत को विवाह का प्रस्ताव लेकर राजा राखडसिंह के पास भेजता है । यहाँ उसके चरित्र की

दुर्बलता दिखाई देती है । अपनी इच्छापूर्ति के लिए वह कोई भी लड़की चाहे कितनी भी छोटी क्यों न हो, उसे पत्नी बनाता है और लड़की के पिता को धन की लालच भी देता है । इस तरह राजा निर्बलसिंह एक ऐसा दुर्बल चरित्र है, जो समकालीन विलासिता के परिवेश का पर्दाफाश करता है ।

➯ *जोगी प्रपंचगिरि :*

जोगी प्रपंचगिरि जिसका असली नाम जालमसिंह है । यह राजा राखडसिंह के राज्य में चोरी तथा डाके डालने का काम करता था । पुलिस से बचने के लिए जालमसिंह ने सन्यासी का भेस बदला और अपना नाम जोगी प्रपंचगिरि रख लिया । साधू के भेस में रहनेवाला जोगी प्रपंचगिरि आज भी चोरी तथा डाके डालने का काम करता है । आश्रम की आड में वह लड़कियाँ सप्लाई करने का काम भी करता है । आज तक अपनी कुशल बुद्धि के कारण पुलिस को धोखा देने में वह सफल हुआ है । जोगी प्रपंचगिरि – सामन्ती प्रथा में धर्म के साथ मिलकर भोले भारतीय मानस को डगनेवालों में एक मिसाल है । धर्म की आड़ में धोखा धडी, बेईमानी, नाइन्साफी, पाखंड और व्यभिचार खुले तौर पर होते है । इस बात की ओर संकेत देते हुए परसाईजी ने जोगी प्रपंचगिरि के चरित्र का निर्माण किया है । इस प्रकार जोगी प्रपंचगिरि के माध्यम से परसाईजी ने उन सारे ढोंगी एवं तांत्रिको, पाखण्डी साधुओ और तथाकथित संतो के मुखौटे को हटाकर उनके काले सत्य को उजागर किया है ।

➯ *मुख्य अमात्य :*

मुख्य अमात्य गोबरधन बाबू के चरित्र से आज के किसी भी मुख्यमंत्री का चरित्र मेल खाता है । ये रात–दिन राजनीतिक कुचक्रों में रत है । जनता के दुःख दर्दो से इन्हें कोई मतलब नहीं । इनका अंतिम उद्देश्य कुर्सी पर जमे रहना है । भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, अफसरों की लेटलतीफी इनकी निगाह में शासन की शोभाएँ है और गुप्तचर विभाग का काम राजनैतिक विरोधियों के

पीछे लगे रहना है । यह राजा राखडसिंह का मुख्य अमात्य है, फिर भी स्वयं राज करता है और सभी निर्णय लेते हुए राजा राखडसिंह का भी राजा है । रानी नागफनी का विवाह कुँअर अस्तभान के साथ कराने में उसका मुख्य हाथ था । वह अपने प्रतिस्पर्धी भैयासाब के जीव को काबू में करके सत्ता को अपने ही हाथ में रखता है । यहाँ उसकी कुशल राजनीति का पता चलता है । सारांशतः मुख्य अमात्य का चरित्र सत्ता का लोभी, कुर्सी प्रेमी, कपटी और धूर्त राजकारणी के रूप में उभरता है ।

➯ *भैयासाब :*

भैयासाब राजा राखडसिंह के राज्य में मुख्य अमात्य के साथ अमात्य का काम करता है । वह खुद मुख्य अमात्य बनने की इच्छा रखता है । इसलिए वह मुख्य अमात्य के दल में रहकर उसीके खिलाफ अपना मोर्चा बनाता है । वह मुख्य अमात्य को ही अपना राजकीय शत्रु समझता है । उनके जीव को दीमक का प्रतीक बताया है जो मुख्य अमात्य की कुर्सी के पैरों में छुपकर बैठा है और धीरे-धीरे उसे कतरकर नष्ट कर रहा है । भैयासाब का पात्र उन राजनेताओं का रूप है, जो अपने आपको समाज सेवक समझते है और समाज सेवा के नाम पर एशो आराम की जिन्दगी जीते हैं । उन्हें भाषण देने का बड़ा शौख है । अनाथाश्रम के उद्घाटन भाषण में उनके व्यक्तित्व की झलक साफ दिखाई देती है, – ''आपने बड़ी सुंदर संस्था का निर्माण किया है । मुझे विश्वास हैं कि आप इसे इस प्रकार चलायेंगे कि हमारे बच्चे इसे देखें तो उनका मन भी यहाँ रहने का हो जाय ।....... मैंने एक दिन एक अच्छा विधवाश्रम देखा तो मेरा मन वहाँ रहने को होने लगा ।''[६२] इस कथन से भैयासाब की ओछी बुद्धि और विकृत मानसिकता का स्पष्ट आभास होता है । इस तरह भैया साब का चरित्र कुर्सी प्रेमी एवं जनता को लूटनेवाले पात्र के रूप में परसाईजीने उभारा है ।

उपर्युक्त सभी गौण पात्र प्रस्तुत उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी' के है । इन पात्रों के द्वारा परसाईजीने किसी न किसी विडम्बना का चित्र अंकित किया है, जो वर्तमान युग में देखने को मिलती है । आलेखित मुख्य एवं गौण सभी पात्र के द्वारा आलोच्य उपन्यास की कहानी अत्यन्त रोचक एवं रसीली बन पायी है । सम्पूर्ण उपन्यास पाठक को अपनी ओर खींचता है और उसके पात्रों के माध्यम से पाठक को वर्तमान परिस्थिति का चितार दृष्टिगोचर होता है । संक्षेप में 'रानी नागफनी की कहानी' के चरित्र भले ही परसाईजीने काल्पनिक बनाये है, परन्तु उन चरित्रों के द्वारा जो वास्तविक यथार्थ का दर्शन कराया है, वह बेनमून है । अतः यह उपन्यास चरित्र की दृष्टि से सफल कहा जा सकता है ।

शिल्प :

साहित्य की प्रत्येक विधा में शिल्प तत्त्व महत्त्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि शिल्प में ही साहित्यकार की भाषाशैली की चर्चा की जाती है । साहित्यकार अपने हृदय में पड़े हुए उत्कृष्ट भावों को, उत्कृष्ट माध्यम के द्वारा व्यक्त करता है, तब उसकी रचना सर्वश्रेष्ठ बन जाती है । अभिव्यक्ति के इन उत्कृष्ट माध्यमों में प्रमुखतः भाषा, शीर्षक, संवाद, शैली आदि बहुत से तत्त्व है, जिनके द्वारा साहित्यकार अपनी रचना का शिल्प सँवारता है । परसाईजी का आलोच्य उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी' के शिल्प–सौन्दर्य को देखा जाय ।

➢ *भाषा :*

परसाईजी ने अपनी भाषा को आममानव की भाषा के रूप में अपनाया है । इसलिए उनकी भाषा में न ही बाहरी कलात्मकता है और न ही कोई शास्त्रीय रूप रंग । बल्कि उन्होंने समाज की सामान्य जनता को ध्यान में रखत हुए उनकी समस्याओं का वर्णन करने हेतु अर्थपूर्ण वाक्योंवाली भाषा का प्रयोग किया है, जिसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति के हृदय में हलचल मच जाय ।

उनके लिए भाषा साध्य नहीं, बल्कि एक साधन है, जो मानव मानव के बीच संवाद का माध्यम बनता है । 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास की भाषा के सम्बन्ध में डॉ. नन्दलाल कल्ला का कहना है, – 'रानी नागफनी की कहानी' का भाषायी तेवर अनूठा और झकझोरनेवाला है । व्यंग्य–उपन्यास का कथ्य जितना विषय वैविध्य से पूर्ण होता है । उसमें जितना फैलाव तथा विस्तार होता है, उतना ही घनत्व भी होता है । विषय–वस्तु का व्यास तथा शिल्प का समास दोनों ही व्यंग्य को धारदार तथा तेजाबी बना देते हैं । इन दोनों का सफल निर्वहन ही व्यंग्य उपन्यास की कसौटी होती है । श्री परसाई तो सिद्धहस्त व्यंग्यकार है । व्यंग्य उनके लेखन के रेशे–रेशे में भरा रहता है । प्रत्येक शब्द के पारे–पारे में व्यंग्य का तेजाब छलकता है । श्री परसाई केवल धमाका करके ही पाठकों को चमत्कृत नहीं करते, बल्कि बारुदी गंध से सरोबारकर देते है । यही कारण है कि उनकी प्रत्येक व्यंग्य–रचना में गंभीरता और तीखापन, राजकीय दंभ, शंकर का शिवत्व तो कभी रुद्र का अट्टहास भी महसूसा जा सकता है । वे कागज पर लिखे जाने के अर्थ को उसकी सम्पूर्ण सत्ता के साथ समझते है । वे विकृतियों तथा विद्रूपताओं के विरुद्ध विषवमन धर्म रचनाकार है । यह एक उत्कृष्ट फैंटेसी है ।"[६३]

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा ठेठ आम आदमी के बोलचाल की भाषा है । न इसमे प्रयुक्त शब्दों में दुरुहता है, न विचारों में । पात्रों का वातार्लाप उनके स्तरानुकूल है । वे बातचीत में उसी स्तर के शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिससे वे सम्बन्धित हैं । सभी पात्र अपने अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं । पूरे कथानक में परसाईजी की भाषा पात्रानुकूल बन पायी है । देखिए कुछ पात्रों के उदाहरण, – नागफनी का सिसकते हुए यह कहना कि, – "कैसे धीरज रखूँ ? तू ही बता सखि । आज पाँचवी बार मेरा प्रेम टूटा है । कितने आघात मेरे हृदय ने सहे है अब तो मैं प्रेम करते–करते थक गयी हूँ ।"[६४] इस कथन में जहाँ एक ओर उसकी प्रेमाकुलता दिखाई देती है, तो दूसरी ओर प्रेम के प्रति उसके व्यावसायिक दृष्टिकोण का पता चलता है । ऐसे ही जोगी

प्रपंचगिरि का यह कहना कि, – "भगा क्यों नहीं लाते उस हरामजादी को ?"[६५] – उसकी लंपटता को बता देता है । वास्तव में पात्रानुकूल भाषा के द्वारा ही पात्रों का वर्गीय चरित्र उजागर हुआ है । पूरे उपन्यास की भाषा स्वाभाविक है और उसमें रवानी है, पढ़ते हुए लगता है जैसे आपस में बातचीत कर रहे हों ।

आलोच्य उपन्यास में व्यंग्य भाषा का भी अदभुत चमत्कार देखने को मिलता है । इसमें पात्रों की चारित्रिक असंगतियों को उजागर करने के लिए विपरीत ध्वन्यपूर्वक शब्दों का प्रयोग किया गया है । जैसे, – 'प्रेम में फेल होनेवाले जल – समाधि लेते हैं । साधारण आदमी तो चुल्लुभर पानी में डूबकर मर जाता है, पर आप जैसे महान व्यक्ति को अधिक पानी चाहिए ।"[६६] कहीं कहीं परसाईजीने महानता सूचक शब्द भी अर्थापकर्षक रूप में प्रयुक्त किये है । जैसे, "आप भी पाँचवे प्रेम में विफल होने से प्राण त्यागने लगी आप जैसी महान नारी को तो हजार प्रेम टूटने पर भी ग्लानि का अनुभव नहीं होना चाहिए ।"[६७] परसाईजी ने इस उपन्यास की भाषा में कही–कही परम्परागत अलंकारो का भी यथोचित प्रयोग करके व्यंग्य सम्प्रेषणीयता को विस्तार दिया है । जैसे, – "पानी के गिरने से जलकण हवा में तैरते रहते हैं और धुँआ सरीखा छाया रहता है । उसे देखकर ऐसा लगता है, मानों किसी विधानसभा के सदस्य एक दूसरे पर धूल फेंक रहें हो ।"[६८] ऐसे ही "दोनों सखियाँ बड़ी देर तक सावन भादो के रूप रोती रही ।"[६९]

रानी नागफनी की कहानी की भाषा में वाक्य रचना भी सरल है । कहीं–कहीं पर लघुवाक्यो का प्रयोग स्थिति को सशक्त रूप से उद्घाटित करता है । जैसे "प्रभात का सुहावना समय है । अस्तभान अपने कमरे में बैठा है । पास ही मुफतलाल है । अस्तभान की गोद में चार–पाँच अखबार पड़े है । वह एक अखबार उठाता है और उसमे छपे सब नाम पढ़ता है । फिर आह भरकर रख देता है । तब दूसरा अखबार उठाता है । उसमें छपे हुए

नाम पढ़कर एक आह के साथ उसे भी रख देता है । इस प्रकार वह सब अखबार पढ़कर रख देता है और खिडकी के बाहर देखने लगता है । मुफतलाल छत पर टकटकी लगाये बैठा है ।"[७०] इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास की भाषा वैविध्यसभर विशेषताओं को लिए हुए है ।

➢ *शीर्षक :*

किसी भी कृति का शीर्षक आकर्षक एवं रोचक होना चाहिए, जिससे उस रचना को पढ़ने के लिए पाठक लालायित हो जाए । प्रस्तुत उपन्यास का शीर्षक परसाईजीने इंशा अल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' के आधार पर दिया है, क्योंकि इसी कहानी को पढ़ने के बाद परसाईजी ने 'रानी नागफनी की कहानी' नामक फैंटेसी लिखनी चाही थी । अतः इसका शीर्षक 'रानी केतकी की कहानी' के आधार पर दिया गया है, अपितु दोनों के कथानक में आमूल परिवर्तन है । प्रस्तुत उपन्यास का शीर्षक रोचक होने के साथ ही साथ सार्थक भी बन पड़ा है ।

➢ *संवाद :*

संवाद के द्वारा रचना की भाषा एवं कथानक में रसता एवं रोचकता आती है । जिस रचना में पाठक को आकर्षित करनेवाले संवाद होते है, वह रचना स्वयमेव ही सफल बन जाती है । 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास के शिल्प का सर्वाधिक आकर्षित करनेवाला तत्त्व उसकी संवाद-योजना है । अत्यन्त छोटे-छोटे और चुस्त संवाद कहीं-कहीं किसी नाटक के और कहीं - कहीं तो किसी खेल जैसे लगते हैं । कुछ उदाहरण देखिए, -

"दस्त साफ होता है ?"
"जी हाँ !"
"भूख कैसी लगती है ?"
"मामूली !"
"नींद आती है ?"
"नहीं !"...........

"तो डोक्टर साहब, क्या हर बीमारी में पेनिसिलिन दिया जायेगा ?"

"हाँ"

"सर्दी बुखार में ?"

"पेनिसिलिन ।"

"पेट की पीड़ा में ?"

"पेनिसिलिन ।"

"क्षय में ?"

"पेनिसिलिन ।"

"भाई भाई में अनबन हो जाए तो ?"

"दोनों को पेनिसिलिन देना चाहिए ।"[७१]

प्रस्तुत उपन्यास के पूरे कथानक के संवाद बड़े रोचक एवं रसपूर्ण है । पढ़ते हुए पाठक मन ही मन प्रसन्न हो जाता है । इसकी संवाद–योजना इतनी सफल है कि पाठक को एक ही बार में यह उपन्यास पूर्ण करने की इच्छा हो जाती है । परसाईजी ने प्रत्येक पात्र एवं घटना के अनुरूप संवाद–योजना का निर्वाह किया है ।

➢ *शैली :*

प्रत्येक रचना के लिए भाषा की तरह शैली भी बड़ा महत्त्व रखती है । रचनाकार किस शैली के द्वारा अपनी भाषा को अभिव्यक्ति देता है, उस पर उसकी रचना की सफलता निर्भर करती है । जहां शैली उदात्त होती है, वहाँ उस रचना की प्रत्येक बात उत्कृष्ट बन जाती है । अतः शैली बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है । आलोच्य उपन्यास में भाषा की तरह शैली को देखा जाय, तो परसाईजी ने इस उपन्यास को फैंटेसी शैली में लिखा है । परसाईजी स्वयं कहते है, "यह एक व्यंग्य कथा है, फैंटेसी के माध्यम से मैंने आज की वास्तविकता के कुछ पहलुओं की आलोचना की है । फैंटेसी का माध्यम बहुत सुविधाओं के कारण चुना है ।"[७२] परसाईजी ने इस शैली के

द्वारा आज की खोखली शिक्षा पद्धति, निकम्मी शिक्षण संस्थाएँ, भ्रष्ट अध्यापकों के अनैतिक आचरण विकृत पूंजीवादी व्यवस्था, सांस्कृतिक विघटन आदि सभी पहलुओं पर तीखा और करारा प्रहार किया है । फैंटेसी शैली के साथ–साथ परसाईजीने इस उपन्यास में किस्सागोई शैली का भी प्रयोग किया है । अर्थात् कहानी कहने के ढंग में लेखक ने यह उपन्यास लिखा है । उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे परसाईजी कोई प्राचीन युग की कहानी कह रहे है । इसी कारण इस उपन्यास की कथा में जबरदस्त रोचकता है, सारी घटनाएँ चित्रमय है । इस कृति को पढ़ते समय ऐसा महसूस होता है जैसे 'किस्सा तोता मैना' पढ़ रहे हों । देखिए जैसे लेखक ने प्रारंभ में लिखा है, – ''किसी राजा का एक बेटा था, जिसे लोग अस्तभान नाम से पुकारते थे ।'' उसी प्रकार लेखक ने अंत में लिखा है, – ''सब सुख से रहने लगे ।'' ये वाक्य कहानी कहने की शैली में लिखे गये हैं । प्रस्तुत उपन्यास में कई स्थान पर इस शैली के दर्शन होते है । इस प्रकार यह उपन्यास विभिन्न शैलियों से रचा गया सफल उपन्यास है ।

सारांशतः 'रानी नागफनी की कहानी' एक ऐसा लघु उपन्यास है, जो कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से एकदम अनूठा है । कथ्य में नग्न यथार्थता है, जिसे प्रस्तुत करने के लिए परसाईजी ने फैंटेसी शैली अपनायी है । यहाँ फैंटेसी लोककथा के माध्यम से सामंतीयुग की है, जिसमें वर्तमानकाल के पात्र जी रहे हैं, वर्तमानकाल के अभिशाप अपनी पूरी उग्रता के साथ क्रियाशील है । लोककथा में से वर्तमान प्रस्तुत करना कोई नयी बात नहीं है, लेकिन यह नयी बात इस उपन्यास की कथन शैली के कारण बन जाती है । यह अभिव्यक्ति व्यंग्यात्मक है । वास्तव में व्यंग्यात्मकता कथा–प्रसंगो में भी भरपूर है । कथ्य और कथन दोनों की व्यंग्यात्मकता का ताना–बाना यहाँ ऐसी बुनावट लिये हुए हैं, जैसी बुनावट इसके पूर्व भारतेन्दु हरिश्चंद्र के व्यंग्य नाटक 'अंधेर नगरी' में दिखाई दी थी । संपूर्ण रूप से देखा जाय, तो परसाईजी का 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास जहाँ कथानक की दृष्टि से सरल है, वही

चरित्र की दृष्टि से सार्थक है और साथ ही साथ शिल्प की दृष्टि से सफल एवं सुंदर भी है ।

३. रिटायर्ड भगवान की कथा (अपूर्ण) :

'रिटायर्ड भगवान की कथा' परसाईजी का एक अपूर्ण उपन्यास है । इसके केवल चार ही अंक प्रकाशित हुए हैं । 'रिटायर्ड भगवान की कथा' शीर्षक से परसाईजी ने एक लम्बी फन्तासी लिखने की योजना बनायी थी । इसका बहुत ही विस्तृत आयाम लेखक की कल्पना में था । वे विश्व-राजनीति, शीतयुद्ध, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ नवसाम्राज्यवाद आदि कई विषयों को लेकर इस कृति की रचना करना चाहते थे । परसाईजीने इस उपन्यास का प्रारंभ सन १९७९ में 'कथायात्रा' नामक मासिक पत्रिका में छपने के लिए किया था, पर संयोग ऐसे घटे कि वह पत्रिका छठवे अंक तक पहुँचते ही बन्द हो गयी । यही अपूर्ण उपन्यास के रूप में रचनावली के छठे भाग में इसके चार अंक या अध्याय प्रकाशित हैं । इन अध्यायों के नाम इस प्रकार है, (१) कुछ भूमिका जैसा (२) भगवान तरह-तरह के (३) भगवान का रिटायर होना (४) भगवान का एक्सटेन्शन ।

प्रथम अध्याय 'कुछ भूमिका जैसा' में परसाईजी ने साहित्य, साहित्यकार, लेखक कवि इत्यादि पर करारा व्यंग्य किया है । प्रारंभ में उन्होंने लिखा है, - ''यह जो कथा मैं लिखना शुरु कर रहा हूँ और पूरी करने की कोशिश भी करूँगा, इसे उपन्यास मानने के लिए आचार्यो को परिभाषा बदलनी पड़ेगी । और वे परिभाषा बदलेंगे नहीं, क्योंकि उन बड़े-बड़े आचार्यो को ऊँची-ऊँची तनख्वाहें इसीलिए मिलती है कि वे चीजों की परिभाषाएँ न बदलने दे । वे आचार्य चाहे साहित्य के हो, ईतिहास के, अर्थशास्त्र के, समाज शास्त्र के, न्यायशास्त्र के, जिन्दगी की किसी चीज की परिभाषा नहीं बदलने देने के लिए दिमाग तोड़ मेहनत करते हैं ।''[७३] संपूर्ण अंक में समकालीन साहित्यकार का साहित्य कितना निम्नकोटि का हो गया है, इसका संकेत देते हुए परसाईजी ने

व्यंग्य से प्रहार किये हैं । भूमिका के रूप में उन्होंने साहित्य की वास्तविक परिस्थिति का विवरण प्रस्तुत किया है । इसी कारण इस अध्याय को उन्होंने 'कुछ भूमिका जैसा' शीर्षक दिया है । कवि और कवयित्री की लेखनी के भाव कितने हीन हो गये हैं, आचार्य एवं विद्वान व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए कैसे-कैसे षडयंत्र रचते हैं और साहित्यकार अपनी महत्त्वाकांक्षाओ की पूर्ति हेतु क्या-क्या कुकर्म करते हैं, इसके संकेत परसाईजी इस प्रथम अंक में देते हैं । लेखक की भाषा बड़ी ही चोटदार एवं व्यंग्यात्मक है । पूरा अंक बड़ी ही रोचक शैली में लिखा गया है । इस अंक में परसाईजीने साहित्यकारों एवं लेखक के आत्म विश्वास की मनोवृत्ति पर लिखा है – "आत्मविश्वास कई तरह का होता है धन का, बल का, विधा का, पर सबसे ऊँचा आत्मविश्वास मूर्खता का होता है । मूर्खता के भी दर्जे हैं । अपढ़ता मूर्खता नहीं है । सबसे बड़ी मूर्खता है – यह विश्वास लबालब भरे रहना कि लोग हमें वही मान रहे हैं, जो हम उन्हे मनवाना चाहते है । जैसे, है फूहड़ मगर अपने को बता रहे हैं फक्कड और विश्वास कर रहे हैं कि लोग हमें फक्कड मानते हैं । यह विश्वास परम मूर्खता है ।"[७४] इस प्रकार यह प्रारंभिक अध्याय संक्षिप्त होते हुए भी सचोट एवं सरस है ।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक 'भगवान तरह तरह के' है । इस अध्याय में परसाईजी ने धर्म के विभिन्न संप्रदायो की बात कही है और इसके द्वारा भगवान के कई रूपो की विवेचना की है । उन्होंने ब्रह्मवादी, रहस्यवादी, प्रेममार्गी, भक्तिमार्गी, मुल्ला के अल्ला मियाँ, पादरी के भगवान, महर्षि अरविन्द और रजनीश की बाते कहते हुए उन पर व्यंग्य किया है । सबके भगवान अलग-अलग होते है तद्नुसार भगवान भी विभिन्न प्रकार के हैं । ब्रह्मवादी का ब्रह्म आकारहीन गुणहीन है, रहस्यवादी और प्रेममार्गी की आत्मा अपनें प्रियत्तम रूपी भगवान से मिलने के लिए तड़प रही है । भक्तिमार्गी का भगवान साकार है । मुल्ला का खुदा सबसे बड़ा और हज के दिन जन्नत देनेवाला है । पादरी भगवान को नहीं, भगवान के बेटे को जानते है ।

अरविन्द 'अतिमानस' की स्थिति पर पहुँच गये थे और उन्हें भगवान की अनुभूति हो चुकी थी । ऐसे ही रजनीश जो केवल एक सामान्य मानव है, उन्होंने स्वयं को ही भगवान बना दिया भगवान रजनीश । इस चर्चा के साथ परसाईजी ने किसी मेहरबाबा की बात कहते हुए चमत्कार एवं फरेब की भी कटु आलोचना की है । परसाईजी के अनुसार रजनीश की प्रसिद्धि के मूल में उनकी बौद्धिकता, भाषा पर असाधारण अधिकार, तार्किकता, लटके, झटके एवं नाटकीयता कारणभूत है, जिससे वे इतनी महानता पा गये है । अध्याय के अंत में उन्होंने मोरारजी देसाई पर भी व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किया है कि उन्हें देखते ही भगवान की मृत्यु हो जाती है, क्योंकि वे परम पवित्र मनुष्य है । इस तरह परसाईजी ने इस अंक में हमारे समाज में लोगों की मान्यतायें, विश्वास, षडयंत्र, मनोवृत्तियाँ, धर्म के प्रति लोगों की भावनाये कैसी है, उन सबका भंडा फोड़ा है । समाज के प्रत्येक व्यक्ति के मन में भगवान का कौन सा रूप है, वह क्या है और कैसा है, इसकी कटु आलोचना करते हुए परसाईजी ने स्वयं के जीवन में आये हुए दुःख एवं पीडा तथा अपनी नास्तिकता का भी संकेत दिया है । यह अध्याय परसाईजी की व्यंग्यात्मकशैली का उत्तम उदाहरण है । समकालीन समाज और धर्म की स्थिति पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते है, – ''भक्त और भगवान का अजब रिश्ता है । जितनी कथाएँ हमें बतायी जाती है, उनमें ज्यादा उन पापियों की हैं, जो जीवनभर पाप करते रहे, मगर मरते वक्त उनके मुख से 'एक्सीडेण्ड' से भगवान का नाम निकल गया, तो भगवान ने उन्हें स्वर्ग दे दिया । जिन्दगी भक्ति में बरबाद करनेवाले भक्त टापते रह गये । वेश्या और डाकू तो एक बार नाम लेकर स्वयं सुख लूटते है और नारद जैसे भक्त को एक औरत तक नहीं मिलती । क्या भगवान पापी, व्यभिचारी, लुटेरे, हत्यारे से डरते है या चापलूसी पसन्द हैं । क्या वह हमारे नेताओं की तरह चमचों की अवहेलना करते है और विरोधी को पटाते हैं । इन कथाओं से जो शिक्षा मिलती है, वह यह है कि जीवनभर खूब पाप और मौज करो, बस मरते वक्त भगवान

का नाम ले लो । ये सब कथाएँ दुनिया में अत्याचार, पाप और अनाचार को प्रोत्साहन देने के लिए चलायी गयी है । सबसे ज्यादा अनैतिकता धार्मिक विश्वास ही फैलाते है ।''[७५] इस प्रकार यह अध्याय बहुत ही प्रभावक एवं रसपूर्ण है ।

इस उपन्यास का तीसरा अध्याय 'भगवान का रिटायर होना' नाम से लिखा गया है । इस अध्याय में परसाईजी ने उस व्यक्ति की बात कही है, जिसने भगवान को देखा हैं, और जो भगवान के साथ रहा भी है । उसका नाम हरसेवकराम 'सेवक' है, जो लेखक की कल्पना का ही एक पात्र है, जिसके द्वारा परसाईजी ने अपनी काल्पनिक कथा को लेखनी प्रदान की है । सेवकजी के पात्र द्वारा परसाईजी ने आधुनिक मानव की मनोवृत्ति एवं नैतिकता पर कटु प्रहार किये है । ऐसे ही जो धार्मिक व्यक्ति है, उनके कार्य कितने पतित होते हैं, जो भगवान के नाम पर क्या-क्या करते हैं, उसका भी विवरण है । इस अध्याय में वकिल, पुलिस आदि पर भी परसाईजी ने व्यंग्य कसा है । उसी प्रकार इस युग में जो धनवान महाजन हैं, वही खुदा का नूर या भगवान का रूप है, ऐसा लेखक स्पष्ट करना चाहते है । सेवकजी और भगवान की काल्पनिक मुलाकात एवं काल्पनिक बातचीत के द्वारा परसाईजी यह प्रकट करना चाहते है कि आज के इस अत्याधुनिक युग में भगवान का न किसी को डर है और न ही आज के मनुष्य पर भगवान का कोई प्रभाव है न ही आज का मनुष्य कर्म या कर्मफल के चक्कर में पड़ता है । आज सर्वत्र बेईमानी एवं षडयंत्र का ही बोलबाला है और उसीको भगवान माना जाता है । परसाईजी तो यहाँ तक कहते है कि मनुष्य का जन्म भी एक एक्सीडेण्ट है । दुनिया में आदमी इसी एक्सीडेण्ट से सुखी और दुखी होता है, कर्म से नहीं । इस अध्याय में लेखक ने यह बताना चाहा है कि आज के इस बुराई से भरे युग में भगवान भी रिटायर हो गये हैं, क्योंकि उनका भगवान के पद पर रहने से मनुष्य का बहुत बड़ा नुकशान होता है । परसाईजी के शब्दों में देखिए – ''भगवान बोले – 'अब चाहे जो हो, हम तो रिटायर हो चुके ।' मैंने कहा,

– 'पभु आप यह क्या कह रहे हैं । किसने आपको रिटायर किया ।' भगवान बोले – 'हम स्वयं अपने को नियुक्त करते है और स्वयं रिटायर होते हैं । बात यह है कि हमारे बड़े–बड़े भक्तगण आये, राजनेता आये, बड़े–बड़े व्यापारी आये, शासकदलों के लोग आये, मठाधीश आये, महन्त आये, कई बड़े बड़े कारखानेवाले आये, कहने लगे आपके होने से हमारे मन में कभी–कभी सही ओर गलत, नैतिक और अनैतिक, उचित और अनुचित का हल्का–सा खटका होता है । हम मानते हैं, यह हमारे दीर्घकालीन संस्कारो का नतीजा है, पर इस दुविधा से हमारे काम में बाधा पहुँचती हैं । आप रिटायर हो जायें, तो हमें बड़ा सुभीता होगा... ।''[७६]

इसी प्रकार अध्याय के अंत में परसाईजी ने विभिन्न धर्मगुरुओं जैसे पोप, इमाम, आगाखाँ, शंकराचार्य इत्यादि का उल्लेख करके भगवान के लिए रिटायर हो जाने की बात को ओर अधिक जोर देकर स्पष्ट किया है, जिससे भगवान रिटायर होने के लिए तैयार हो जाते है और अपना चार्ज वे मानव की मल्टीनेशनल डिविनिटी कम्पनी को देने के लिए सोचते हैं, पर सेवकजी के सूचित करने से भगवान अपना निर्णय बदलकर पाँच साल के लिए एक्सटेन्शन लेने के लिए तैयार हो जाते हैं । यहाँ यह अध्याय पूर्ण होता है । इस अध्याय में काल्पनिक वार्तालाप होते हुए भी आज के युग का वर्तमान प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, जिसमें यथार्थ के दर्शन होते है । सर्वत्र लूट बेईमानी, षडयंत्र और पाखण्ड ही है । आज का मानव भगवान का नहीं, इन सब बातों का गुलाम बन गया हैं, कहीं पर भी सत्य या भगवान जैसी चीज के दर्शन नहीं हो पाते । बुरा कर्म करनेवाला धनवैभव को भुगत रहा है और सच्चा एवं ईमानदार व्यक्ति सबसे ज्यादा दुःखी है । भगवान के धर्म–स्थानों में कहीं पर भी सुख की झलक तक देखने को नहीं मिलती । जो करोडपति बाप के यहाँ पैदा होता है, सुखी है और जो गरीब बाप के यहाँ जन्म लेता हे, उसकी जिन्दगी अपने आप दुःखी हो जाती है । कहीं पर अधिकारो के लिए विद्रोह किया जाता है, तो उसे धर्मविरोधी या नास्तिक माना जाता है । इस तरह पूरे

अध्याय में लेखक ने व्यंग्यपूर्ण कलम चलाकर प्रभावशाली भाषा में सेवकजी और भगवान की काल्पनिक मुलाकात को और वर्तमान समाज की विडम्बनाओं को बड़े ही रोचक ढंग से उजागर किया है ।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक 'भगवान का एकसटेन्शन' है । इस अध्याय में परसाईजी ने संकेत दिया है कि भगवान फिर पाँच साल के लिए एक्सटेन्शन ले लेते हैं और घोष स्वर में चारो तरफ अपने पदत्याग न करने के निर्णय को सुनाते हैं । इसीके साथ इस अध्याय में परसाईजी ने बड़े-बड़े मंदिरो के ट्रस्टी एवं पूजारी धन के लिए कितने बड़े कुकर्म करते है, यहाँ तक कि भगवान को भी अपवित्र करने का कार्य करते है, इसका संकेत दिया है । धर्म और विज्ञान का मेलजोल करके परसाईजीने धार्मिक परिस्थिति में विज्ञान की दखलअंदाजी पर व्यंग्य किया है कि धर्म के मामले विज्ञान और बुद्धि से परे होते हैं । विज्ञान और बौद्धिक तर्क के स्पर्श से धर्म अशुद्ध हो जाता है । ऐसे ही धार्मिक बातों में चमत्कार, पाखण्ड, ढोंग, जैसे मुट्ठी में से भभूत निकालना, पानी पर चलना जैसी कई झूठी बातों पर भी व्यंग्य करके प्रहार किया है । ऐसे ही आज के युग में जो भ्रष्टाचार एवं महंगाई फैल गयी है, उसकी स्थिति का संकेत देते हुए परसाईजी ने यहाँ तक कहा है कि इस भ्रष्टाचार एवं मंहगाई को भगवान भी दूर नहीं कर सकते । आज के युग के व्यापारियों एवं कालाबाजारियों के सामने भगवान की भी एक नहीं चल सकती इसका संकेत लेखक ने दिया है । परसाईजी ने लिखा है, ''मेंने भगवान की तरफ देखा । उनका चेहरा तमतमा आया था । उन्होंने कहा, 'तु मेरे आदेश का पालन नहीं करेगा ।' व्यापारी ने हाथ जोडकर कहा, 'करुणानिधान, आपके हर आदेश का पालन करुँगा, पर आप व्यापार में दखल मत दो । आपने हम लोगों पर कृपा करना छोड दिया प्रभु । चार सालों से इधर अकाल नहीं डाला आपने । हम हर साल गेहुँ, चावल का स्टाक करते है ओर आप पानी बरसा देते है । हमारा मुनाफा डूब जाता है । हमारा खयाल रखा तो हम आपका खयाल करे ।''[७७] इस अध्याय के अंत में परसाईजी ने मठ के महन्त की

पापलीला का संकेत देकर धर्म में व्यभिचार पर व्यंग्य किया है । इस प्रसंग से परसाईजी यह कहना चाहते है कि आज के युग में पुलिस विभाग और अन्य वर्ग में इन जैसे महन्तों का ही प्रभाव चलता है, क्योंकि इनके पास से इन लोगों को पैसा मिलता है । भगवान का प्रभाव नहीं चलता, क्योंकि भगवान के पास से इन धनलोलुप व्यक्तियों को कुछ भी नहीं प्राप्त होता । परिणामतः समाज मे अनाचार एवं अनैतिकता को बढावा मिलता है । यहाँ पर यह अध्याय समाप्त होता है । इस अध्याय के द्वारा परसाईजी ने वर्तमान समाज मे धर्म एवं भगवान की स्थिति केसी है, उसका संकेत बड़े ही प्रभावशाली ढ़ंग से दिया है ।

इस प्रकार परसाईजी के इस उपन्यास के केवल चार ही अध्याय प्रकाशित हो पाये है, अन्य कुछ इस उपन्यास के संदर्भ में प्राप्त नहीं हो पाया है । यह परसाईजी का अपूर्ण उपन्यास है । निःसंदेह सत्य है कि यदि परसाईजी इस उपन्यास को पुर्ण करते, तो हिन्दी साहित्य को एक अमूल्य कृति प्राप्त होती और परसाईजी की श्रेष्ठतम कृतियों में इस उपन्यास की भी गणना होती । मगर यह हो नहीं पाया ओर परसाईजी इसे पूर्ण किये बिना ही इस असार संसार को छोड गये । आज परसाईजी के केवल तीन ही उपन्यास की गणना होती है, पर इस उपन्यास के चार अध्याय इतने प्रभावशाली एवं अदभुत है कि इसका विवरण यहाँ प्रस्तुत करना प्रासंगिक प्रतीत हुआ है । संक्षेप में कहे तो 'रिटायर्ड भगवान की कथा' उपन्यास यदि पूर्ण हो पाता, तो हिन्दी साहित्य भण्डार को अधिक समृद्ध बना पाता, इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं हैं ।

४. ज्वाला और जल :

'ज्वाला और जल' यह उपन्यास परसाईजी के युवाकाल की प्रारंभिक रचना में से एक है । संभवतः ५० वर्ष पहले यह कृति 'अमृत-पत्रिका' के दीपावली विशेषांक में छपी थी । बाद में इसकी मूल प्रत किसी को भी प्राप्त

नहीं हो सकी, अतः 'परसाई रचनावली' में भी इस कृति का प्रकाशन नहीं हो पाया । लेकिन कुछ समय पहले परसाईजी की मृत्योपरांत इसकी मूल प्रति जर्जरित अवस्था में ज्ञानपीठ प्रकाशन को मिली, जिसे उन्होंने सन् २००३ में प्रकाशित किया है । इसके प्रकाशित होने के मूल में परसाईजी के भांजे श्री प्रकाशचन्द्र दुबे और श्रीज्ञानरंजनीजी का बहुत बड़ा योगदान रहा है ओर इन्हीं के सौजन्य से यह कृति ज्ञानपीठ प्रकाशन को प्राप्त हो सकी ओर इस सुन्दर उपन्यासिका का प्रकाशन हो पाया । 'ज्वाला और जल' पुस्तक के प्रारंभ में 'प्रस्तुति' शीर्षक से भारतीय ज्ञानपीठ के निर्देशक श्री प्रभाकर श्रेत्रिय लिखते है – 'ज्वाला और जल' प्रख्यात व्यंग्यकार स्व. हरिशंकर परसाई की एक ऐसी उपन्यासिका है जो घृणा पर प्रेम की विजय को बड़ी आत्मीयता और सहजता से रेखांकित करती है । यह उपन्यासिका 'अमृत पत्रिका' के दीपावली विशेषांक में कभी छपी थी । मुद्रित प्रति में कहीं भी प्रकाशन वर्ष का उल्लेख नहीं है । परन्तु यह परसाई के युवाकाल की एक महत्त्वपूर्ण रचना प्रतीत होती है । जाने कैसे इसका प्रकाशन न तो किसी पुस्तक में हुआ ओर न परसाई की अन्य उपन्यासिका की तरह इसकी स्वतन्त्र पुस्तक ही छपी । यह उनकी ग्रन्थावली में भी नहीं है । ज्ञानपीठ को 'ज्वाला और जल' की प्रति जर्जर अवस्था में मिली थी, जिसका कुछ हिस्सा दीमक खा चुकी थी । पुरी उपन्यासिका में ऐसी आठ–दस पंक्तियाँ ही होंगी । अन्तराल को अनुमान से पढ़कर रिक्त स्थान की पूर्ति की गई है ... भारतीय ज्ञानपीठ को परसाई की इस सुन्दर उपन्यासिका को पहलीबार पुस्तकाकार प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता है । हिन्दी संसार को भी एक शीर्षस्थ लेखक की खो गई सुन्दर कृति की पुनः प्राप्ति का रोमांच होगा । ..... ।''[७८] 'ज्वाला और जल' उपन्यास के कथानक चरित्र एवं शिल्प को क्रमशः विस्तार से देखे –

कथानक :

उपन्यास के लिए कथानक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । क्योंकि इसके अभाव में उपन्यास का अस्तित्व ही नहीं बन पाता । कथानक जितना रसप्रद होगा, उतनी

ही उपन्यास पर उसकी मजबुत पकड़ होगी । जिस उपन्यास की कथा पाठक को जकड के रखती है, वही उपन्यास सफलता के उर्तुग शिखर को सर करता है । अतः उपन्यास के लिए उसका सफल कथानक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है ।

एक सामाजिक घटना को आधार बनाकर परसाईजी ने 'ज्वाला और जल' उपन्यास लिखा है । उपन्यास का मुख्य पात्र या नायक विनोद है, जो अब्दुल के नाम से पहचाना जाता है । दरअसल विनोद अपनी सही पहचान समाज से छूपाता फिरता है । वह एक संवेदनशील लड़का है । उसके घर का माहौल कुछ ऐसा है कि विनोद प्रतिशोध की मूर्ति बन जाता है । अपने शराबी पिता के हाथों से उसने अपनी माँ को पिटते देखा है । अपनी माँ को चुपचाप पिता के अत्याचार सहते देखा है, यहाँ तक कि उसकी माँ पर चरित्रहीनता का आक्षेप भी किया जाता है और ऐसे ही कष्ट सहते–सहते विनोद की माँ एक दिन आत्महत्या कर लेती है । विनोद माता की मृत्यु के कारण अपने पिता से नफरत करने लगता है ओर यहीं से उसके मन में प्रतिहिंसा का जन्म होता है । प्रतिहिंसा की ज्वाला हृदय में जलाये हुए वह घर से भाग जाता है । और शहर में आकार गुण्डागर्दी करने लगता है । वह अपना नाम अब्दुल रख लेता है, ताकि कोई उसे पहचान न ले । वह अपने पास एक छुरी रखता है, जिसे वह अपने पिता के हृदय में मारना चाहता है । पिता को मारकर वह अपनी माँ के साथ हुए अत्याचार का बदला लेना चाहता है । पर वकील साहब ओर उनकी माँ के संपर्क में आकर और उनके प्रभाव से वह अपने आपको बदलता है, घृणा का त्याग करता है और आगे चलकर सुषमा से प्रेम और प्रणय की वेदी पर 'प्रतिहिंसा की छुरी' को त्याग देता है तथा जीवन को एक नये ढंग से शुरु करता है । यहीं पर उपन्यास की कथा पूर्ण होती है ।

प्रस्तुत उपन्यास मे कथा के सूत्रधार वकील साहब श्री नरेन्द्रकुमार वर्मा है । वे स्वयं विनोद की कथा सुनाते है । ''में'' की शैली में उन्होंने फ्लेशबैक

से विनोद की पूरी कथा का वर्णन किया है । विनोद से हुई उनकी प्रथम मुलाकात, उसका उनके घर आना–जाना, परिवार से अपनत्व बढ़ना, अंत में बुराई छोडकर अच्छा इन्सान बनना इत्यादि सभी घटनाओं का वर्णन वकील साहब के द्वारा परसाईजी ने बड़े ही चित्रात्मक ढंग से किया है । उपन्यास के प्रारंभ में वकील साहब विनोद की बात इस प्रकार करते हैं – ''वह साथ था, तो जिन्दगी में एक अजब तनाव था, अब सब और शैथिल्य । उसे मित्र ही कहा जा सकता है, यद्यपि पहले उससे मुझे धृणा ही हुई थी, फिर उससे भय भी लगा, फिर वह मेरा छोटाभाई हो गया ओर अन्त में एक शिशु की तरह उसने अपने जीवन को मेरे सुपुर्द कर दिया । मन में एक चमक छोड़कर वह चला गया । अनेक की भीड में वह एक मुझे अभी याद है ।''[७६] इस कथन में उपन्यास के संपूर्ण घटनाओं का संकेत है । विनोद का किस प्रकार वकील साहब के जीवन में आना और आकर उनका अपना बन जाना, सभी घटनायें क्रमशः घटती है । वकील साहब अपनी माँ एवं परिवार के साथ रहते है । विनोद का उनके परिवार से परिचय होता है, बाद में अपनापन बढ़ता है ओर विनोद के जीवन की सच्ची कहानी का पता चलता है, फिर सुषमा से प्यार और अन्त में प्यार के सामने प्रतिहिंसा का पराजय होता है । ये सभी घटनायें इतनी त्वरित गति से घटती है कि उपन्यास एक ही बैठक में पूर्ण हो जाता है । कथा में उतार–चढ़ाव है । पाठक का हृदय प्रत्येक क्षण विनोद के जीवन की वास्तविकता को जानने के लिए उत्सुक बन जाता है । विनोद की कथा प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को छू जाए, ऐसी हृदय स्पर्शी है । परसाईजी ने इस छोटे से लघु उपन्यास में समाज के कहे जानेवाले बड़े बड़े नेताओं, उद्योगपतियों, पुलिस, वकील, मेजिस्ट्रेट, सरकारी कर्मचारी इत्यादि सभी के भ्रष्टाचारी जीवन को खोलकर रख दिया है । समाज में फैले भ्रष्टाचार, व्यभिचार एवं स्त्री पर किये जानेवाले अत्याचार की और परसाईजी ने संकेत दिये है । कथानक में विनोद वकील साहब को नेता ओर बड़े बड़े लोगों की वास्तविकता का दर्शन कराता है । विनोद की माँ के द्वारा परसाईजी ने नारी

पर होते अत्याचार का चित्रण किया है । उपन्यास में जहाँ जीवन के ऐसे कलुषित पक्ष का चित्रण है, वहीं पर सुंदरपक्ष का भी लेखक ने वर्णन किया है । इस उपन्यास में माँ का वात्सल्य, भाई का दुलार एवं प्रेम का निर्मल प्रवाह भी बहता है, जिसमें डूबकर विनोद जैसा प्रतिहिंसा की ज्वाला में जलनेवाला इन्सान भी प्रेमजल की शीतलता से शान्त हो जाता है और एक नवीन रूप लेकर हमारे सामने आता है ।

इस तरह 'ज्वाला और जल' सामाजिक विषय वस्तु को लिए हुए है । इसके केन्द्र में एक ऐसा युवक है जो समाज के निर्मम थपेडों से धीरे धीरे एक अमानवीय अस्तित्व के रूप में परिवर्तित हो जाता है, पर प्रेम और सहानुभूति के सान्निध्य में वह एक बार फिर कोमल मानवीय सम्बन्धों की ओर लौटता है । उपन्यास का मूल आधार सामाजिक घटना है । आज भी हमारे समाज मे विनोद जैसे सनकी चरित्रो का अभाव नहीं है, जो परिस्थिति के अनुसार अपनी राह से भटक जाते है । पर प्रेम ओर सहानुभूति मिलने पर ऐसे चरित्र भी सद्‌गुणी बन जाते है । संक्षेप में विनोद की कथा मानवीय स्थितियों से जूझते हुए एक ऐसे अनाथ और आवारा बालक की हृदयस्पर्शी कथा है, जिसे परसाईजी की कालजयी कलम ने एक ऐसी ऊँचाई दी है, जो उस समय के हिन्दी साहित्य में दुर्लभ थी ।

चरित्र :

उपन्यास विधा में कथानक के बाद दूसरा मुख्य अंग चरित्र है, जिसके द्वारा कथा पूर्ण होती है । चरित्रो के द्वारा ही कथा आगे बढ़ती है ओर उपन्यास का उद्देश्य सिद्ध होता है । अतः किसी भी उपन्यास में उसके चरित्र अनिवार्य अंग बन जाते है । प्रस्तुत उपन्यास 'ज्वाला और जल' का एक ही मुख्य चरित्र है – विनोद । संपूर्ण कथा के लक्ष्य में विनोद है ओर विनोद के इर्द–गिर्द ही कथा घूमती है या फिर कथा का केन्द्र बिन्दु ही विनोद है । हम उसके चरित्र को विस्तृत रूप से देखेंगे –

➡ *विनोद :*

यदि 'ज्वाला और जल' उपन्यास में से विनोद के पात्र को अलग कर दिया जाय, तो इस उपन्यास में कुछ रहेगा ही नहीं, क्योंकि पूरी रचना में सिर्फ एक ही व्यक्ति की कथा है – वह है विनोद । आरंभ से अंत तक सर्वत्र विनोद ही छाया हुआ है । कथानक के सूत्रधार वकील साहब आरंभ से अंत तक विनोद की कथा हमें सुनाते हैं । विनोद एक कायस्थ जाति का इण्टर तक पढ़ा हुआ बहुत ही अच्छा युवक है । बचपन से ही अपने पिता द्वारा अपनी माता पर किये गये अत्याचार को देखता है ओर फिर माता के आत्महत्या करलेने पर वह घर से भाग जाता है ओर अपना नाम अब्दुल रखकर वह विभिन्न जगहों पर घुमता रहता है । उपन्यास के प्रारंभ में लेखक ने उसका परिचय देते हुए लिखा है – "जिस आदमी की कहानी कह रहा हूँ, उसकी प्रतिमा अगर बने तो उसके दो मुख हो – अब्दुल ओर विनोद । गर्दन ऐंठकर चलनेवाला, बात ही बात में तमाचा जड देनेवाला, उद्धत, झगडैल, गुण्डा अब्दुल और सन्ताप से त्रस्त, पीड़ा से क्षत–विक्षत, ग्लानि से गलित टूटा हुआ, भु–नत–विनोद ।"[८०] ऐसे ही आगे चलकर एक जगह परसाईजी ने लिखा है – "बीस–बाईस साल का तगड़ा तरुण था वह । अच्छा कदावर ओर पुष्ठ सुगठित । नाक–नक्शा अच्छा सुडौल जबान ओर चाल दोनो में ऐंठ । चेहरे पर बड़ी बेपरवाही ओर ढीठपन । बड़े मद से चलता था । बातचीत में बड़ी हैकड़ी मालूम होती थी ।"[८१]

विनोद अपने जीवन की करुणा के कारण गुण्डा बना हुआ था, वैसे मूल रूप से वह बहुत सीधा–साद युवक है, पर परिस्थितियों का सामना करते करते उसने अब्दुल का रूप अपना लिया था, वह मजबूरी में गुण्डा बन गया था । वह बाहर से बड़ा ही मस्त बनकर घूमता है । अजब वेशभुषा में रहता है । कभी–कभी साफ कुरता–पहजामा पहनता, तो कभी पतलुन–कोट भी पहनता, तो कभी–कभी मेली बनियाइन पहने ही घुमता दिखाई देता । ऐसे ही कहीं–कहीं तो वह मलमल के महीन कुरते के नीचे काली बनियाइन पहिने और

तेल से तरबालों पर हरा या पीला रुमाल बाँधे बिलकुल शोहदा का रूप लिए शहर में दिखाई देता । इस तरह विनोद निर्भय एवं अलमस्त के भाव लिए जीता था । वैसे विनोद गुण्डा बनकर रहता है, अतः काम भी वह गुण्डों जैसा ही करता है । सिनेमा के टिकिट ब्लेक मे बेचना, किसी को मारना-पिटना झगडा करना आदि उसके काम है । ऐसा होने पर भी उसके व्यक्तित्व में बहुत से अच्छे गुण भी है । वह बुद्धिशाली, तार्किक, स्वाभिमानी, नारी के प्रति सम्मान का भाव रखनेवाला, माता की पूजा करनेवाला, निर्भय, निष्ठावान तथा सच्चा प्यार करनेवाला युवक है ।

वकील साहब की विनोद से प्रथम मुलाकात सिनेमाघर पर हुई थी । उसने उनको सिनेमा की टिकिट लाकर दी थी । तब वकीलसाहब ने उसको इनाम के रूप में एक रूपया देना चाहा, तो उसने बड़ी ही बेरुखी से कहा – "वाह, खैरात बाँटते हो क्या, बाबू साहब ? में कोई भिखमंगा हूँ क्या ? ऐसे रईस मैंने बहुत देखे है । अपना रूपया रख लो । मैंने उन माँजी की परेशानी देखकर टिकटें दी थी । आप मेरे ऊपर एकदम अहसान ही करने लगे ।"[८२] यहाँ पर विनोद का स्वाभिमान एवं उसके हाजर-जवाबी का गुण दिखाई देता है । वह बहुत बोलता था ओर बेरोकटोक बोलता रहता था । जब वह बोलने लगता है, तब बड़े ही आवेश में आ जाता है और बुद्धिशाली एवं तार्किक ऐसा कि किसी भी बात का तपाक से उत्तर दे देता है । उपन्यास में लेखक ने एक जगह लिखा है – "बुद्धि उसकी बड़ी तीव्र मालुम हुई । इस छोटी उम्र में भी उसने जिन्दगी काफी देखी थी । बिना अनुभव के कोई ऐसी पते की बाते नहीं कर सकता । सच्चाई की पकड़ भी उसमें थी । उसकी बातचीत, चाल-ढाल और अंग-संचालन में कुछ ऐसा आत्मविश्वास और सत्ता का भाव था, मानो वह सबको बहुत हीन समझता है और सब पर राज करने का उसे हक मिला है । जो चीज उसे चाहिए, उसे झपट लेना अपना अधिकार समझता है ।"[८३]

विनोद अपने पिता से धृणा करता था । क्योंकि उसके पिता उसकी माता को शराब के नशे में मारते थे, गालियाँ देते थे और उसे चरित्रहीन मानते थे । विनोद के पिता शराबी, भ्रष्टाचारी एवं व्यभिचारी थे, ये सब विनोद को कतई अच्छा नहीं लगता था । उसके पिता के अत्याचार सहते–सहते एक दिन उसकी माँ आत्महत्या कर लेती है । तभी से विनोद अपने पिता का दुश्मन बन जाता है ओर प्रतिशोध की ज्वाला लिए वह घुमता है । वह अपने पास एक छुरी रखता है और यह छुरी वह अपने पिता के हृदय में उतार देना चाहता है । क्योंकि विनोद ऐसा मानता है कि उसके पिता ने ही उसकी माँ को मारा है, उसीने ही उससे अपनी माँ को छिन लिया है । एक जगह वह कहता है, ‘‘में माफ नहीं कर सकता । मेरे पिता ने मेरी माँ पर अत्याचार किया है । मेरी आत्मा, आस्था को कुचल दिया है । जिन्दगी को बिगाड दिया है । पिताजी ने मेरी माँ को छीना मुझे पाप ओर घृणा संस्कार के रूप में दिये । उन्होंने मुझे बड़े घृणित और हृदय विदारक दृश्य दिखाये है । मेरे भीतर ज्वाला धधक रही है, वह शान्त नहीं हो सकती । मैं अपने आपको खूब समझाता हूँ पर मेरा मन किसी कदर नहीं मानता ।’’[८४] विनोद जहाँ अपने पिता से नफरत करता है, वहीं पर वह अपनी माँ को बड़ा ही प्यार करता है । माँ की याद आते ही वह करुणाद्र हो जाता है उसकी आँखो से आँसू बहने लगते है । यही कारण है कि वकील साहब की माता को देखकर उसको अपनी माँ याद आती है और वह उनका बेटा बन जाता है, उनकी सभी बाते मानता है, उनके सभी काम भी करता है । बाहर गुण्डों की तरह रहनेवाला विनोद माँ के सामने आते ही बिलकुल शान्त हो जाता है । उन्हीं के कहने पर वह नोकरी करने के लिए भी तैयार हो जाता है । वह इन्टर तक पढ़ा था । अतः वकील साहब ने उसको एक प्रायवेट कम्पनी मे नौकरी दिला दी । वह बड़ी ही लगन और निष्ठा से काम करता है । बड़ा ही शान्त होकर घुमता है, कभी कोई उपद्रव नहीं मचाता । दफतर में सब उसकी कार्य कुशलता और सज्जनता की तारीफ करते थे । इस

प्रकार वह माँ की ममता का भुखा और अच्छे परिवार का लड़का था । वकील साहब के परिवार से आत्मियता बढ़ने पर उसमें बहुत सुधार आ जाता है । विशेषकर माता के सान्निध्य से वह बदल जाता है । माँ की तरह ही नारी जाति के प्रति उसके हृदय में बहुत ही सम्मान की भावना रही है । इसी कारण ही वह अपने दोस्त जगन्नाथ का सिर फोड़ देता है, क्योंकि वह अपनी पत्नी को शराब के नशे में मारता था । नारी चुपचाप सहनशीलता की मूर्ति बनकर पुरुष का अत्याचार सहे, यह उसको पसंद नहीं है । इसी कारण वह शरदचंन्द्रबाबु की नवलकथा ''परिणीता'' की स्थिति का भी विरोध करता है क्योंकि वह जानता था कि श्रद्धापूर्वक सहन करने से कहानी में तो पुरुष का हृदय बदलता है, पर वास्तविक जिन्दगी में ऐसा बहुत ही कम होता है । वास्तविकता में तो नारी को आत्महत्या ही करनी पड़ती है और ऐसे पुरुषो को तो मृत्युदंड ही देना पड़ता है । वकील साहब की पत्नी और माँ के साथ चर्चा करते हुए वह आवेश मे आकर कहता है – ''मेंने ऐसे आदमी देखे है । इनके लिए कोई उपाय नहीं है । अगर होता, तो राम रावण और बालि का वध क्यों करते ? कृष्ण दुर्योधन से पाण्डवो की सुलह क्यों नहीं करा पाये ? महाभारत ही क्यों हुआ ? ये दोनो तो अवतारी पुरुष थे । वे जानते थे कि इनका सुधार इनकी मोत ही है ।''[८५] इस तरह नारी के प्रति उसके हृदय में असीम श्रद्धा है ।

विनोद बड़ा ही बहादुर ओर निर्भय है । उसने समाज के बहुत–से बड़े–बड़े लोगों और समाज को लूटनेवाले लूटेरे को लूटा है । वह बड़े–बड़े नेताओं और उद्योगपति शेठों के भ्रष्टाचार और व्यभिचार का वकील साहब के सामने पर्दाफाश करता है । ऐसे ही पुलिस, वकील एवं मेजिस्ट्रेट तक की बुराईयाँ दिखाता है । वह कहता है – ''अव्वल तो पुलिस पकडेगी नहीं, पैसा जो दे दिया जाएगा । आगे चलकर तो हम लोग पुलिस की लारियों में, पुलिस की निगरानी में लूट करने जाया करेंगे । अगर पुलिस ने पकड़ ही लिया तो सरकारी वकील को पैसे देकर मामला कमजोर करवा दिया । अगर मामला

अदालत में चला ही गया, तो होशियार वकील काले को सफेद साबित कर देगा । वहाँ भी अगर नाकामयाब रहे तो वकील खुद मजिस्ट्रेट को घूस दिला देगा । आप चौकिंए मत । आप सब जानते है । ... में आपसे सच कहता हूँ ... बहुत से मजिस्ट्रेट तक घूस लेते है । वकील लोग दिलाते है ।"[८६] इस प्रकार वह अपनी निर्भयता से बड़े–बड़े भ्रष्ट नेताओं की श्रद्धापूर्ण देव प्रतिमा को खण्ड़ित कर देता था और कभी–कभी धूल में पड़े किसी बेडोल से पत्थर को उठाकर देव–मन्दिर में भी स्थापित करदेता था । अर्थात कई निन्दित, बदनाम और छोटे आदमियों का उज्ज्वल रूप दिखाकर उनके गुण भी सिद्ध कर देता था ।

विनोद के सीने में जहाँ प्रतिशोध की ज्वाला धधकती थी, वहीं उसके हृदय में कही–न–कही प्यार का शान्त जल भी था। इसी कारण सुषमा के उसके जीवन में आते ही वह उससे बेहद प्यार करने लगता है और उसे अपना बनाने के लिए वह सब कुछ छोड़ देता है, यहाँ तक कि वह छुरी भी अपने से दूर कर देता है, जो वह किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ना चाहता था । इसका कारण केवल यही है कि वह सुषमा के दुःख नहीं देना चाहता था । सुषमा के प्रेम के कारण वकील साहब और उनकी माताजी के समझाने पर वह सम्पूर्ण रूप से प्रतिशोध की भावना को भुला देता है और सुषमा को सुख देने का संकल्प करता है । प्रतिशोध को आत्मज की तरह पालनेवाला युवक भी प्रेम के सामने नतमस्तक हो जाता है, यह बात विनोद के चरित्र में चरितार्थ होती दृष्टिगोचर होती है । विनोद के लिए सुषमा को त्यागना या अपने कारण उसको दुःखी करना कतिपई मंजुर नहीं था । अतः उपन्यास के अंत में जब वकील साहब उसे छुरी या सुषमा दो में से किसी एक को अपनाने के लिए कहते है, तब वह छुरी को त्याग देता है और सुषमा के प्रेम के सामने पराजित होना स्वीकार कर लेता है ।

इस प्रकार 'ज्वाला और जल' उपन्यासिका में विनोद का चरित्र आदि से अन्त तक छाया रहता है । एक सीधा–सादा संस्कारी नौजवान किस तरह

परिस्थितियों के सामने संघर्ष करते हुए गुण्डा बन जाता है और फिर वही युवक प्यार, स्नेह, वात्सल्य ओर सहानुभूति को पाकर एक अच्छा नागरिक बन जाता है, इसका जीता–जागता उदाहरण विनोद का चरित्र है । परसाईजी ने विनोद का चरित्र बड़े ही यथार्थ ढंग से चित्रित किया है । यह चरित्र प्रत्येक पाठक के लिए हृदय स्पर्शी बन जाता है । विनोद जैसे युवक हमारे समाज के लिए एक आईना है, जिसमें समाज के उन व्यक्तियों का प्रतिबिम्ब है, जिनके अत्याचार और शोषण के कारण समाज में ऐसे युवक बुराई की राह अपनाते है । परसाईजी ने इस बात की ओर संकेत करते हुए ऐसे युवक के लिए प्यार और स्नेह की सहानुभूति का आदर्श भी दिखाया है, जिससे नौजवान जिन्दगी सुधर और सँवर जाए । सारांशतः विनोद का चरित्र प्रस्तुत उपन्यास में अत्यन्त हृदय द्रावक एवं करुणा से भरा हुआ है । परसाईजी की कलम ने इस चरित्र को मानव–हृदय की ऊँचाई तक पहुँचा दिया है ।

➢ *गौणपात्र :*

आलोच्य उपन्यास 'ज्वाला और जल' में विनोद का चरित्र मुख्य है । उसके साथे वकील साहब श्री नरेन्द्र वर्मा एवं उनकी माताजी भी उपन्यास में गौण पात्र के रूप में आते है । वकील साहब इस रचना के सूत्रधार है । वे सीधे–सादे शरीफ इन्सान है । विनोद के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति एवं भाई के समान प्यार भी है । उन्हीं के प्यार और सहयोग से विनोद एक अच्छा इन्सान बन पाता है । वकील साहब परसाईजी का रूप लेकर संपूर्ण कथा को वर्णित करते है । उनकी माताजी बहुत ही भली एवं वात्सल्य की मूर्ति है । वे विनोद को बेटे की तरह मानती है और उसे स्नेह एवं दुलार भी देती है । विनोद भी उनका बहुत आदर करता है और उनकी सभी बाते मानता है । वकील साहब की माता में विनोद को अपनी माँ के दर्शन होते है । वे बड़ी ही सरल एवं ममता की मूर्ति के रस में इस रचना में प्रस्तुत हुई हैं । इस प्रकार इस उपन्यास में वैसे तो विनोद का चरित्र ही प्रमुख है,

क्योंकि संपूर्ण उपन्यास में केवल उसी की ही बात कही गयी है । पर उसकी बाते कहनेवाले गौण पात्रों में वकील साहब एवं उनकी माताजी मुख्य पात्र है । उपन्यास में एक–दो स्थान पर वकील साहब की पत्नी का पात्र भी दृष्टिगोचर होता है । 'ज्वाला और जल' में परसाईजी ने चरित्र–निर्माण में अपनी सफल लेखनी का जादू चलाया है । इसी कारण विनोद जैसा सामान्य पात्र भी इतनी विशेषताओं के साथ निखर जाता है । सारांश यही है कि चरित्र की दृष्टि से भी यह लघु उपन्यास कम सफल नहीं हैं ।

शिल्प :

उपन्यास में उसके कथानक को सजाने सँवारने का कार्य शिल्प करता है । अतः शिल्प की महत्ता बहुत बड़ी है । शिल्प की कमजोरी उपन्यास की सफलता में रुकावट है । अतः जहाँ उपन्यास का कथ्य दमदार हो, वहीं उसे व्यक्त करने की कला भी दमदार होनी चाहिए, अन्यथा अच्छी से अच्छी रचना भी क्षतिग्रस्त हो जाती है । फलतः जहाँ रचना का कथ्य सबल हो, उसे जिन माध्यम के द्वारा व्यक्त किया जाए, वे माध्यम भी अपने आप में सक्षम होने चाहिए । इन माध्यमों में भाषा, शैली, संवाद, छन्द, अलंकार, शीर्षक, शब्दचयन, सुक्तियाँ, मुहावरे इत्यादि बहुत से तत्त्व है । ये सभी तत्त्व 'शिल्प' के अंतर्गत आते है । कथ्यपक्ष की तरह किसी भी रचना की सफलता के लिए उसका शिल्प भी सफल हौना चाहिए । प्रत्येक साहित्यकार की रचनाओं का शिल्पपक्ष उसके कथ्यपक्ष के अनुकूल होता है ।

'ज्वाला और जल' परसाईजी की युवाकाल की प्रारंभिक रचनाओं में से एक है । यही कारण है कि इस उपन्यास में परसाईजी की लेखनी का वह कमाल नहीं देखा जा सकता, जो उनके 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास में देखा जाता है । हो सकता है कि प्रारंभिक समय में लिखी गयी होने के कारण परसाईजी की लेखनी तब धारदार न हुई हो । फिर भी लघु आकार मे लिखी गयी यह रचना पाठक को एक ही बैठक में पूर्ण करने के लिए लालायित अवश्य करती है । इस उपन्यास के शिल्पपक्ष को देखे –

➢ *भाषा :*

प्रत्येक रचना के लिए भाषा महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसके अभाव में कृति का सृजन ही नहीं हो सकता । जिस रचना की भाषा वैविध्य एवं विशेषताओं से पूर्ण होती है, वह रचना स्वयंभू श्रेष्ठ बन जाती है । वैसे तो भाषा के विषय में परसाईजी की भाषा हिन्दी साहित्य में अपना अनूठा स्थान बनाये हुए है, फिर भी इस कृति में उनकी मूल भाषा का रूप नहीं दिखाई देता, क्योंकि उनकी भाषा व्यंग्यपूर्ण भाषा होती है, जबकि यह उनकी प्रारंभिक रचना होने के कारण सामाजिक कथ्य को लिए हुए सामाजिक लघु उपन्यास है । संपूर्ण कृति में परसाईजी की सरल, विभिन्न शब्द–प्रयोग से युक्त, सचोट वाक्य से परिपूर्ण, सफल शैली के प्रयोगवाली भाषा का दर्शन होता है । प्रस्तुत उपन्यास की भाषा में व्यंग्यात्मकता कम एवं भावात्मकता अधिक है । संपूर्ण कथा में परसाईजी ने भावों की अभिव्यक्ति भावपूर्ण भाषा में की है । उनकी सरल एवं अर्थ ग्राभीर्यवाली भाषा का प्रयोग आलोच्य उपन्यास में यत्र–तत्र दिखाई देता है । यथा – ''समय–समय पर ऐसे उबाल के सिवा वह अब बहुत शान्त रहता । .... पर मैं जानता थाकि कभी भी इस शान्ति के आवरण को चिरकर उसके भीतर की ज्वाला बाहर निकल आती थी ओर तब वह आवेश में धारा प्रवाह बोलता जाता था । विश्वासों को धूल में मिलाता जाता, सज्जनता की हँसी उड़ाता, हमारी मान्यताओं की धज्जी उड़ाता । जब उसकी कटुता उभरती, तो जैसे उसकी प्रतिभा जाग जाती ।''[८७] प्रस्तुत वाक्यों के द्वारा विनोद की स्थिति का परिचय मिल जाता है । यह परसाईजी की भाषा की विशेषता है कि उनकी भाषा के द्वारा घटना एवं चरित्रों की स्थिति ज्ञात होती है । परसाईजी ने इस उपन्यास की भाषा को विभिन्न रूप से सँवारा है । 'ज्वाला और जल' में लेखक ने शब्दचयन, सचोट वाक्य, मुहावरे, शैली, शीर्षक, संवाद इत्यादि विशेषताओं के साथ इस रचना की भाषा का सौन्दर्य बढ़ाया है । हम उनको क्रमशः देखेंगे । यथा –

➢ शब्द–चयन :

भाषा में विभिन्न शब्द–चयन से भाषा लोकग्राहय बनती है । परसाईजी ने इस रचना में कहीं–कहीं अंगेंजी तो कहीं–कहीं उर्दू के शब्द, तो कहीं संस्कृत के तत्सम् शब्दों का भी प्रयोग किया है । वैसे तो परसाईजी शुद्ध खड़ी बोली हिन्दी में ही अपनी रचनायें लिखते है, अपितु उनकी भाषा में शब्द वैविध्य अवश्य दिखायी देता है । वे सभी शब्द अपनाते है । 'ज्वाला और जल' में निम्नांकित शब्द वैविध्य है –

➯ अंग्रेजी शब्द :

स्पेशल क्लास, रोमांटिक, इण्टरटेनमेन्ट, टैक्स, मजिस्ट्रेट, साइन बोर्ड, इण्टर, टेबल, चार्ट, नेमप्लेट, हेडक्लर्क, एग्रीमेण्ट, प्रापर्टी इत्यादि ।

➯ उर्दू –फारसी :

मुहल्ला, मुकदमा, खेरात, अम्मा, खिदमत, शराफत, अहसान, नफरत, गुनाह, बदकिस्मत, नियामत, रोशनी, मुस्तेदी, खिलाफ, मिजाज, इमानदार इत्यादि ।

➯ संस्कृत शब्द :

क्षत–विक्षत, ग्लानि, वात्सल्य, उद्धता, निस्सहाय, करुणार्द्र, उपद्रव, देवप्रतिमा, उज्जवल, धर्मात्मा, स्पन्दन, आत्मज, स्वर्ग, शान्ति, स्वयं इत्यादि ।

➯ मुहावरे :

परसाईजी ने प्रस्तुत उपन्यासिका में कई जगह भाषा में मुहावरों का प्रयोग करके भाषा के प्रभाव को अधिक गहरा बनाया है । जैसे –

'मुख मलिन होना', 'कलेजा फट जाना', 'वाणी फूट निकलना', 'गला भर आना', 'उजले मुख पर कालिख पुतना' 'पाँवो की धुल', 'कलेजा काँपना', 'पीले हाथ करना', 'ऊँट का पहाड के नीचे आना', 'आँखों में अँगारे आना' इत्यादि । इन मुहावरो के प्रयाग से इस रचना की भाषा अत्यधिक मोहक बन पायी है ।

➢ *शीर्षक :*

शीर्षक किसी भी रचना का आईना होता है, जिसमें उसका उद्‌देश्य रूपी चेहरा दिखाई देता है । 'ज्वाला और जल' उपन्यास में परसाईजी ने इस शीर्षक द्वारा यह संदेश दिया है कि ज्वाला अर्थात् अग्नि का सहज और स्वाभाविक गुण जलना है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जल का सहज और स्वाभाविक गुण शीतलताप्रदान करना है । प्रतिहिंसा अग्नि अर्थात् ज्वाला है । यह जिस हृदय में पलती है, उसे सतत झुलसाती रहती है । प्रेम, जिसको असाधारण रूप से परसाईजी ने साधारणीकरण करके प्रणयतक सीमित किया है । वही प्रणय प्रतिशोध विदग्ध हृदय को शीतलता पहुँचाता है । उपन्यास में प्रतिशोध की प्रतिमूर्ति अब्दुल (विनोद) सुषमा के प्यार और शायद वकील साहब और उनकी माँ की सुसंगति मे पड़कर अपने स्थायीभाव घृणा का परित्याग कर देता है । घृणा पर प्रेम की विजय प्रकट करना इस उपन्यास का उद्‌देश्य है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास का शीर्षक 'ज्वाला और जल' सार्थकता लिए हुए है ।

➢ *शैली :*

सुंदर शैली प्रयोग से भाषा प्रभावात्मक बनती है । सचोट भाषा को व्यक्त करने के लिए सफल शैली भी अत्यावश्यक है । वैसे तो परसाईजी अधिकतर व्यंग्यात्मक शैली का प्रयाग करते है, चूँकि यह रचना व्यंग्यात्मक न होकर सामाजिक है । अतः इसमें उन्होंने विशेषकर विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है । वकिल साहब संपूर्ण रचना में विनोद के जीवन कथा का विवरण प्रस्तुत करते है । अतः इस उपन्यास की मुख्य शैली विवरणात्मक है । परसाईजी अपनी और से सीधे कुछ नहीं कहते, वकील साहब के द्वारा वे सभी विवरण देते है । उपन्यास में प्रयुक्त इस शैली को देखिए–"रोज शाम को वह मुझे अपने प्रेम के हालात सुनाता । वहीं वही बात कई बार कहते वह थकता नहीं था । मैं नहीं जानता था कि उस जैसा बेपरवाह, स्वतन्त्र वृत्ति का

अक्खड आदमी इस तरह बंध जाएगा । मेरा ख्याल था, वह नशा जल्दी ही उतर जाएगा । पर वह बढ़ता ही जाता था । वह बदल रहा था । उद्धतता अब बिलकुल समाप्त हो गयी थी, उसकी आँखों में पहले जैसा क्रूर भाव मेंने कई दिनों से नहीं देखा था, उसके व्यवहार में बड़ा पालिश आ गया था । सोच समझकर बोलता था, जिम्मेदार आदमी जैसा व्यवहार करता था । गम्भीर हो चला था । उसके मुख का खुरदरापन मिट गया था, कोमलता आ गयी थी । वह पहले से अधिक सुन्दर भी हो गया था । प्रेम ने उसके तन-मन को उजला कर दिया था ।''[८८] लेखक द्वारा लिखी गई इन बातों से यह सिद्ध होता है कि इस उपन्यास में 'विवरणात्मक'' शैली का प्रयोग किया गया है ।

➢ *सचोट वाक्य :*

परसाईजी ने इस उपन्यास में भाषा को प्रभावशाली बनाने हेतु सुंदर सचोट वाक्यों का भी सृजन किया है । ये सचोट वाक्य रचना में यत्र-तत्र यथा स्थान प्रयुक्त करके लेखक ने भाषा में अर्थ गंभीरता बढायी है । जैसे -

- ''शराफत और दब्बूपन में कोई खास फर्क नहीं है ।'' पृ.१५
- ''जिसका दुश्मन न हो, वह भी कोई आदमी है ? भगवान तक के तो दुश्मन होते है । शैतान ही खुदा का दुश्मन था ।'' पृ. १७
- ''वात्सल्य की शक्ति ही ऐसी होती है । सिंह जब जानवरों को हिंस्र नाखूनो से फाड़कर माता के पास आता होगा, तो मेमने-सा कोमल ओर विनयी हो जाता होगा ।'' पृ.२२
- ''संस्कार दबाये नहीं दबता । बोल पड़ता है ।'' पृ. २३
- ''कई लोग सूरज की रोशनी में बड़े चमकीले लगते है, मगर रात को काले हो जाते है ।'' पृ. २४
- ''सघन करुणा और अथाह श्रद्धा-तर्क को मौन बना देते है ।'' पृ.३४
- ''पत्थर में कहीं श्रद्धा से नरमाई आयी है । उसका तो पीसकर चूर्ण ही बन सकता है ।'' पृ. ३६

➢ “कवि और प्रेमी सुनाए बिना चैन नहीं पाते । काव्य और प्रेम दोनों में आनन्द की अभिव्यक्ति होती है और आनन्द का स्वभाव विस्तार का है ।”[८६] (पृ. १५–४०)

यह परसाईजी की विशेषता रही है कि वे अपनी रचनाओं में कई स्थान पर ऐसे सचोट वाक्य रखते हैं, जिससे उनकी रचना स्वयं ही पाठक को अभिभूत करती है । उनकी रचना में ऐसे सचोट वाक्यों से भाषा बड़ी ही धारदार बन जाती है ।

➢ *संवाद–योजना :*

संवादों में भाषा अत्यन्त लोकप्रिय बनती है । जहाँ रोचक, सचोट एवं पात्रानुकूल संवाद होते है, वह रचना पाठक को आकर्षित तो करती ही है, साथ में उसकी भाषा का पाठक पर गहरा प्रभाव भी पड़ता है । परसाईजी ने विशेषकर विनोद के चरित्र द्वारा अपने विचारों को व्यक्त किया है । इसलिए पूरे उपन्यास में ज्यादा से ज्यादा संवाद विनोद के ही है । परसाईजी ने इस उपन्यास में सुंदर एवं प्रभावोत्पादक संवाद रचे हैं । कहीं भी संवादों में कृत्रिमता नजर नहीं आती । विनोद की जीवन–कथा का चित्रण करता हुआ यह उपन्यास अनेक सुंदर संवाद लिए हुए है । यथा –

“टेबिल के पास वह खड़ा हो गया । बड़ी जमी हुई स्थिर वाणी में बोला – मेंने निर्णय कर लिया है ।”

“क्या ?” माँ और मेरे मुँह से एक साथ ही निकला । उसने कहा – “मैं इस छुरी का त्याग करता हूँ ।” उसने जेब से छुरी निकालकर टेबिल पर रख दी । माँ ने कहा – “मुझे यही आशा थी, बेटा ।” मेंने उसे भुजाओं में भर लिया । कहा, “तुम वास्तव में बहादुर हो । सच्चे मनुष्य हो ।”

उसके मुख पर शान्ति थी ।

छुरी की ओर संकेत करके वह बोला – “इसे संभालिए मैं इसके भार से मुक्त हुआ ।”

मैंनें मजाक किया, ''इस शस्त्र का समर्पण तो उसी योद्धा के सामने करना जिसने तुझे परास्त किया है ?''

माँ हँस दी ।

वह बोला – ''याने कोन ?''

मेंने कहा – ''सुषमा !''

वह हँस पड़ा ।''[६०]

उपन्यास के अंत में दिया गया यह संवाद सरल, संक्षिप्त एवं हृदय स्पर्शी है । इस संवाद से विनोद के जीवन में हुए संपूर्ण परिवर्तन का पता चलता है और उसके आनेवाले सुखमय जीवन की झाँकी भी प्राप्त होती है । इस तरह 'ज्वाला और जल' उपन्यास के संवाद संक्षिप्त, सार–गर्भित ओर यथार्थ लगते हैं । कहीं कोई दंभ या कृत्रिमता नहीं, केवल चरित्रों के दिल की बाते सच्चाई के साथ प्रस्तुत हुई है । चरित्रों के अंतर्द्वन्द्व में भी इनके हृदय के भावों की सही ढंग से अभिव्यक्ति होती है । ये संवाद सार्थक लगते है, कहीं कोई अनावश्यक शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है । इस तरह संवाद अच्छे ढंग से और सही स्थान पर प्रयुक्त हुए है ।

इस प्रकार 'ज्वाला और जल' उपन्यास का शिल्प विभिन्न विशेषताओं से भरा हुआ है । इस रचना में भाषा की प्रवाहमयता, शीर्षक की सार्थकता, शैली की सरलता, संवादों की रोचकता, सचोट वाक्य एवं मुहावरों का अर्थ गांभीर्य, शब्दों का वैविध्य, भावों की अधिकता अपने यथोचित स्थान पर प्रयुक्त हुए है । परसाईजी की प्रारंभिक रचना होने के कारण इसमें सामाजिकता का प्रभाव है । परसाईजी अपने लेखनकार्य के प्रारंभिक समय में सामाजिक घटनाओं पर अधिक लिखते थे, उनमें राजकीयता एवं व्यंग्यात्मकता कम होते थे । यही कारण है कि 'ज्वाला और जल' में व्यंग्यात्मकता न होकर भावात्मकता झलकती है । ऐसा होने पर भी इसका शिल्प प्रभावक बन पड़ा है ।

सारांशतः कहा जा सकता है कि परसाईजी का 'ज्वाला और जल' केवल ५६ पृष्ठों में लिखा गया संक्षिप्त एवं सामाजिक उपन्यास है । इसमें भावों की

अधिकता है । परसाईजी की यह रचना भले ही 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास के समान सफल एवं धारदार नहीं है, नहीं यह 'तट की खोज' की तरह चोटदार अभिव्यक्ति में लिखा गया है, फिर भी इस रचना का महत्त्व परसाईजी की प्रारंभिक रचना होने के कारण माना जाता है । यह भी सत्य है कि परसाईजी के अनुभवों का निचोड इस कृति में नहीं है और न ही भाषा का वह प्रभाव यहाँ है, जो उनकी अन्य रचनाओं में पाया जाता है, जिसे पढ़कर पाठक मंत्र–मुग्ध हो जाता है । प्रेम एवं घृणा के विषय पर लिखा गया यह उपन्यास परसाईजी की प्रारंभिक रचना होने के कारण उनके साठोतरी साहित्य की तुलना में थोडा कम प्रभावक है । फिर भी यह उपन्यासिका सामाजिक कथ्य को लिये हुए पाठक की संवेदना के बिलकुल निकट है, जिससे आम मानव भी इसको पढ़कर अपनी ही किसी अनुभूति को तादृश्य प्राप्त करता है ।

❀ निष्कर्ष :

इस प्रकार हमने देखा कि परसाईजी के उपन्यासों का समाज यथार्थ वस्तु जगत से जुड़ा हुआ है । उपन्यास का दायरा विस्तृत होने के साथ ही साथ सूक्ष्म एवं गहराई लिये हुए है । परसाईजी वर्तमान के लेखक है । वर्तमान के साथ यथार्थ सदैव अपेक्षित होता है । परसाईजी को यथार्थ की गहरी जानकारी है । यथार्थ से जुड़े रहने के कारण कोरी भावुक्ता से उन्होंने मुक्ति पा ली है । इसी कारण उनके उपन्यासों का परिवेश अत्यन्त व्यापक है । उनके उपन्यासों का संसार न केवल विस्तृत है, बल्कि विस्तृत होने के साथ ही आम आदमी के साथ जुड़ा हुआ है । परसाईजी वर्तमान के शिल्पकार हैं । इसीलिए इनके उपन्यासों का संसार व्यापक ओर विस्तृत होने के साथ ही साथ विविधतापूर्ण भी है । परसाईजी के उपन्यासों में समकालीन परिवेश का चित्रण हुआ है । मध्यमवर्गीय संघर्ष को परसाईजी ने समझा है । मध्यमवर्गीय परिवेश के साथ ही साथ उन्होंने राजनीतिक चारित्रिक पतन को भी प्रस्तुत

किया है । मध्यमवर्गीय मानसिकता का सुन्दर प्रस्तुतिकरण 'ज्वाला और जल' तथा 'तट की खोज' उपन्यास में हुआ है ।

परसाईजी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण किया है । ये चित्र निर्जीव चित्र नहीं है, बल्कि इसमें परसाईजी की चेतना सर्वत्र जागृत रही है इसलिए ये चित्र सचित्र बन गये है । परसाईजी ने अपने उपन्यासों में पूँजीवादी, सामन्तवादी व्यवस्था पर प्रहार किया है । 'रानी नागफनी की कहानी' में उन्होंने समाज में व्याप्त सभी प्रकार की विद्रूपताओं का उद्‍घाटन किया है । यद्यपि इस उपन्यास का ढाँचा प्राचीन है, किन्तु परसाईजी ने जिन समस्याओं को उठाया है, वे अत्याधुनिक है, डॉ. अर्चनासिंह यथार्थ ही लिखती है, ''उपन्यासकार परसाईजी ने सूक्ष्म अवलोकन क्षमता, चेतन्य लेखक होने का परिचय दिया है । परसाईजी के उपन्यास गम्भीर तथा गहन चिन्तन के परिणाम है । परसाईजी ने अपने उपन्यासो में समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रुपताओं तथा विषमताओं पर कटु प्रहार किया है । परसाईजी ने समाज के भीतर घुसकर उसके विविध सत्यों का उद्‍घाटन किया है ।''[६१] समाज तथा राजनीति में व्यक्ति विसंगतियों पर परसाईजी की सूक्ष्म पकड़ है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के भारत का सम्पूर्ण दर्शन प्रेमचन्दजी की रचनाओं में होता है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारत का दर्शन हमें परसाईजी की रचनाओं में ही होता है । यह इतना सहज एवं आसान नहीं है, बलिक इसके लिए सूक्ष्म अवलोकन दृष्टि चाहिए । इसी कारण हम कह सकते है कि परसाईजी के उपन्यास न केवल रुचिकर बल्कि पथ–प्रदर्शक भी है । यह सर्वथा सत्य है कि परसाईजी के उपन्यास तत्कालीन समाज का दर्पण है – जिसमें हम समाज के अनेकानेक चित्र देख सकते है । परसाईजी चतुर चितेरे की भाँति स्थिति का अवलोकन करके उसकी तस्वीर प्रस्तुत करते है । इसी लिए उनके चित्र यथार्थ और सजीव होते है ।

सारांशतः कहा जा सकता है कि परसाईजी के कुल तीन उपन्यास है । चौथा अपूर्ण उपन्यास है । उनके तीनों उपन्यास बड़े ही रोचक एवं सादेश्य

है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि परसाईजी के उपन्यास 'ज्वाला और जल' से 'रिटायर्ड भगवान की कथा' (अपूर्ण) तक एक दृष्टिपात करें तो कथ्य और शैली की प्रौढता क्रमशः सहज ही देखी जा सकती है । प्रथम उपन्यास 'ज्वाला और जल' की कथा का प्रस्तुतिकरण जहाँ सीधा और सरल है वहीं अंतिम अपूर्ण उपन्यास की कथा में व्यापक परिवेश को प्रस्तुत किये जाने की तैयारी है । प्रारंभिक उपन्यास जहाँ सहज उद्‌देश्यपूर्ण कथा है वहाँ अंतिम उपन्यास तक आते आते फन्तासी तथा व्यंग्य पूरी तरह छा जाते है । वैसे उपन्यास की सीमायें अनेको होती है और उसी प्रकार उसका रूप कुछ विराट भी होता है । परसाईजी की प्रतिभा एवं उनके लेखन की आवश्यकताओं के अनुकूल विधा निबन्ध है, जिसे वे पहचान चुके थे, क्योंकि निबन्ध लिखने में लेखक के विचारों को स्वतंत्रता मिलती है । इसी कारण परसाईजी ने इन उपन्यासों को लिखने के बाद जान लिया कि उपन्यास विधा उनकी लेखनी के अनुकूल नहीं है । अतः उन्होंने फिर कोई उपन्यास नहीं लिखा । एक उपन्यास जो अपूर्ण था, उसे भी वे पुरा नहीं कर पाये । परसाईजी ने इन तीन उपन्यास के बाद फेंटेसी लिखी, बहुत से निबन्ध लिखे, स्तम्भ लिखे और अन्य पत्र-डायरी आदि साहित्य भी लिखा लेकिन फिर कभी कोई विवरणात्मक उपन्यास नहीं लिखा, क्योंकि विवरणात्मक शैली और उपन्यास विधा परसाईजी जैसे महान लेखक के अनुकूल नहीं थी । फिर भी हिन्दी साहित्य में उनका ये तीनो उपन्यासो के द्वारा बहुत बड़ा योगदान है । स्वातंत्र्योत्तर युग में आधुनिक उपन्यासों में परसाईजी के इन व्यंग्यात्मक लघु उपन्यासों की सफलता महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक है । उनके ये तीन उपन्यास यह साबित कर देते है कि परसाईजी एक चैतन्य रचनाकार है तथा गद्य की सभी विधाओं पर उन्होंने सफलतापूर्वक लेखनी चलायी है ।

❀ सन्दर्भ सूची :

क्रम	*पुस्तक – लेखक*	*पृष्ठ*
१.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा	६१३
२.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य – डॉ. महेन्द्र भटनागर	४
३.	हिन्दी का पहला उपन्यास 'परीक्षागुरु' – श्री प्रकाश	१२
४.	प्रेमचंदपूर्व हिन्दी के जासूसी व तिलस्मी उपन्यास – डॉ. कृष्णा मजीठिया	२३
५.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा	६१६
६.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य – डॉ. महेन्द्र भटनागर	५
७.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा	६१६
८.	प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास – डॉ. शिवकुमार मिश्र	६७
९.	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. वार्ष्णेय	८७
१०.	विवेक के रंग – नेमीचन्द्र जैन	२९७
११.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा	६३०
१२.	हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास – राजनाथ शर्मा	८२४
१३.	हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास – रामप्रसाद मिश्र	२३३
१४.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा	६३०
१५.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा (डॉ. गणेशन का संदर्भ)	६३०
१६.	समकालीन हिन्दी व्यंग्य एक परिदृश्य – सुदर्शन मजीठिया	७
१७.	समकालीन हिन्दी व्यंग्य एक परिदृश्य – सुदर्शन मजीठिया (डॉ. विनीत गोस्वामी) स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य और व्यंग्य)	१४६
१८.	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाइ और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	५१
१९.	आँखन देखी – डॉ. कांतिकुमार जैन	१०६
२०.	परसाई रचनावली – भाग–६ श्री हरिशंकर परसाई	२३८

२१.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	५६
२२.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	१२४
२३.	हरिशंकर परसाइ व्यक्तित्व एवं कृतित्व – डॉ. मनोहर देवलिया	१०४
२४.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	६३
२५.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	५६
२६.	परसाई की सृजनात्मकता – डॉ. मालमसिंह	२१०
२७.	परसाई की सृजनात्मकता – डॉ. मालमसिंह	२१३
२८.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	५७
२९.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	१२५
३०.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	१०८
३१.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	१२४
३२.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	६४
३३.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	५९
३४.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	१२५
३५.	युगसाक्षी हरिशंकर परसाई – डॉ. सीता किशोर	३४२
३६.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	६३-१२५
३७.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	६३-१२५
३८.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'तट की खोज'	११८
३९.	आँखन देखी – भगीरथ मिश्र	४४८
४०.	परसाई रचनावली – भाग–६ – 'लेखकीय'	२३८
४१.	आँखन देखी – गुलाबसिंह	१४७
४२.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	७०
४३.	परसाई की सृजनात्मकता – डॉ. मालमसिंह	१८८
४४.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१९
४५.	हरिशंकर परसाई और नागफनी की कहानी – डॉ. नन्दलाल कल्ला	१२०

४६.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	७६
४७.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१५
४८.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१८
४९.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१७
५०.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१६
५१.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१६
५२.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	५१
५३.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	६६
५४.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	२१
५५.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	२०
५६.	परसाई की सृजनात्मकता – डॉ. मालमसिंह	१६२
५७.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	७६
५८.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	२०
५९.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	३१
६०.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	५३
६१.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	६६
६२.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	७५
६३.	हरिशंकर परसाई और नागफनी की कहानी – डॉ. नन्दलाल कल्ला	११४
६४.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१६
६५.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	५६
६६.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१६
६७.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	२६
६८.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	२४
६९.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	२३
७०.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	१३

७१.	परसाई रचनावली – भाग–२ – 'रानी नागफनी की कहानी'	३६
७२.	परसाई रचनावली – भाग–६ – 'लेखकीय'	२३८
७३.	परसाई रचनावली – भाग–६ – 'रिटायर्ड भगवान की कथा'	२५६
७४.	परसाई रचनावली – भाग–६ – 'रिटायर्ड भगवान की कथा'	२६१
७५.	परसाई रचनावली – भाग–६ – 'रिटायर्ड भगवान की कथा'	२६४
७६.	परसाई रचनावली – भाग–६ – 'रिटायर्ड भगवान की कथा'	२७३
७७.	परसाई रचनावली – भाग–६ – 'रिटायर्ड भगवान की कथा'	२७८
७८.	'ज्वाला और जल' – प्रभाकर श्रोत्रिय निदेशक – भारतीय ज्ञानपीठ	५
७९.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	८
८०.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	७
८१.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	१२
८२.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	११
८३.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	१८
८४.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	५३
८५.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	३६
८६.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	२०
८७.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	३४
८८.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	४०
८९.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	१५-४०
९०.	'ज्वाला और जल' – हरिशंकर परसाई	५६
९१.	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	६२

❀❀❀

चतुर्थ अध्याय
‘‘कहानीकार हरिशंकर परसाई’’

- विषय प्रवेश
- हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास
- हिन्दी कहानी : विभिन्न आंदोलन
- हिन्दी कहानी और हरिशंकर परसाई
- परसाईजी की कहानियाँ
- वर्गीकृत अध्ययन
- स्वरूपगत अध्ययन
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

चतुर्थ अध्याय
''कहानीकार हरिशंकर परसाई''

❀ विषय प्रवेश

मनुष्य का प्रारंभिक साहित्य कथा–प्रधान रहा है । उस समय कथा किसी घटना का रोचक वर्णन नहीं थी । वह मात्र मनोरंजन प्रदान करने का साधन भी नहीं थी, बल्कि मानव जीवन के दैनिक व्यवहार में दृष्टांत और उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती थी । कथा की यह प्रवृत्ति अत्यधिक लोकप्रिय थी । छोटे बच्चे अपनी दादी–नानी से प्रौढ़ और युवक कथावाचकों से कहानियाँ सुना करते थें । हमारे प्राचीन साहित्य, वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि तथा बौद्ध एवं जैन धर्मग्रंथों में जातक कथाओं, उपकथाओं की भरमार मिलती है । इनमें उपलब्ध कहानियों का उद्देश्य नीति की शिक्षा प्रदान करना था, जिनसे मनोरंजन भी हो जाता था । युग के बदलाव के साथ–साथ आज के कहानी साहित्य में मानवीय संवेदनाओं, उसकी समता विषमताओं आदि का चित्रण होने लगा है । क्योंकि कहानी साहित्य हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की समस्याओं को परस्पर समान संबंधों में पड़कर जीवन बिताने के माध्यम से दर्शन करने का एक विशेष प्रकार का कलात्मक रूपविधान है । डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना कहानी के विषय में लिखते है, ''कहानी मानवीय संवेदना की घटनात्मक अभिव्यक्ति का नाम है । इसमें कहानीकार जीवन के किसी एक तथ्य या मर्म की अभिव्यंजना करता है, जीवन के किसी लक्ष्य का उद्घाटन करता है, अपनी आन्तरिक अनुभूति को वाणी देता है और अपने भोगे हुए क्षणों को घटनात्मक स्थितियों के माध्यम से व्यक्त करता है ।''[१] इस तरह कहानी मानव–जीवन की घटनाओं और संवेदनाओं के साथ

जुडी हुई है । हिन्दी में कहानी का विकास अत्यंत विशाल एवं सराहनीय हुआ है । हिन्दी, कहानी के इतिहास पर एक दृष्टि की जाए ।

❀ हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास :

वैसे तो मानव–समाज में कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति आदिमकाल से चली आ रही है और प्राचीन भाषाओं के साहित्य में इसकी परंपरा भी सुरक्षित है, किन्तु हिन्दी में कथा–साहित्य का आविर्भाव २०वीं शताब्दी की देन है । श्री जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल लिखते है, ‘‘हिन्दी में प्रारंभ के समय कहानियों का रूप अंग्रेजी और संस्कृत से नाटकों एवं कहानियों का रूपांतर मात्र ही था । इन कहानियों का उद्देश्य केवल लोकरंजन ही था, अतः इन कहानियों में लोकरंजन तत्त्व का प्राधान्य है । उन लेखकों ने अंग्रेजी और संस्कृत नाट्‌य एवं कथासाहित्य से ऐसे ही प्रसंगो की कथाओं को चुना है, जिसमें कथानक का विकास दैवी घटनाओं और संयोग से होता है और इस प्रकार पाठकों की कुतूहल वृत्ति को विकसित करके चरमबिन्दु तक ले जाकर उसकी संतुष्टि का प्रयत्न है । धीरे–धीरे हिन्दी में मौलिक कहानियों का सृजन होने लगा और अस्वाभाविक एवं अतिमानुषिक प्रसंगों से भरी कहानियों का स्थान जीवन में घटित होनेवाली साधारण घटनाओं को लेकर चलनेवाली कहानियों ने ले लिया । यहीं से आधुनिक युग की हिन्दी की साहित्यिक कहानी का प्रारंभ माना जा सकता है ।’’[२]

भारतीय साहित्य में वेदों, उपनिषदों, संस्कृत और बौद्ध जातकों में अनेक कहानियाँ देखने को मिलती है । हिन्दी के मध्ययुग में भी कई कहानियाँ लिखी गई, जिन पर फारसी के वासनात्मक प्रेम का प्रभाव स्पष्ट है । कुछ आलोचकों ने इंशा अल्ला खाँ की ‘रानी केतकी की कहानी’ को हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी माना है, किन्तु सच यह है कि उसमें आधुनिक कहानी के लक्षण ठीक नहीं बेठते । इसमें मध्यकालीन किस्सागोई की स्पष्ट छाप है और एक अजीब–सी सामाजिक तटस्थता है । इन कहानियों में आधुनिक कहानी की

किसी अविच्छिन्न परंपरा का प्रवर्तन भी नहीं हुआ । इस संदर्भ में श्री राजनाथ शर्मा लिखते हैं – ''आधुनिक कहानी समाज के प्रति प्रतिबद्ध है । परंतु हिन्दी की ये पुरानी कहानियाँ अपने सम–सामयिक समाज से तटस्थ और उदासीन थीं, क्योंकि ये प्राचीन कथा–ग्रंथों का ही रूपांतर मात्र थीं और इनके लेखकों में वह सामाजिक–चेतना नहीं थी जो प्राचीन कथानकों को अपने सम–सामयिक संदर्भ में रूपायित करने की प्रेरणा प्रदान करती है । ये कहानियाँ एक प्रकार से प्राचीन नीति–वाक्यों का कथात्मक रूपांतर मात्र थी, इसलिए उनमें सम–सामयिक सामाजिक चित्रण उपेक्षित रहा । अतः उन्हें आधुनिक अर्थ में कहानी नहीं माना जा सकता ।''[3] सन् १९०० में प्रयाग में 'सरस्वती पत्रिका' का प्रकाशन हुआ, जिसमें अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई गोस्वामी किशोरीलाल की 'इन्दुमती', 'गुलबहार', मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुडैल', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी', बंग महिला की 'दुलाईवाली', वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखी बन्ध भाई', मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला', 'निन्यानवे का फेर' आदि । हिन्दी के कुछ विद्वानों ने गोस्वामी किशोरीलाल की 'इन्दुमती' को हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी स्वीकार किया है, जबकि कतिपय अन्य विद्वानों ने उक्त कहानी पर शैक्सपीयर के 'धी टैम्पैस्ट' नाटक का अत्यधिक प्रभाव दर्शाते हुए बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी को हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी सिद्ध किया है । श्री शिवकुमार शर्मा इस संदर्भ में लिखते है – ''इस विवाद में न पड़ते हुए यह कहा जा सकता है कि उक्त सभी कहानियों में आधुनिक कहानी के तत्त्व सम्यक् रूप से सन्निविष्ट नहीं है और न इनसे आधुनिक कहानी के विकास में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान मिला है । इस प्रयोगात्मक युग में हिन्दी साहित्य के अन्य अंगों के समान कहानी क्षेत्र में भी अनुवादों और अनुकरणात्मकता की प्रवृत्ति का प्राधन्य रहा, न तो अरंभ के इस काल में इस क्षेत्र में किसी नवीन प्रतिभा का उदय हुआ और न ही किसी मूल्यवान रचना की सृष्टि । अंग्रेजी, संस्कृत तथा बंगला साहित्य की कहानियों का अनुवाद

धड़ाधड़ हुआ । वस्तुतः आधुनिक हिन्दी कहानी के श्री गणेश और उसके विकास का इतिहास प्रसाद और प्रेमचंद के उदय से संबद्ध है ।''[४] इस तरह देखा जाय तो हिन्दी कहानी के प्रारंभिक समय में जो कहानियाँ लिखी गई, वो कहानियाँ सामाजिक जीवन में घटित होनेवाली साधारण घटनाओं पर आधारित है । इनमें कल्पना और यथार्थ का मिश्रित रूप मिलता है । हिन्दी कहानी साहित्य का आरंभ यथार्थवादी कल्पना-प्रसूत कहानियों द्वारा हुआ । इनमें दैवी घटनाओं और संयोग को प्रमुख स्थान दिया गया । कुछ समय तक इसी प्रकार की कहानियाँ लिखी जाती रही । यह काल एक प्रकार से हिन्दी कहानी का प्रयोगकाल था । इस काल से आगे हिन्दी कहानी की प्रगति को हम तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं ।

(१) प्रसाद प्रेमचंद युग
(२) परवर्ती युग
(३) स्वातंत्र्योत्तर युग

हिन्दी कहानी साहित्य में ये तीनों काल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाये हुए है । इन कालों को विस्तृत रूप से देखा जाय ।

(१) प्रसाद प्रेमचंद युग :

सन् १९११-१२ से लेकर प्रवर्तमान अत्याधुनिक युग तक हिन्दी कहानी साहित्य विषय व्यापकता, गंभीरता, कलात्मकता एवं शिल्प-विधान की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध तथा उच्च बन पाया है । इसकी उच्चता तथा समृद्धि में शताधिक प्रतिभाओं तथा उनकी अमूल्य कृतियों ने योगदान दिया है । इन महान प्रतिभाओं में दो नाम महत्त्वपूर्ण माने जाते है, श्री जयशंकर प्रसाद एवं मुन्शी प्रेमचंदजी । हिन्दी कहानी के विकास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ जयशंकर प्रसाद की 'इन्दु' मासिक पत्रिका में सन् १९११ में प्रकाशित 'ग्राम' नामक कहानी से उपस्थित होता है । श्री राजनाथ शर्मा लिखते है, ''हिन्दी कहानी कला के विकास की दृष्टि से 'इन्दु' द्वारा जयशंकर प्रसाद, 'सरस्वती', द्वारा

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और 'हिन्दी गल्पमाला' द्वारा इलाचन्द जोशी के अभ्युदय ने, समष्टि रूप से हिन्दी कहानी के एक नए और अपूर्व स्वस्थ युग द्वार को खोला । 'इन्दु' के प्रकाशन ने द्विवेदीकालीन एकरसता के अन्त का आभास दिया । रचनात्मक साहित्य के लिए यह पत्रिका अत्यंत उर्वर प्रमाणित हुई । प्रसाद के इस क्षेत्र में आने से हिन्दी कहानी का भाग्य चमक उठा ।''[५] प्रसादजी की कहानियों के पाँच संग्रह उपलब्ध है, 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' । इनकी प्रारंभिक रचनाओं पर बंगला का प्रभाव स्पष्ट है । प्रसादजी मूलतः प्रेम और सौंदर्य के कवि है । अतः उनकी यह काव्यात्मकता नाटकों के समान कहानियों में सर्वत्र मिलती है । उनकी कहानी–कला के संबंध में श्री शिवकुमार शर्मा लिखते है – ''प्रसाद के भावमूलक परंपरा के अधिष्ठाता होने के नाते उनकी कहानियों में स्थूल समस्याओं का अंकन कम हुआ है । उनमें भावनाओं की सूक्ष्मता और वातावरण की सघनता है । उनकी कहानियों में घटनाचक्र धुँधला ही रहता है । कथानक की स्थूल रेखायें उभर नहीं पाती, पर वातावरण की सघनता में पात्र हमारे आंतरिक मर्म को छूते हैं ।... इनकी कहानियों में आदर्श और भारतीय दर्शन का समन्वय मिलता है । भावुकता की दृष्टि से हिन्दी कहानी क्षेत्र में प्रसादजी का स्थान विशिष्ट है ।''[६] प्रसादजी के समय के अन्य उल्लेखनीय कहानीकारों में राधिकारमण प्रसादसिंह ('कानों में कंगना'), 'विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक ('रक्षाबंधन'), ज्वालादत्त शर्मा ('विधवा', 'तस्कर') आदि है ।

प्रेमचंदजी उपन्यास क्षेत्र में जितने महान है, कहानी क्षेत्र में उससे भी कहीं अधिक महान हैं । वे कहानी क्षेत्र में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परंपरा के प्रतिष्ठापक है, जबकि प्रसादजी भावमूलक परंपरा के । प्रेमचंदजी ने उर्दू में कहानियाँ लिखना बहुत पहले आरंभ कर दिया था, किन्तु हिन्दी में उनकी सर्वप्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रसादजी की 'ग्राम' कहानी से पाँच साल बाद में प्रकाशित हुई । हिन्दी में प्रेमचंदजी ने तीन सौ से भी अधिक कहानियाँ

लिखी जो कि लगभग बीस–पच्चीस संग्रहों में प्रकाशित हुई । प्रेमचंदजी एकमानवतावादी एवं उपयोगितावादी कहानीकार है । उनकी सभी प्रकार की घटना प्रधान, चरित्र–प्रधान, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कहानियाँ सोद्देश्य है । विषय व्यापकता चरित्र–चित्रण की सूक्ष्मता, विचार एवं भावगंभीरता, प्रवाहपूर्ण सुबोधशैली, मुहावरामयी जबानदानी एवं लोक संग्रह की भावना से प्रेमचंदजी की कहानियाँ अद्वितीय बन पड़ी है । उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ 'पंच परमेश्वर', 'आत्माराम', 'बड़े घर की बेटी', 'शतरंज के खिलाडी', 'वज्रपात', 'रानी सारंध्री', 'अलग्योझा', 'ईदगाह', 'अग्नि समाधि', 'पूस की रात', 'सुनान भक्त', 'कफन' आदि पर हिन्दी जगत को गर्व है और इन्हें विश्व की श्रेष्ठ कहानियों की तुलना में निःसंकोच रखा जा सकता है । प्रेमचंदजी की कहानियों के विषय में श्री गणपतिचन्द गुप्त लिखते है, ''प्रेमचंदजी की कहानियों में जन–साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का चित्रण मार्मिक रूप में हुआ । वे साधारण से साधारण बात को भी मर्म–स्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में सिद्धहस्त थे ।... उनकी शैली में ऐसी सरलता, स्वाभाविकता एवं रोचकता मिलती है, जो पाठक के हृदय को उद्वेलित करने में समर्थ हो सके । उनकी सभी कहानियाँ सोद्देश्य है । ... भाव और विचार, कला और प्रचार का सुन्दर समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रेमचंद का कहानी–साहित्य है ।''[७]

प्रेमचंदजी के समकालीन कहानीकारों में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान हिन्दी कहानी में बहुत ऊँचा है । गुलेरीजी केवल तीन कहानियाँ, बल्कि केवल एक कहानी 'उसने कहा था' को लिखकर हिन्दी जगत में अमर हो गए है । 'उसने कहाथा' विश्व विख्यात कहानियों में से एक है और हिन्दी कहानी परंपरा में एक माईलस्टोन है । अन्य कहानीकारों में पं. बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन' ('हार की जीत'), 'पांडेय बेचेनशर्मा 'उग्र' ('चिनगारियाँ'), आचार्य चतुरसेन शास्त्री ('रंजकरण', 'अक्षत'), सियाराम शरण गुप्त ('मानुषी'), राधिकारमण प्रसाद सिंह ('गांधी टोपी'), सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ('लिली', 'सखी', 'चतुरीचमार')

इत्यादि है । इस प्रकार हम देखते है कि प्रसाद–प्रेमचंद युग के कहानी साहित्य में सामाजिक समस्याओं को ही प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है । इनमें पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का चित्रण हुआ है । शैली की दृष्टि से इस युग की कहानियाँ प्रायः सुगठित एवं संतुलित है । इस युग के कहानीकारों की कहानियों ने अपनी सामाजिक चेतना और तीखेपन के कारण एक नई हलचल उत्पन्न कर दी थी । प्रसादजी, गुलेरीजी और प्रेमचंदजी का अभ्युदय हिन्दी–कहानी, कला की अनन्त साधना के फलस्वरूप था । संक्षेप में प्रेमचंदजी और प्रसादजी इन दो महान कथा–शिल्पियों द्वारा पृथृक् और अनन्य कला, संस्थानो के निर्माण हुए, जिनके अंतर्गत हिन्दी के अनेकानेक विकास युगीन कहानीकारों ने अपनी कलाकृतियाँ दीं ।

(२) परवर्ती युग :

प्रसाद प्रेमचंदोतर युग में हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात होता है । श्री गणपतिचन्द गुप्त लिखते है, ''सन् १९३० के लगभग हिन्दी कहानी–साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवादिता के स्थान पर यथार्थवादिता, सामाजिकता के स्थान पर वैयक्तिकता तथा राजनीति और धर्म के स्थान पर मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण की प्रतिष्ठा होने लगी । यद्यपि कहानी की पुरानी परंपराओं का एकाएक लोप नहीं हो गया, पर उनके साथ ही अनेक कई परंपराओं का उदय एवं विकास हुआ ।''[८] इस परवर्ती काल में कहानी–साहित्य में विषय–वैविध्य देखने को मिलता है । विभिन्न परंपरा एवं विभिन्न विचारों को लेकर कहानियाँ लिखी गई । मुख्यरूप से निम्नांकित प्रवृत्तियों पर कहानियाँ लिखी गई :

(१) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

(२) यथार्थवादी सामाजिक कहानियाँ

(३) प्रगतिवादी कहानियाँ

(४) ऐतिहासिक, सांस्कृतिक कहानियाँ

(५) हास्य, व्यंग्यात्मक कहानियाँ

(६) साहसिक परंपरा से संबद्ध कहानियाँ

इस युग में इन विषय–वैविध्य को लेकर कई कहानीकारों ने अपनी लेखनी से उत्तम कहानियाँ हिन्दी साहित्य को प्रदान की ।

सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक कहानीधारा के अंतर्गत अतीव महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय कहानीकार है, जैनेन्द्र, ('वातायन', 'पाजेब'), भगवतीप्रसाद बाजपेयी ('हिलरि', 'पुष्करिणी)', भगवतीचरण वर्मा ('खिलते फूल', 'दो बाँके'), अज्ञेय ('विपथगा', 'परंपरा') इलाचन्द्र जोशी ('रोमांटिक छाया', 'आहुति') इत्यादि है । इस परंपरा की कहानियों में मानव–मन की विभिन्न प्रवृत्तियों, गुत्थियों एवं कुण्ठाओं का विश्लेषण आधुनिक मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण के आधार पर हुआ है, जिनमें समष्टिवादी दृष्टि के स्थान पर व्यक्तिवादी दृष्टि को प्रमुखता प्राप्त हुई है ।

यथार्थवादी सामाजिक कहानी लिखनेवाले कहानीकारों ने आधुनिक समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं का उद्घाटन यथार्थपरक दृष्टिकोण से किया है । इनमें मुख्यरूप से चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ('चन्द्रकला', 'भय का राज्य'), उपेन्द्रनाथ अश्क ('निशानियाँ', 'दो धारा'), राम प्रसाद पहाडी ('सफर', 'अधूरा चित्र'), डॉ. सत्यप्रकाश संगर ('नयामार्ग', 'अवगुण्ठन'), 'देवीदयाल चतुर्वेदी ('अन्तर्ज्वाला'), 'राजेश्वर प्रसादसिंह, ('कलंक') इत्यादि सभी कहानीकार सिरमौर है । इन कहानीकारों के विषय में श्री जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल लिखते है, – ''यथार्थ इनका साधन रहा है और सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए आक्रोश एवं करुणा जाग्रत करना साध्य । इन्होंने समाज की बहुत सी समस्याओं को कथानकबद्ध किया है । इन्होंने परिवर्तित परिस्थितियों में प्राचीन रुढ़ियों का खंडन नहीं किया, वरन् स्त्री–पुरुष, वासना जातिगत, धर्मगत एवं रुढ़ियों एवं धारणाओं को नई कसौटी पर कसकर देखा है । और उसके लिए कहीं तीव्र व्यंग्य किया है तो कहीं करुणा की धारा प्रवाहित की है ।''[६]

प्रगतिवादी कहानीधारा में मुख्यतः यशपाल ('पिंजरे की उड़ान', 'वो दुनिया'), डॉ. रांगेय राघव (देवदासी', 'अँगारे न बुझे'), अमृतराय, मम्मथनाथ गुप्त, ख्वाजा अहमद अब्बास, कृष्णचंद, श्री कृष्णदास आदि कहानीकारों को स्थान दिया जा सकता है । प्रगतिवादी कहानी परंपरा के विषय में श्री राजनाथ शर्मा लिखते है, ''प्रगतिवादी कहानियों की यह परंपरा प्रेमचंद के उपरांत आरंभ हुई थी और आज तक निरंतर सशक्त रूप में चली आ रही हे । इस नवीन परंपरा ने हिन्दी कहानी को पुराने आदर्शवादी और यथार्थवादी मोहजाल से मुक्त कर उसे एक नई दिशा प्रदान करते हुए समाज के यथार्थ चित्र अंकित करने के लिए प्रेरित किया था । नए कहानीकारों को एक वैज्ञानिक, स्वस्थ सामाजिक और आर्थिक दृष्टि प्रदान की थी जिससे कहानी का रूप स्वस्थ, अधिक सशक्त और प्रभावशाली बन गया था ।''[१०] इस परंपरा के सभी कहानीकारों ने पूँजीवादी सभ्यता के दोषो, शोषक एवं शोषित वर्ग के जीवन की परिस्थितियों से संबंधित विभिन्न पक्षों का उद्घाटन अपनी कहानियों में किया है ।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपरा के अंतर्गत उल्लेखनीय कहानीकार है – वृन्दावनलाल वर्मा ('कलाकार का दण्ड'), राहुल सांकृत्यायन ('वोल्गा से गंगा तक'), भगवतशरण उपाध्याय इत्यादि । इन सभी कहानीकारों ने अपनी विभिन्न कहानियों में अतीत की घटनाओं, परिस्थितियों एवं वातावरण का चित्रण सजीव रूप में किया है । ऐसी कहानियाँ लिखने की परंपरा को ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपरा कहा गया ।

हास्य व्यंग्य को लेकर कहानी लिखने वाले लेखकों में चर्चा योग्य कहानीकार है, जी. पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर परसाई, अजीम बेग चुगताई, अन्न पूर्णानन्द, कान्तानाथ पांडेय, 'चोंच', 'राधाकृष्ण, श्री निवास जोशी, रघुकुल तिलक, काशीनाथ उपाध्याय इत्यादि अनेकों कहानीकारों ने समाज के विभिन्न पक्षों पर रोचक व्यंग्यात्मक कहानियाँ लिखी है । इन कहानीकारों ने हास्य और व्यंग्य का आलंबन बनाते हुए आधुनिक जीवन की आलोचना भी प्रस्तुत की है ।

ऐसे ही कुछ लेखकों ने युद्ध, क्रान्ति, शिकार संबंधी साहसिक विषयों को लेकर भी कहानियों की रचना की है । इस परंपरा के कहानीकारों में श्रीराम शर्मा, प्रभाकर माचवे, मोहनसिंह सेंगर, श्रीनाथ सिंह, गणेश पांडेय, राजबहादुरसिंह, रघुवीरसिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी इत्यादि प्रमुख है । प्रेमचंदोतर कहानी साहित्य में जो विविधता एवं आधुनिकता दिखाई देती है, जो विषय–वैविध्य मिलता है, उसके विकास के संदर्भ में पत्र–पत्रिकाओं के महत्त्व को श्री शिवकुमार शर्मा इस प्रकार वर्णित करते हैं – "हिन्दी कहानी के इस अल्पकालीन विपुल प्रसार, विकास और आशातीत अभिवृद्धि में पत्र–पत्रिकाओं ने भी कोई कम योग नहीं दिया । मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों में कहानियाँ धड़ाधड़ छपी । कुछ पत्रिकायें तो केवल कहानियों की ही है । इन पत्रिकाओं ने हिन्दी के अनेक कहानीकारों को प्रेरणा दी तथा हिन्दी कहानी के असंख्य पाठक पैदा किये । हिन्दी कहानी के विकास में सरस्वती, चाँद, इन्दु, माया, कहानी और सरित, मनोरमा आदि पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है ।"[११] ऐसे ही इस परवर्ती युग से आगे चलकर हिन्दी कहानी, स्वातंत्र्योत्तर युग में अनेकों नवीन सोपान सर करती है, जिस पर एक दृष्टि की जाए ।

(३) स्वातंत्र्योत्तर युग बनाम विभिन्न आंदोलन :

स्वातंत्र्यतोर युग में कहानी ने अपना रूप बदला । पहले उपन्यास की भाँति कहानी में भी छः तत्त्वो के निर्वाह का नियम था । अपितु आधुनिक काल में कथ्य और शिल्प की नवीनता के कारण हिन्दी साहित्य में नई कहानी ने जन्म लिया । इस तरह स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य में युग–चेतना प्रस्फुटित हुई । स्वतंत्रता से पूर्व की हिन्दी कहानी की परंपरा में इस युग में मोड़ आया । यह क्रांतिकारी परिवर्तन इतना प्रभावशाली हुआ कि इसकी तुलना में पूर्ववर्ती कहानी प्राचीन–सी हो गई और यह कहानी उससे वैभिन्य रखने के

कारण, उसकी अपेक्षा में नई कहानी कहलाई । स्वातंत्र्योत्तर युग में आये कहानी के बदलाव पर दृष्टिपात किया जाए ।

➢ नई कहानी :

सन् १९५० के अनंतर हिन्दी कहानी के क्षेत्र में एक नये आंदोलन का प्रवर्तन हुआ जिसे 'नई कहानी' आंदोलन की संज्ञा दी गयी । नई कहानी में नवीनता का बोध था । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देशविभाजन से हुए सांप्रदायिक फसाद, शरणार्थियों की समस्या, सामंतवादी, अलगाव का कुटिल षडयंत्र, प्रजातंत्रीय व्यवस्था और सामन्तवादी जीवनमूल्यो की टकराहट आदि समस्याओं से धूमिल मानसिकता में इस नयी कहानी का उद्भव हुआ । इस आंदोलन के उन्नायको में श्री राजेन्द्र यादव, निर्मलवर्मा, कमलेश्वर, मोहनराकेश इत्यादि ने घोषित किया कि नई कहानी का लक्ष्य नये भाव-बोध या आधुनिकता बोध पर आधारित जीवन के यथार्थ अनुभव का चित्रण करना है । नई कहानी के संदर्भ में श्री राजेन्द्र यादव यथार्थ लिखते हैं – "नई कहानी परिवेश के माध्यम से व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम से परिवेश को पाने की एक प्रक्रिया है और हर कथाकार ने इस प्रक्रिया को अपने ढंग से ग्रहण किया है इसलिए उसकी विविधता और अलगपने ने बहुत लोगों को संकट में डाल दिया है और वे उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं कर पाते । परिभाषाओं से साहित्य को समझनेवालों के लिए यह सचमुच ही एक दुःखद और विकट स्थिति है, जिसका सामना उन्होंने शायद कभी नहीं किया । हर कहानीकार का कथन और उसके निर्वाह का ढंग तो अलग है ही, परिवेश भी इतना विस्तृत है कि बहुतों की निगाह धुंधला जाती है । इसमें जहाँ फणीश्वरनाथ रेणु की आँचलिकता और मार्कण्डेय, शिव प्रसादसिंह, अवधनारायण सिंह के ग्राम है, वहीं दूसरी और उषा प्रियंवदा, निर्मल वर्मा, विजय चौहान की अंतर्राष्ट्रीयता भी एक ओर नगर संकुल सभ्यता कमलेश्वर, मोहन राकेश, कृष्ण बलदेव बैद, भीष्म साहनी, अमरकान्त, रमेश बक्षी, दुधनाथसिंह, ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर, मन्नू

भंडारी, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी में आयी है, तो दूसरी ओर बस्तर के आदिवासियों और कुमारुं इत्यादि के पहाडी जीवन को शानी राजेन्द्र अवस्थी, शैलेश मटियानी, शिवानी, पानू खोलिया ने चित्रित किया है । वस्तुतः नई कहानी आज के जीवन जिसे आधुनिकता समकालीनता, कुछ भी कह लीजिए उसे विभिन्न स्तरों पर समझने, उसके अर्थ तलाश करने, सार्थकता निरर्थकता खोजने की कहानी है । इस प्रक्रिया में कहानी के स्वरूप, शिल्प, भाषा और स्वयं जीवन, उसके आपसी संबंधों के इतने अधिक रूप और उनकी छायाओं को वाणी मिली है कि लगता है आज शायद साहित्य की कोई दूसरी विधा इतनी सम्पन्न नहीं है ।''[१२] नयी कहानी में व्यक्तिवाद, यथार्थवाद, अनुभूतिवाद एवं जीवन, समाज और राष्ट्र के व्यापक परिवेश से कटकर कहानीकारों के वैयक्तिक जीवन की निजी सीमाओं से आबद्ध हो गयी । इसीलिए नई कहानी में व्यक्तिनिष्ठ अहं, काम चेतना, यौनाचार, नारी, पुरुष संबंधों का चित्रण प्रमुख रूप से हुआ है । वस्तुतः नयी कहानी में कथावस्तु एवं घटना का स्थान संवेदना और अनुभूति ने ले लिया ।

➢ सचेतन कहानी :

नयी कहानी आंदोलन की ही प्रतिक्रिया एवं प्रतिद्वंद्विता में 'सचेतन कहानी' आंदोलन का प्रवर्तन हुआ । इसके प्रवर्तक डॉ. महीपसिंह है । जिन्होंने अपनी पत्रिका 'संचेतना' के माध्यम से इस आंदोलन को आगे बढाया । सचेतन कहानी के विषय में श्री गणपतिचन्द्र गुप्त लिखते हैं, " 'सचेतन कहानी' में केवल मात्र संवेदनाओं का ही चित्रण नहीं, अपितु उससे संबंधित पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं का भी चित्रण प्रस्तुत किया गया है । इसलिए सामाजिक दृष्टि से भी सचेतन कहानी नयी कहानी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ एवं संतुलित एवं व्यापक दृष्टिकोण की परिचायक कही जा सकती है ।''[१३] 'सचेतन कहानी' लिखनेवाले प्रमुख कहानीकारों में महीपसिंह, मनहरचौहान, रामकुमार भ्रमर, सुखबीर, बलराज पण्डित, कुलभूषण, वेदराही,

मेहरुन्निसा परवेज आदि के नाम उल्लेखनीय है । वास्तव में सचेतन कहानी में सचेतना या विचारों की जागरुकता को विशेष महत्त्व दिया गया ।

➢ सहज कहानी :

'सहज कहानी' के प्रवर्तक अमृतराय थे । उन्होंने घोषित किया कि कहानी का लक्ष्य अपने कहानीपन को खोकर जीवन की प्रस्तुति सहज रूप में करते हुए उससे जीवन के कटु सत्यों और व्यवस्था की भ्रष्टता को उजागर करना है । वस्तुतः अमृतराय ने कहानी के क्षेत्र में व्यापक जीवन दृष्टि एवं सामाजिकता से अनुप्राणित दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा का प्रयास किया था, किन्तु संगठन और प्रचार के अभाव में वह सफल नहीं हो सका ।

➢ समकालीन कहानी :

'समकालीन कहानी' के प्रवर्तक गंगा प्रसाद विमल थे । उन्होंने 'समकालीन कहानी' में समकालीनता या आधुनिक बोध पर विशेषबल दिया, किन्तु यह आंदोलन विशेष आगे नहीं बढ पाया ।

➢ सक्रिय कहानी :

'सक्रिय कहानी' के आंदोलन को चलानेवाले कहानीकार राकेश वत्स थे । उन्होने 'सक्रिय कहानी' के अंतर्गत व्यक्ति की चेतनात्मक उर्जा एवं जीवन्तता पर अधिक जोर दिया, पर यह आंदोलन भी अधिक नहीं चल पाया ।

➢ अकहानी :

सातवे दशक के आंदोलन 'अकहानी' काफी चर्चास्पद रहा । जिस प्रकार कविता में क्रमशः नई कविता के पश्चात 'अकविता' का आगमन हुआ, लगभग उसी प्रकार कहानी में भी नई कहानी के बाद 'अकहानी' का प्रादुर्भाव हुआ । दोनो की मूल प्रेरणाएँ और प्रवृत्तियाँ भी लगभग एक जैसी थी । नयी कहानी का व्यक्तिनिष्ठ यथार्थवाद अकहानी में आकर घोर व्यक्तिवाद, अतियथार्थवाद और उच्छृंखल यौनवाद में परिवर्तित हो गया । इस धारा के प्रमुख कहानीकार

है, जगदीशचतुर्वेदीं, श्याम परमार, दूधनाथसिंह, गंगा प्रसाद विमल इत्यादि । अकहानी के कहानीकारों के विषय में श्री गणपतिचन्द्र गुप्त लिखते हैं – ''इन्हों ने कहानी को जीवन के समस्त मूल्यो, समाज के सभी उतरदायित्वों और नैतिकता के सभी प्रतिबंधों से मुक्त घोषित करते हुए उसमें निजी काम–संबंधो एवं यौन प्रवृत्तियों के उन्मुक्त चित्रण का समर्थन किया । इन्होंने न केवल नारी और पुरुष के उच्छृखंल संबंधो का चित्रण किया, अपितु समलैंगिक यौनाचार एवं विभिन्न पशुओं के साथ मनुष्य के अप्राकृतिक कामाचर का भी चित्रण निःसंकोच किया है । वस्तुतः कामवासना के जितने भी विकृत और भ्रष्ट रूप हो सकते हैं, उन सभी का प्रदर्शन इनके साहित्य में स्पष्ट रूप में हुआ है ।''[१४]

➢ समान्तर कहानी :

सातवें दशक में 'अकहानी' के समक्ष प्रतिक्रिया स्वरूप 'समान्तर कहानी' का आंदोलन हुआ, जिसके प्रवर्तक कमलेश्वर थे । कमलेश्वर ने 'अकहानी' की उच्छृखल भोगवादी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए 'समान्तर कहानी' आंदोलन का प्रवर्तन किया । समान्तर कहानी में मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय समाज की विभिन्न स्थितियों, विषमताओं एवं समस्याओं का अंकन सूक्ष्मतापूर्वक हुआ है । विशेषतः भूमिहीन किसानो, कल–कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों, बेरोजगार युवको तथा निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की जीवन की छोटी–छोटी आवश्यकताओं का भी चित्रण इस वर्ग की कहानियों में हुआ है । पुरुष और नारी के संबंधों का चित्रण भी इनमें स्वस्थ और संतुलित रूप में किया गया है । इस आंदोलन के मुख्य कहानीकारो में कमलेश्वर, कामतानाथ, रमेश उपाध्याय, मधुकरसिंह, नरेन्द्रंकोहनी, हिमांशु जोशी, सतीश जमाली, धर्मेन्द्रगुप्त इत्यादि प्रमुख है ।

हिन्दी कहानी के सातवें आठवें दशक में बहुत से परिवर्तन, विकास एवं नये जीवन मूल्य प्रकट हुए । इस विषय में डॉ. रमेश देशमुख लिखते हैं

– "स्वातंत्र्योत्तर कहानी में बदलते हुए जीवन मूल्यों का क्रमशः विकास होता गया है । सातवे दशक में विशेष रूप से हिन्दी कहानीकारों ने जीवन और स्थितियों के खंडन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है । किन्तु आठवाँ दशक इस दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है । इस दशक की कहानी में जीवन मूल्यों के विघटन का चित्रण और अधिक स्पष्ट हो गया है ।.... आठवें दशक की कहानियाँ हिन्दी कहानी के उज्जवल भविष्य की ओर संकेत करती है ।"[९५]

इस प्रकार हम देखते है कि स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी विभिन्न आंदोलनों के प्रभाव से निरंतर विकासोन्मुख होती गई । यद्यपि इससे संबंध सभी आंदोलन स्वस्थ दृष्टिकोण एवं व्यापक दृष्टि के परिचायक नहीं कहे जा सकते किन्तु फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनके प्रभाव से कहानी की गतिशीलता में अभिवृद्धि हुई । स्वतंत्र्योत्तर कहानी साहित्य के उतार–चढाव के विषय में श्री केशव कुमार बाजपेयी लिखते हैं – "स्वतंत्रता के पश्चात् कथासाहित्य के क्षेत्र में बदलाव आया । कहानी की मूल संवेदना तो आदमी के साथ ही जुड़ी लेकिन ग्रामों के साथ ही कस्बाई जीवन को भी नये कहानीकारों ने महत्त्व दिया । इसके साथ ही आँचलिक कहानी के माध्यम से जन जीवन के विराट क्षेत्र से चुनी कहानियों में अंचल विशेष की माटी की महक भी कहानियों में मिली । सातवे दशक के बाद राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक संस्थाओं में ह्यास की स्थिति आयी और स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनता में जो आशावाद दिखलायी पड़ा था, वह नये सतालोलुपों की गृद्धता के कारण समाप्त होने लगा । इस मोहभंग का यथार्थ चित्रण आठवे दशक के हिन्दी कहानीकारों ने किया । इसलिए इस दशक का कहानी साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है ।"[९६] इस तरह हिन्दी कहानी अतियथार्थवाद, भोगवाद एवं उच्छृंखलतावाद के चक्रव्यूह से निकलकर, व्यापक सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की और उन्मुख हुई । इसीलिए हम आज की कहानी में भारतीय गाँव शहर और नगर के जीवन से संबंधित विभिन्न वर्गो का चित्रण सहज स्वाभाविक रूप में देखते है । उसमें पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी

पक्षों का चित्रण न्यूनाधिक रूप में हुआ है । संक्षेप में हमारे कहानीकार केवल पश्चिम से आयातित विचारों, वादों एवं आंदोलनों से ही प्रेरणा एवं प्रभाव न ग्रहण करके भारतीय संस्कृति के व्यापक तत्त्वों एवं विवेकानन्द, अरविन्द, रवीन्द्र एवं गाँधी के उदात्त दर्शन को भी हृदयगम करते हुए लेखन के क्षेत्र में अपनी स्वतंत्र चेतना, व्यापक दृष्टि एवं सहज अनुभूतियों का परिचय दे, जिससे कि हिन्दी कहानी विश्व कथा साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना सके ।

❀ हिन्दी कहानी साहित्य और हरिशंकर परसाई :

हिन्दी कहानी साहित्य में आधुनिक युग की समस्याओं को दृष्टि समक्ष रखते हुए कथ्य और शिल्प की नवीनता के साथ नई कहानी, साठोत्तरी कहानी, समकालीन कहानी, व्यंग्यात्मक कहानी इत्यादि कई प्रकार की कहानियाँ लिखी गई और आज भी लिखी जाती है । साठोतरी कहानी के युग में कहानी में व्यंग्य द्वारा समाज की अनैतिकता को प्रदर्शित किया गया । व्यंग्यपूर्ण साहित्य का प्रादुर्भाव श्री हरिशंकर परसाई के साहित्य में विशेष रूप से देखा जाता है । वैसे तो हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से व्यंग्य कहने की परंपरा थी, परन्तु परसाईजी ने व्यंग्य को एक विधा का रूप दिया और उसीको माध्यम बनाकर उन्होंने व्यंयात्मक कहानियाँ लिखी । इस तरह साठोतरी कहानी साहित्य में व्यंग्य का नवीन रूप ग्रहण करके व्यंग्यात्मक कहानियाँ प्रचलित हुई । व्यंग्यात्मक कहानी लिखनेवाले प्रमुख कहानीकारो में हरिशंकर परसाई, रवीन्द्रनाथ त्यागी, अमृत नाहटा, नरेन्द्र कोहली, शरदजोशी इत्यादि उल्लेखनीय नाम है । इस दृष्टि से आधुनिक युग में कहानी की इस परंपरा में हरिशंकर परसाई का स्थान महत्त्वपूर्ण है । वैसे उनकी कहानियाँ कहानी साहित्य की तात्विक दृष्टि से नवीनतम है, उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा में नवीनतम प्रयोग किये है । नयी कहानी के बाद से लगभग तीन-चार दशकों तक फैली कहानी-यात्रा में किसी एक ही कहानीकार ने कहानी के रूप और उसकी संरचना में इतने अधिक प्रयोग नहीं किये हैं, जितने अकेले परसाईजी ने किये

है । परसाईजी की कहानियों के विषय में श्री धनन्जय वर्मा लिखते है, ''निबंध और टिप्पणियाँ, साक्षात्कार और संस्मरण, रिपोर्ताज और रेखाचित्रों के विधागत मोटिफ उनकी कहानियों में घुल–मिल गये हैं । पुराण कथा, दन्तकथा और मिथक, बैताल कथा, तिलस्मी और ऐय्यारी कथाएँ, प्रेमाख्यान और लोककथा, लोकवार्ता और स्वाँग, कपोल–कल्पना और कथामूलक फैन्टेसी, लघुकथाएँ और लम्बी कहानियाँ, औपन्यासिक और ऐतिहासिक दस्तावेज, नाटकीय विन्यास और कैरीकेचर, पैरोडी और अन्योक्ति, दृष्टांत और प्रतीक कथा, रूपक और सादृश्य गर्ज यह कि आदिकाल से लेकर अब तक, कहानी की विकास यात्रा का कौन–सा ऐसा रूप है, जो उनमें नहीं है ?... दरअसल इन सबके माध्यम से परसाई ने कहानी विधा की औपचारिक रूपगत जकड़न को जिस तरह तोडा है, उससे बरबस निराला की वह कलाचेष्टा याद आ जाती है, जिसे उन्होंने छंद की मुक्ति कहा था और उसे कविता की मुक्ति के लिए अनिवार्य सौंदर्यात्मक प्रयत्न माना था और अन्ततः उसे मनुष्य की मुक्ति से संयुक्त किया था । परसाई की कहानियों में भी कहानी की मुक्ति देखी जा सकती है ।''[७]

परसाईजी की कहानियाँ पाठकों के दिलो दिमाग में एक हलचल पैदा करती है । उनकी बाते और विचार पाठकों की चेतना और तमीज का हिस्सा बन जाते है और जिस प्रकार लोग लोककथाओं से अपने अनुभव और बात की पुष्टि करते है, उसी तरह परसाईजी की कहानियों से काम लेते हैं । ऐसे महान कहानीकार परसाईजी की कहानियों पर एक दृष्टि की जाए ।

❀ परसाईजी की कहानियाँ :

हिन्दी गद्य के देसी मिजाज और तेवर के लिए जिस तरह भारतेन्दु हरिश्चंद्र और बाल–कृष्ण भट्ट, बाल मुकुन्द गुप्त और प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमचंद और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी याद किये जाते हैं, उसी तरह परसाईजी का गद्य भी अपनी अनुगूँजों और आघातों के लिए याद किया जाता रहेगा ।

विशेषकर परसाईजी की कहानियों में स्थितियों का जो नाटकीय विन्यास और मोड होता है, जीवन क्रियाओं का जो गहन संघर्ष होता हैं, पात्रों की बातचीत में जो व्यंग्य और विनोद होता है, प्रसंगों का जो आरोह, अवरोह होता है, मनोदशाओं की जो स्थितियाँ होती है, वह पढ़नेवाले को महज दर्शक ही नहीं, अपने जीवन अनुभवों में भागीदार भी बना देता है । रचना में पाठक की इतनी गहरी तल्लीनता और हिस्सेदारी कम ही रचनाकार ले पाते है । यही उनकी कहानियों के प्रभाव की समग्रता, तीव्रता और एकान्वित का कारण है । परसाईजी की कहानियाँ जितनी सहज और सीधी है, उससे लोगों को यह गलत फहमी भी होती हैं कि उनका अनुभव संसार भी उतना ही सरल, सीधा और सपाट होगा । लेकिन लोग भूल जाते है कि सीधी और सहज लगनेवाली चीजें और आदमी अनुभव का कितना जटिल संसार एवं उसकी संश्लीष्ट बुनावट अपने भीतर समाये हुए होते हैं । अभिव्यक्ति की सहजता एक लम्बी रचना प्रक्रिया और अनुभव के दीर्घ संघर्ष का नतीजा होती है । सीधी और सहज भाषा एक बेहद परिपक्व, वयस्क और गहरे चिन्तन-मनन का नतीजा होती है । ऐसे वैशिष्ट्य से भरी परसाईजी की अर्थगांभीर्य पूर्ण कहानियों का हम वर्गीकृत अध्ययन करके मूल्यांकन करेंगे ।

❀ परसाईजी की कहानियों का वर्गीकृत अध्ययन :

परसाईजी की कहानियों के विषय में श्री जयप्रकाश यथार्थ लिखते है कि "व्यंग्य की केन्द्रीय स्थिति के अतिरिक्त परसाई की कहानियों में आधुनिक कहानी के प्रचलित गठन का प्रायः अभाव है । उसके नैन-नक्श बहुत अलग है । फिर भी अगर ये कहानियाँ यदि जानी पहचानी लगती है तो इसलिए कि उनके भीतर धडकता यथार्थ अपरिचित नहीं है । कमोवेश हम सब उसे जी रहे हैं । दरअसल परसाई की कहानियों में हम अपना ही चेहरा पहचान रहे होते है । वे बहुत सीधे अर्थ में मध्यवर्ग के गहन आत्म-साक्षात्कार की कहानियाँ हैं ।"[१८] परसाईजी ने बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं, ये सभी 'परसाई

रचनावली' में संकलित की गयी है । उन्होंने कहानी लिखते समय विभिन्न विषयों का चयन किया है । परसाईजी ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक इत्यादि सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कहानियाँ लिखी है । उनकी कहानियों की विषयवस्तु विस्तृत हैं, जिनमें विराटता दिखाई देती है । यहाँ हम विषय के आधार पर विभिन्न क्षेत्र पर लिख गयी उनकी कहानियों का वर्गीकृत अध्ययन करके मूल्यांकन करते है ।

(१) राजनैतिक कहानियाँ :

परसाईजी ने राजनैतिक विषयवस्तु पर बहुत सी कहानियाँ लिखी है । नयी कहानी की अंतर्वस्तु के विस्तार की दृष्टि से अपने समकालीन कहानीकारों के बीच परसाईजी की स्थिति ज्यादा ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । इस दौर के बहुत से कहानीकारों की तरह न तो कहीं वे स्त्री–पुरुष संबंधों के अंकन में उलझते हैं और न ही शिल्प की बारीकियों को लेकर परेशान मालूम होते है । इससे भिन्न उनकी कहानियाँ पतनशील बुर्जुआ समाज में मूल्यगत संक्रमण, वियर्पय और स्खलन की स्थिति में एक नैतिक हस्तक्षेप की हैसियत रखती दिखाई देती है । राजनीतिक भ्रष्टाचार और विसंगतियों की जितनी स्पष्ट और प्रामाणिक पहचान परसाईजी की कहानियों में मिलती है, उतनी उस दौर के कदाचित किसी दूसरे कहानीकार में नहीं मिलती । इसी कारण परसाईजी की कहानियों के आधार पर आजादी के बाद के भारत की एक मुकम्मिल तस्वीर आसानी से तैयार की जा सकती है, जिसमें राजनीति, शासनतंत्र, शिक्षा पद्धति, नौकरशाही और साहित्य एवं कला की विकृतियों के साथ शायद ही ऐसा कोई पक्ष होगा जो छूटा हो ।

परसाईजी की राजनीति से संबंधित कहानियों में 'भेड़ें और भेड़िये' कहानी में बूढ़ा सियार पूँजीपति राजनेता का प्रतीक है, जो अन्य बुद्धिजीवियों और अफसरों की मदद से निरीह जनता पर अपना कुशासन जमाये हुए है । जनता और नेता का संबंध भेड़ और भेड़िया का सा है । 'ग्राण्ट अभी तक

नहीं आयी' में जिस कॉलेज की ग्रान्ट नहीं आयी है, उसके अध्यापक मंत्री के तलुवे चाटते है । उसके आगे पीछे घूमते है और उसकी हाँ में हाँ मिलाते हैं । 'राजनीति का बँटवारा' कहानी में चालबाज राजनीतिज्ञ पार्टियों में शामिल करवा देता है ताकि कोई भी पार्टी जीते, उसका धंधा यथावत् चलता रहे । राजनीति का धंधे में अच्छा उपयोग है । 'लोहियावादी समाजवादी' कहानी में एक लोहियावादी समाजवादी है, जो नेहरु की तस्वीर उल्टी टाँगकर शीर्षासन करके उसे देखता है और कहता है, 'इस आदमी को समझने का यही तरीका है ।' 'सज्जन, दुर्जन और कांग्रेसजन' में सताधारी नेताओं की ऐयाशी पर व्यंग्य किया गया है । आदमी तीन तरह के होते हैं सज्जन, दुर्जन और कांग्रेसजन । अर्थात् कांग्रेसियों की कोटि निर्धारित नहीं की जा सकती । कांग्रेसी नेता इंटरव्यू में हर गंभीर प्रश्न के उतर में सिर्फ नहेरुजी की जय और चाचा नेहरु जिंदाबाद बोलते है । 'प्रजावादी समाजवादी' में नेताओं की कूहड़ मानसिकता और सताप्रियता को दर्शाया गया है । नेता बाबू जयप्रकाश नारायण के चित्र के आगे विलाप करता है कि हमने आपका साथ दिया, किन्तु आप ने सता नहीं दिलायी । 'चीनी डॉक्टर भागा' में एक देशभक्त भारत–चीन लड़ाई का फायदा उठाकर उन दिनों में एक योग्य दंत विशेषज्ञ चीनी डॉक्टर के विरुद्ध जनता को भड़काकर उसे भगा देता है, क्योंकि उसका सगा भतीजा जो अभी–अभी दाँत का डॉक्टर बना है, वहाँ जम सके ।

परसाईजी की राजनैतिक कहानियों के विषय में रचनावली के संपादक मंडल का कहना है, ''परसाई के लेखन में प्रकाशनकाल का अत्यधिक महत्त्व है । उनकी प्रत्येक राजनैतिक रचना अपनी समवर्ती घटना और उससे जुड़े संदर्भो का उत्पादन होती है । इन रचनाओं की समवर्तिता उनके साहित्यिक महत्त्व को कम नहीं करती, अपितु उन्हें अपने समवर्ती जीवन का विश्वसनीय दस्तावेज बनाती है ।''[९६] इस प्रकार की कहानियों में उनकी कहानी 'विकलांग राजनीति' में लेखक की टूटी टांग का सहारा लेकर कांग्रेसी और जनतापार्टी वाले दोनों ही अपने–अपने हित के लिए जनता को भड़काना चाहते है ।

प्रत्येक पार्टी प्रयत्न करती है कि लेखक कुछ ले देकर राजी हो जाय और हम प्रचार कर दें कि यह टांग विरोधीपार्टीवालों ने तोड़ी है । इसके उस पार्टी के विरुद्ध वातावरण बनेगा । इस कहानी में विकृत राजनीति पर व्यंग्य है, जो सिर्फ चुनाव के समय ही जनता को याद करते है । 'घुटन के पंद्रह मिनट' में संसद सदस्य और साहित्यकार एक सरकारी दफतर में निहायत औपचारिक, दिखावटी वातावरण में पंद्रह मिनट तक घुटते रहे, क्योंकि सरकारी आफिसर के लिए जरुरी था कि अपने इलाके में आये संसद–सदस्य को आमंत्रित करे । 'वाकआउट स्लीपआउट, ईटआउट', में उन संसद सदस्यों पर व्यंग्य है, जो संसद भवन में जाकर खाना, सोना और व्यर्थ की बहस – बस ये तीन महत्त्वपूर्ण काम ही करते हैं । इसमें सताधारी और विरोधी, दोनों ही पक्षो के सदस्य है । 'बैताल की छब्बीसवीं कथा', 'बैलात की सताईसवीं कथा' तथा 'बैताल की अठ्ठाइवीं कथा' इन तीनों ही कथाओं में गाँधीवादी ह्दय परिवर्तन पर व्यंग्य हैं । बैताल की सताईसवीं कथा में डाकुओं की समस्या को उठाया गया है, तो बैताल की अठ्ठाइसवीं कथा में व्यवसायी घूस देकर अच्छे आदमी का ह्दय परिवर्तित कर देता है । 'मेनका का तपोभंग' उन राजनेताओं पर व्यंग्य है, जो जनता को मूर्ख बनाकर स्वयं विलासितापूर्ण जीवन बिताते हैं । उनकी विलासिता मेनका का भी तप भंग कर देती है । 'इतिश्री रिसर्चाय' में बुद्धिजीवी और राजनेता की मिलीभगत हैं, जहाँ बिना कुछ किये धरे अमर हो जाने की चिन्ता है । रचनाकार राजनेता के पीछे चलने लगे हैं और निजी स्वार्थो के कारण सिद्ध कर देते हैं कि शोध अनुमान पर चलती है । 'एयरकंडीशण्ड आत्मा' में साधुओं और राजनीतिज्ञों की मिलीभगत पर व्यंग्य हैं । 'मुंडन' में सरकारी तंत्र की वास्तविक पहचान करायी गयी हैं । परंपराओं, नीतियों और नियमों के नाम पर प्रत्यक्ष प्रमाण को भी नजर अंदाज किया जाता है । समिति और आयोग गठित करके हर काम में लम्बा समय लगाया जाता है और विरोधियों के कड़े विरोध के बावजूद फैसला सतारुढ पार्टी के ही पक्ष में होता है । नेताजी का मुंडन हुआ है, उनके सिर पर बाल नहीं

है । विरोधी पार्टी के पूछने पर आयोग का गठन किया जाता है । महीनो बाद आयोग रिपोर्ट देता है कि मंत्रीजी का मुंडन नहीं हुआ है, प्रत्यक्ष भी देखा जा सकता है कि मंत्रीजी के सिर पर बाल है । (क्योंकि आयोग की रिपोर्ट आने पर मंत्रीजी के सिर पर फिर से बाल आ जाते हैं ।) 'भोलाराम का जीव', 'जैसे उनके दिन फिरे' भी इसी तरह की कहानियाँ है । 'जिसकी छोड़ भागी' भी दलगत राजनीति पर व्यंग्य है । 'चमचे की दिल्ली यात्रा' में चमचे मंत्री और जनता के बीच की अनिवार्य कड़ी है, जो दोनों ओर से लाभ उठाते हैं । सता के माध्यम से धधा करने का आपसी समझौता है – 'नगर पालक' । 'इतिहास का सबसे बड़ा जुआ' पौराणिक कथा के माध्यम से आज की राजनीति में होनेवाले जुए की कहानी है । 'धोखा' पूँजीवादी शासनतंत्र और धर्म के द्वारा जनता को मूर्ख बनाकर ऐश करने का साझा समझौता है । 'तीन सयाने' में कला, धर्म और विज्ञान, तीनों राजनीति के आधीन हैं । जनशक्ति से ही ये अपने सच्चे रूप में समाज में रह सकते हैं । इसी तरह की ओर कहानियाँ है, – 'सर्वे और सुन्दरी', 'समाजवादी चाय', 'अफसर कवि', 'संसद और मंत्री की मूंछ' आदि में राजनैतिक परिवेश को लेकर यंग्यात्मक कथायें लिखी गयी है ।

डॉ. श्यामसुन्दरमिश्र लिखते हैं – ''हिन्दी साहित्य लेखन में परसाई ने केवल मात्र विधाओंकी सीमाओं को ही नहीं तोड़ा, उन्होंने साहित्य और कला की राजनीति से सर्वथा अलग पहचान को भी तोड़ा है । आधुनिक जीवन की नियोजक शक्तियों में राज्य की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं । वह केवल सामाजिक जीवन की रीति–नीति में ही हस्तक्षेप नहीं करता, अपितु उन सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षणिक क्षेत्रों का भी नियोजन और निर्धारण करता है, जिनके भीतर से साहित्य की अंतर्वस्तु और उसकी भूमिका का विकास होता है । परसाई अपनी रचनाओं की केन्द्रीय अंतर्वस्तु के यथार्थ की संरचना के दौरान समवर्ती राजनीति की वस्तु स्थिति को प्रमुख आधार के रूप में प्रस्तुत करते हैं । वे यथार्थवादी रचनाकार है । वे उस यथार्थ की निर्धारक राजनैतिक

शक्तियों के वर्गचरित्र और सत्ता स्वार्थ पर सीधे आक्रमण करते हैं और अपने पाठकों को वर्ग समाजी राजनीति की जनविरोधी घातक भूमिका से अवगत कराते हैं । इन रचनाओं की समवर्तिता उनकी ऐतिहासिक सीमा है, जिसके अंतर्गत एक संपूर्ण दौर का जीवन–यथार्थ और उसे निर्धारित करनेवाले राजनैतिक संदर्भ अपनी संपूर्ण चरित्रमयता केसाथ हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं ।''[२०] परसाईजी की कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जिनमे पौराणिक कथाओं के माध्यम से वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्यकिया गया है । जैसे – 'पहला पुल' में राम पुल बनवाते हैं और जनक से उसका उद्‌घाटन करवाते हैं । उद्‌घाटन में जितना खर्च होता है, उसमें दो पुल और बन सकते थे । इस कहानी में वर्तमान राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार और भाई–भतीजावाद पर व्यंग्य है । 'त्रिशंकु बेचारा' में बताया गया है कि मध्यवर्गीय इन्सान आज के पूँजीवादी शासनतंत्र में व्यवसायी और सहकारी अफसर की मिली भगत से त्रिशंकु बनकर रह गया है । 'हनुमान की रेल यात्रा' नामक कहानी में वर्तमान रेल व्यवस्था पर व्यंग्य है । रेलो में भीड इतनी होती है कि साक्षात् हनुमानजी आ जाये तो रेलगाडी में घुस नहीं सकते । आखिर वे रेल की पाँत पर लेटकर मरने को तैयार हो जाते हैं । इसी तरह की और कहानियाँ है, 'सुदामा के चावल' और 'लंका विजय के बाद' आदि । जिनमें राजनैतिक परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन पाया जाता है ।

इस प्रकार परसाईजी की बहुत सी कहानियाँ हैं, जिनमें राजनीति को ध्यान में रखते हुए विषय–वस्तु का गूँफन किया गया है । इन कहानियों में समकालीन राजनीति की यथार्थ परिस्थिति एवं परिवेश का वर्णन देखा जा सकता हैं । परसाईजी ने अपने साहित्य में राजनीति को प्रथम अग्रता दी है, अतः उनकी कहानियों में भी अधिकतर कहानियाँ राजनीति की विषय–वस्तु को लिए हुए हैं । इस बात की पुष्टि डॉ. खगेन्द्र ठाकुर के कथन में देखी जा सकती है कि – ''परसाईजी के लेखन की राजनीति मानवीय संवेदना को सामाजिक आधार देने की राजनीति है, मानव मूल्य को प्रतिष्ठित करनेवाली

राजनीति है । अतः उनके बारे में यह कहना सही होगा कि राजनीति उनके लेखन का संस्कार है । यह संस्कार जनता के लगाव, जनसंघर्षो से जुड़ाव और मानव–मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की प्रतिबद्धता से विकसित हुआ है । यह संस्कार मध्यकालीन चेतना से मुक्ति और आधुनिक वैज्ञानिक एवं समाजवादी चेतना की स्वीकृति से विकसित हुई हे । अतः यह स्वाभाविक है कि परसाई ने साहित्य में राजनीति के गुण का साफ–सुथरे ढंग से विनियोग किया है । इस ढंग की राजनीति से लेखन कैसे श्रेष्ठ बनता है, यह परसाईजी के लेखन में देखना चाहिए ।''[२१] इस तरह राजनीति के यथार्थ वर्णन से युक्त परसाईजी के साहित्य में उनकी कहानियाँ राजनीति के वास्तविक चित्रण से परिपूर्ण एवं अनूठी है ।

(२) सामाजिक कहानियाँ :

परसाईजी की कहानियाँ उनके जीवनानुभव को दर्शाती हैं । अतः स्वाभाविक है कि कहानियों में सामाजिक जीवन की तस्वीरे उभरे । परसाईजी की कहानियों में सामाजिक विघटन और विसंगतियों के चित्र बहुआयत से उभरे हैं । लेकिन उनके इन चित्रों के माध्यम से हमें यही संकेत मिलता हे कि इन विसंगतियों को दूर किया जा सकता है । उनकी कहानियों में समाज का नकारात्मक और ऋणात्मक पहलू ही उभरता है । कहा जाता है कि परसाईजी छिद्रान्वेषी हैं, यह बात किसी हद तक सच भी है, किन्तु यह छिद्रान्वेषण समाज के उन अंतर्विरोधों को दूर करने के लिए हैं, जिनके कारण मानव जीवन त्रस्त है ।

परसाईजी की कहानियों के विषय में श्री धनन्जय वर्मा लिखते हैं – ''परसाई की कहानियाँ एक प्रतिवाद और प्रतिरोध की कहानियाँ है । ... वो उस सबके खिलाफ हैं, जो मनुष्य, उसकी गरिमा, उसकी स्वतंत्रता, उसकी अस्मिता, उसकी समग्रता और पूर्णता के खिलाफ है । उनमें आदमी की चौतरफा आजादी के लिए क्रांतिकारी चेतना स्पंदित हैं । समाज का क्रांतिकारी परिवर्तन, मनुष्य की मुक्ति, एक बेहतर संसार की रचना यही वो परिप्रेक्ष्य हैं,

जिसमें ये कहानियाँ लिखी गयी हैं । उनके पीछे एक जीवन–दर्शन और मूल्य दृष्टि है, एक विचारधारात्मक विवेक और विश्वदष्टि हैं ।”[२२] परसाईजी की बहुत सी कहानियों में समाज, मानव और उनकी विडम्बनाओं एवं समस्या को चित्रित किया गया है । उनकी सामाजिक कहानियों में समाज को दृष्टि समक्ष रखते हुए वर्ण्य–विषय का सुन्दर गठन किया गया है । यहाँ उनकी कुछ सामाजिक कहानियों को देखा जाय ।

‘एक मध्यवर्गीय कुत्ता’ में ऐसे मध्यवर्गीय व्यक्तियों के चरित्र पर व्यंग्य किया गया है, जो उच्चवर्ग का झूठा दिखावा भी करते हैं, और सर्वहारा वर्ग को उसके साथ होने का विश्वास भी दिलाते है । इसी प्रयास में वह दोनो वर्गो का विश्वास खो बैठता है । इस कहानी में ऐसे अमीरजादों पर भी व्यंग्य किया गया है, जो कुत्ता पालना अपनी शान समझते हैं । यह कुत्ता हर आनेवाले को भौंककर स्वागत करता है । ‘एक लड़की पाँच दीवाने’ में मध्यमवर्गीय समाज की स्थिति बतायी गयी हैं । जहाँ माँ को बच्चे पैदा करने से फुर्सत नहीं मिलती । घर की बड़ी लड़की घर का सारा कामकरती है । समाज का वातावरण ऐसा है कि आसपास के लोग घूर–घूर कर उसे एहसास करा देते है कि वह बड़ी हो गयी हैं । इस वातावरण से घबराकर वह अपनी मौसी की मदद से भागकर विवाह कर लेती हैं । सभी दीवाने देखते रह जाते है । ‘ईमानदारों के सम्मेलन’ में ईमानदारों का एक ऐसा सम्मेलन होता है, जहाँ डेलीगेट एक दूसरे का सामान चुरा लेते हैं । और बेखटके दूसरों को उपदेश देते हैं । ‘सड़े–आलू का विद्रोह’ में सड़े आलू बुद्धिजीवियों के प्रतीक हैं, जो सड़े होने के कारण बिकते नहीं, आत्म सम्मान की रक्षा करते हैं । बादमें सस्ते भाव में बिक जाते हैं । सड़ा विद्रोह रूपये में चार किलों के हिसाब से बिक जाता हैं । ‘चार बेटे’ निजी संबंधो की जमीन पर लिखी गयी कहानी है, जहाँ पैसे के आगे भाई–भाई का रिश्ता नगण्य है । ‘प्रेमियों की वापसी’ में लेखक ने स्वर्ग के माध्यम से आज के समाज के सारे रिश्ते–नातों की असलियत खोलकर रख दी है । ‘भीतर का घाव’ भी इसी तरह दहेज

समस्या पर आधारित है । 'एक सुलझा आदमी' उस आम भारतीय की कहानी है, जो अपने उज्जवल अतीत का पल्ला पकड़े उसीका गुणगान कर रहा है, स्वयं कुछ नहीं करता । 'पैसे का खेल' कहानी में गरीबी से त्रस्त असहाय व्यक्तियों के प्रति कोमल भावना दिखायी पड़ती है, उसमें तीखा व्यंग्य नहीं है । 'सेवा का शोक' उन रईसों पर व्यंग्य है, जिन्हें समाज सेवा करने का शौक है । जैसे सिनेमा देखने का शौक, वैसे ही समाज सेवा का । 'खाली मकान', 'नया धंधा', 'घी' में मिथ्या द्वारा सत्य की पराजय दिखायी देती है । 'एक सुपरमैन' एक निहायत कंजूस प्रकृति का आदमी है, जो जीते – जी किसी का कभी भला नहीं कर सका । मनुष्यता का इस व्यक्ति में कहीं कोई नामोनिशान नहीं था । 'वह क्या था' एक ऐसे आदमी की कहानी हैं, जिसे कोई जोश, उत्साह, विरोध नहीं था, मानों उसकी रगों में खून नहीं, पानी दौड़ रहा था । एक ऐसा आदमी, जिसके पास जलती मशाल ले जाओं तो बुझ जाती है । एक केंचुए के समान लिजलिज और रीढ़ की हड्डी से विहीन व्यक्तित्व । 'तटस्थ' में ऐसे व्यक्तियों पर व्यंग्य हैं, जिन पर अच्छी बुरी किसी भी तरह की खबरों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । 'कोई सुनने वाला नहीं' इस कहानी में ऐसे व्यक्तियों पर व्यंग्य किया गया है, जो कभी संतुष्ट नहीं होते और अपनी समस्या को दुनिया की सबसे बड़ी समस्या मानते है । 'आचार्यजी एक्सटेंशन और बागीचा' एक ऐसे आचार्य की कहानी है, जो किसी भी तरह अपना काम निकालना चाहते हैं । लेखक के बड़े भाई की मृत्यु हो गयी है । वे बड़े भाई के मित्र थे । उनकी याद में आँखों में आँसू लाकर लेखक की रचनाओं का मनचाहा उपयोग करते हैं । ये आचार्य रिटायर्ड होने के बावजूद एक्सटेंशन चाहते हैं । ऐसे विभागाध्यक्षों पर व्यंग्य हैं, जो ऐसे ही लड़को को शोध का मौका देते हैं, जिनसे उन्हें कुछ आर्थिक मदद हो सके । ये आचार्य 'मेरा भला नहीं, तो दूसरे का भला क्यों हों' के सिद्धांत पर चलते थे । उन्हें एक्सटेंशन नहीं मिला, तो उस बगीचे को जिसे वे बेहद चाहते थे, सुखाकर

जला डाला, क्योंकि वहाँ कोई और रहनेवाला था । ऐसे सुरक्षित लोगों पर यहाँ व्यंग्य किया गया है, जो अपनी ओछी बुद्धि का सबूत देते हैं ।

ऐसे ही 'इन्स्पेकटर मातादीन चाँद पर' और 'रामसिंह की ट्रेनिंग' भारतीय पुलिस विभाग की धाँधली पर सशक्त व्यंग्य है । 'छोटी सी बात', 'एक फिल्मगाथा' आम बम्बईयाँ फिल्मों के घिसे-पिटे फार्मूले पर व्यंग्य है, जिसमें दर्शक पहले ही जान जाता है कि आगे क्या होगा । 'असुविधाभोगी' कहानी में ऐसे साहित्यकारों पर व्यंग्य किया गया है, जो स्वयं संपूर्ण सुविधा-सम्पन्न होकर दूसरे लेखकों को सुविधाभोगी कहता है ताकि उसकी सम्पन्नता बनी रहे । जैसे-जैसे उसकी तनख्वाह बढ़ती जाती है, वह लेखकों को और ज्यादा धिक्कारता है । 'समय पर मिलनेवाले' ऐसे लोगों पर व्यंग्य है, जो न तो समय पर किसी के यहाँ जाते हैं और न ही घर बुलाकर समय पर घर में मिलते हैं । इसके विपरीत ऐसे लोग भी हैं, जो एक-एक मिनट का हिसाब रखते हैं । ये आदमी नहीं, असल में टाइमपीस होते हैं । दोनों ही स्थितियाँ असामान्य है । 'देश भक्ति का पालिश' में ऐसे धनिकों पर व्यंग्य है, जो युद्ध के दिनों में खुश होते हैं, क्योंकि इन दिनों धंधा अच्छा होता है । इनकी निगाह में चंदा माँगनेवालों से बचने का रास्ता यही है कि स्वयं राष्ट्रीय सुरक्षाकोष के लिए कोई दो पैसे का काम शुरु कर दो । 'किताब का एक पन्ना', 'पड़ोसी के बच्चे', 'दुःख का ताज' आदि कहानियों में सामाजिक गरीबी का चित्रण है, तो 'विकास कथा' उच्च्य पदों पर आसिन अफसरों पर व्यंग्य है, जो गरीब जनता को बेवकूफ बनाकर अपने और अपने परिवारवालों का भला करते हैं । 'जिन्दगी और मौत' में एक टी.बी. अस्पताल का दृश्य है, जहाँ नये रोगी के आने पर सभी पुराने रोगी उसके परिचारक बन जाते हैं । 'दो नाकवाले लोग' में झूठी प्रतिष्ठा के लिए कर्ज लेकर अपनी प्रतिष्ठा गँवा देनेवाले गृहस्थों पर व्यंग्य है । 'मन्नू भैया की बारात' में भारतीय समाज में लड़केवालों की कटू प्रवृत्ति पर व्यंग्य है, तो 'बारात की वापसी' में दहेज-प्रथा और मध्यप्रदेश की बस व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है । 'एक

जोरदार लड़के की कहानी' में ऐसे नवयुवक प्रेमियों पर व्यंग्य हैं, जो अपनी प्रेमिका के सामने बड़ी–बड़ी बातें करते हैं । उसे पाने के लिए संसार से टक्कर लेने का दावा करते हैं, किन्तु जब सुनते है कि लड़की के पिता ने शादीके लिए हाँ कह दी है, तो इनके पैरों तले की जमीन खिसक जाती है । वे प्रेमिका को दीदी कहने लगते है । 'सामाजिक की डायरी' में उन लोगों पर व्यंग्य है, जो अनाथाश्रम चलाते हैं, बल्कि वे अनाथाश्रम के सहारे चलते हैं । आश्रम के बच्चे माँगकर अपना और अपने व्यवस्थापकों एवं मंत्रियों का पेट भरते हैं । अनाथ ये सब व्यवस्थापक एवं मंत्री है । 'पीढियाँ और गिट्टियाँ' में दो पीढियाँ कलागत मूल्यों पर बहस, एक दूसरे पर पत्थर बरसाकर करती है । 'एक और जन्मदीन' में ऐसे लोगों पर व्यंग्य है, जो अपने जन्मदिन में दूसरो से सम्मान पाना चाहते हैं, किन्तु दिखाते ऐसा है, मानों अपना जन्मदिन उन्हें याद ही नहीं था । 'भूख के स्वर' और 'मैं नर्क से बोल रहा हूँ' में इन्सान भूख के मारे जान दे देता है, किन्तु जानवर दूसरों से छीनकर या चुराकर पेट भर लेता है । 'शवयात्रा का तौलिया' में बताया है कि हमारे देश के आम–आदमी जीते–जी इन्सान को सुख से नहीं रहने देंगे, किन्तु मरने पर उसके प्रति अपार प्रेम दर्शाते है । पत्नी को मारेंगे–पीटेंगे, इलाज नहीं करवायें गे, किन्तु मर जाने पर श्राद्ध में हैसियत से ज्यादा खर्च कर देंगे । 'एक गोभक्त से भेंट' एक सशक्त व्यंग्य कथा है । हमारे देश में गाय दंगे के काम आती है । 'ढपोलशंख मास्टर हो गये' में भ्रष्ट नौकरशाही पर व्यंग्य है । 'देश के लिए दीवाने आये' में ऐसे लोगों पर व्यंग्य है, जो 'बार' में बैठकर देश और विश्व–कल्याण की बातें सोचते हैं । जाहिर हैं, ऐसे देश का भविष्य सोचनीय ही होगा । 'गाँधीजी का ओवरकोट' में गांधीवाद के नाम पर अपना स्वार्थ साधना है । 'मेरी अक्ल का बाल' में फूहड सम्पन्नता का प्रदर्शन है, तो 'शर्म की बात पर ताली पीटना' में उन लोगों पर व्यंग्य है, जो भाषण में शर्म की बात सुनकर भी ताली बजाते हैं, गंभीर होकर सोचते नहीं । ऐसे लोग क्रांति नहीं कर सकते । 'स्वर्ग से नरक' नामक कहानी में ब्रह्मा जमाखोर

को दुनिया में भेजकर दुनिया को स्वर्ग से नरक बना डालते है । यह उन जमाखोरों पर व्यंग्य है, जो गाँठ के पूरे होते हैं और पूरी व्यवस्था को विषाक्त बना डालते हैं । 'एक के भीतर से आदमी' ऐसे व्यक्तियों पर व्यंग्य हैं । जो व्यवहार में दुहरीनीति अपनाते है । कभी उनका व्यवहार कुछ होता है, कभी कुछ । 'रामजीदादा' स्वयं चोर है, किन्तु दूसरों को चोर बताते है । जो जैसा होता है, उसे सारी दुनिया वैसी ही नजर आती है । 'फेमिली प्लानिंग' परिवार नियोजन पर तीखा व्यंग्य है । आज भी हमारे देश में यह हालत है कि व्यक्ति अपने सात–सात बच्चों से तंग रहेगा, उन्हे मारेगा, किन्तु परिवार नियोजित नहीं करेगा । 'वे सुख से नहीं रहे' ऐसे लोगों पर व्यंग्य हैं, जो दूसरों का भला तो करते हैं, किन्तु आदत से मजबुर होते हैं । जिनका भला करते हैं, उनके समाचार पूछ–पूछ कर उन्हें सुख से नहीं रहने देते । 'घेरे के भीतर' पति–पत्नी के आपसी संबंध पर आधारित है, जहाँ गलती कोई भी करे, पिटती पत्नी ही है, क्योंकि पुरुष बलवान है और कहीं अन्तस् में स्त्री का बुद्धिमान होना उसे अच्छा नहीं लगता । 'आत्मज्ञान क्लब' में समाज के सम्पन्न नागरिक एवं उच्चाधिकारी मिलकर आत्मज्ञान क्लब बनाते है, जिसकी परिणति पागलखाने और जेल में होती है । ऐसे ही 'स्मारक' मानव की मानवता और आपसी रिश्तों की कहानी हैं ।

इस प्रकार परसाईजी की लगभग सभी कहानियाँ ऐसी है, जिसका सामाजिक पक्ष से कहीं–न–कहीं कोई तार्तम्य जुड़ा हुआ है । इन कहानियों की विषय–वस्तु में सामाजिक दृष्टिकोण दिखाई देता है । भारतीय समाज में शनैः शनैः होते हुए परिवर्तन को परसाईजी की कहानियों में देखा जा सकता है । भारतीय समाज में धीरे–धीरे शाश्वत मूल्यों का अवमूल्यन होता गया, उसका सूक्ष्म चित्रण परसाईजी की कहानियों में परिलक्षित होता है । परसाईजी की कहानियों का परिवेश वही अन्य नयी कहानी के लेखकों का है, किन्तु परसाईजी की रचनात्मक क्षमता के कारण उनकी कहानियाँ कालजयी बन गयी है । डॉ. अर्चनासिंह सत्य ही लिखती हे कि ''परसाईजी की कहानियों में वस्तुतः जगत

के यथार्थ चित्र परिलक्षित होते हैं । परसाईजी की कहानियों में उनके जीवनानुभव का परिणाम है । अतः उनकी कहानियों का कैनवास अत्यंत विस्तृत है, जहाँ जीवन के चित्र उकेरे गये हैं । ये चित्र यथार्थ जगत के हैं । परसाईजी ने कुशल चितेरें की भांति समाज के हर वर्ग की तस्वीर बतायी है । जीवन के अंतर्विरोध, विसंगतियों तथा विषमताओं को परसाईजी ने बखूबी उभारा है । परसाई का विस्तृत अनुभव संसार इन चित्रों में बहुविधि रंग भरने में सहायक हुआ है ।"[२३] इस तरह परसाईजी की कहानियों में मानव-समाज को प्रधानता दी गयी है ।

(३) धार्मिक कहानियाँ :

परसाईजी का कहानी-साहित्य वैविध्य पूर्ण है । उन्होंने अपनी कहानियों में राजनीति और समाज के साथ धर्म को भी उतना ही महत्त्व दिया है । उनकी कहानियों में बहुत सी कहानियाँ है, जिसमें धर्म संबंधी बातों पर लिखा हैं और व्यंग्य के द्वारा धर्म की कुरूपता पर प्रहार भी किया है । भारत की अशिक्षित जनता ही केवल अंधविश्वासी नहीं है, बल्कि अंधविश्वास की जड़े भारतीय जन मानस के हृदय में गहराई तक गयी है, इसलिए धर्म के नाम पर जनता को मूर्ख बनाना बेहद आसान है । परसाईजी ने धार्मिक पांखड का हर स्तर पर विरोध किया हैं । उनकी कहानियों में 'एक गोभक्त से भेंट' कहानी में धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता को बढ़ावा देनेवाली तथा उसका राजनीतिक लाभ उठानेवाली शक्ति का विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है । 'साधना का फौजदारी अंत' तथा 'टार्च बेचनेवाले' आदि कथाओं में धर्म के नाम ठगी करनेवाले स्वार्थी तत्त्वों का भंड़ा-फोड़ है । 'भगत की गत' कहानी में धर्म का अनुचित प्रयोग करनेवाले स्वार्थी तत्त्वों का चित्रांकन है । 'एक वैष्णव की कथा', 'देव भक्ति' एवं 'भगवान को घूस' आदि कहानियाँ भी इसी तरह की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं । 'सत्य साधक मंडल' कहानी में भक्तों की अहंभावना को प्रदर्शित किया है । 'धोबन को नहीं दीन्हीं चदरिया' में भक्तों की स्वार्थवृत्ति

एवं लोभवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है । ऐसे ही 'वैष्णव की फिलसन' नामक कथा में परसाईजी ने एक ऐसे वैष्णव का चित्रण किया है, जो पैसे के लिए शराब और कैबरे का आयोजन भी अपनी होटल में करता है ।

डॉ. कपिल कुमार तिवारी लिखते है – "परसाई की कहानी : 'वैष्णव की फिलसन' प्रतीकात्मक है, जो यह उद्घाटित करती है कि जब धर्म व्यवसाय और अर्थ से जुड़ जाता है, तो वह कितना विकृत और सिद्धान्तहीन, कितना जड़ और शोषक बन जाता है । जिसका प्रयोग अधिकाधिक लूटमार करने और आदमी को व्यक्तित्वहीन तथा समझौतावादी बनाने में किया जाने लगता है । परसाई ने इस कहानी में धर्म और शोषण की अंतःसूत्रता को बड़े सरल ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की है ।"[२४] 'साधना का फौजदारी अंत' में ढोंगी साधुओं पर व्यंग्य है, जो अपने ऐशोआराम व सुख–सुविधा के लिए सामान्य जनता को बेवकुफ बनाते है । 'नंबर दो की आत्मा' में साधुओं के ढोंग और चालाकियाँ है, जो लोगों को नशा करवाकर ईश्वर से मिलवाने का दम भरते है और उन्हें उल्लू बनाते हैं । 'पाठकजी का केस' कहानी में व्यक्ति असंतुष्ट होने पर भगवान की पूजा करता है । 'मौलाना का लड़का : पादरी की लड़की' धार्मिक रूप से शोषण का आपसी समझोता है । नई पीढ़ी धार्मिकता की इस दीवार को तोड़ देती है ।

इस प्रकार परसाईजी ने इन कहानियों में धर्म में फैले पाखण्ड, ढोंग, अनाचार, व्यभिचार एवं अंधविश्वासों को समाज के सामने प्रकट करने हेतु व्यंग्य का आश्रय लेकर यथार्थ वर्णन किया है । परसाईजी की धार्मिक कहानियो की विषय–वस्तु धर्म के क्षेत्रे की विसंगतियों का पर्दाफाश करती है । उनकी धर्म सम्बन्धी कहानियों की विषयवस्तु धर्म की प्रत्येक बुराई का उद्घाटन करती है । परसाईजी ने इन कहानियो में धर्म की भूमिका पर बहुत ताकत के साथ प्रहार किया है । धर्म और धन्धा, धर्म और अमानवीयता, धर्म और मूल्यहीनता आज सब कुछ कितने पर्याय हो गये है – लुटेरे धर्म और प्रभु का कितना

अच्छा उपयोग कर रहे है – इसका यथार्थ चित्रण परसाईजी की इन धर्म सम्बन्धी कहानियों में देखने को मिलता है ।

४. *अर्थ सम्बन्धी कहानियाँ :*

परसाईजी ने भारतीय अर्थ – तंत्र को ध्यान में रखते हुए भी कुछ कहानियाँ लिखी है, जिनमें भारत के अर्थतंत्र की बुराइयाँ एवं कमजोरी दृष्टिगोचर होती है । परसाईजी ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की अर्थव्यवस्था का अवलोकन अत्यन्त सूक्ष्मता से किया है । स्वतंत्र भारत में सर्वाधिक परिवर्तन अर्थव्यवस्था में ही हुआ है । कहने के लिए आर्थिक उन्नति हुई है, किन्तु यह आर्थिक उन्नति केवल आँकडो के माध्यम से ही परिलक्षित होती है । नग्न सत्य यह है कि समाज में विषमता और अधिक बढ़ी है । पहले भी पूँजीवादी वर्ग की ओर से गरीबों का शोषण हो रहा था, आज भी हो रहा है । परसाईजी की कहानियों में इस स्थिति को देखा जा सकता है ।

'रामदास' नामक कहानी एक ऐसे ईमानदार नोकर की कहानी है, जो अपने मालिक का कार्य अत्यन्त निष्ठापूर्वक करता है, किन्तु वह इतनी कम मात्रा में अर्थोपार्जन कर पाता है, जो उसके परिवार के लिए पर्याप्त नहीं है । 'सदाचार का तावीज' फन्तासी के माध्यम से लिखी गयी अत्यन्त तथ्यपूर्ण कहानी है, जिसमें आम आदमी की चोरी – बेईमानी का कारण कमजोर अर्थ–व्यवस्था को बताया गया है । डॉ. अर्चनासिंह लिखती है – ''परसाईजी ने इस कहानी के माध्यम से भारतीय अर्थ नीति का खोखलापन दर्शाया है । इसके साथ ही उन्होंने यह प्रेरणा दी है कि ये भ्रष्टाचार जैसी समस्या का समाधान साधु महात्मा एवं चमत्कारो के माध्यम से सम्भव नहीं है, बल्कि सुव्यवस्थित अर्थ–व्यवस्था ही इसे मिटाने में सक्षम होगी ।''[२५]

'उखड़े खम्भे' कहानी में अर्थ–व्यवस्था में फैली अराजकता एवं बेईमानी का चित्रण है । यह परसाईजी की अत्यन्त सशक्त रचना है । इसमें उन्होंने सरकारी नीतियों की समीक्षा प्रस्तुत की है । 'नया धन्धा', 'सेवा का शौक',

'भुख के स्वर' आदि कहानियाँ अत्यन्त मार्मिक है । 'भुख के स्वर' कहानी में गरीबी का करुण चित्रण है । मारनेवाला और मार खानेवाला दोनो रो रहे हैं, क्योंकि दोनों तीन दिन से भूखे हैं । उनके आँसू आधुनिक अर्थ–व्यवस्था को दर्शाते है । 'पड़ोसी के बच्चे' कहानी में जनसंख्या को बढ़ाने पर व्यंग्य है । भगवान की दया समझकर आबादी बढ़ाना समझदारी नहीं, अपितु मूर्खता है, यह बात परसाईजी बताना चाहते हैं । 'सेवा का शौक' कहानी में रामनाथ मास्टर की गरीबी का चित्रण है । गरीबी में जीवन बितानेवाला मास्टर कभी हँसकर नहीं पढ़ा सकता, क्योंकि यह आज के अर्थ तंत्र की वास्तविकता है । 'दुख का ताज' कहानी में गोविन्द और रामेश्वर की अत्यन्त दारुण दरिद्रता का करुणासभर चित्रण है ।

भारतीय अर्थ–व्यवस्था और समाज में फैले भ्रष्टाचार को ध्यान में रखते हुए परसाईजी ने लिखा है – ''कोई सुधर जाये तो मुझे क्या एतराज है । वैसे मैं सुधार के लिए नहीं, बदलने के लिए लिखना चाहता हूँ । याने कोशिश करता हूँ चेतना में हलचल हो जाये, कोई विसंगति नजर के सामने आ जाये इतना काफी है । सुधरने वाले खुद अपनी चेतना से सुधरते है । मेरी एक कहानी है – 'सदाचार का तावीज' । इसमें कोई सुधारवादी संकेत नहीं है । कुल इतना है कि तावीज बाँधकर आदमी को ईमानदार बनाने की कोशिश की जा रही है – (भाषणो और उपदेशों से) । सदाचार का तावीज बाँधे बाबू दूसरी तारीख को घुस लेने से इन्कार कर देता है, मगर २६ तारीख को ले लेता है, उसकी तनख्वाह खत्म हो गयी । तावीज बँधा है, मगर जेब खाली है । संकेत मैं यह करना चाहता हूँ कि बिना व्यवस्था में परिवर्तन किये, भ्रष्टाचार के मोके बिना खत्म किये और कर्मचारियों को बिना आर्थिक सुरक्षा दिये, भाषणों, सर्कुलरों, उपदेशों, सदाचार समितियों, निगरानी आयोगों के द्वारा कर्मचारी सदाचारी नहीं होगा । इसमें कोई उपदेश नहीं है ।''[२६]

इस प्रकार परसाईजी ने भारतीय अर्थतंत्र एवं उसकी व्यवस्था का चित्रण अपनी कहानियों में किया है और उसकी वास्तविक स्थिति को प्रकट करते

हुए अपनी अर्थसम्बन्धी कहानियों की विषय–वस्तु को यथार्थता से चित्रित किया है ।

(५) साहित्यिक एवं शैक्षणिक कहानियाँ :

परसाईजी ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से युक्त कहानियों के साथ ही साथ कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी है, जिनमें शिक्षा, साहित्य, संस्कृति आदि को ध्यान में रखा गया है । उनकी बहुत–सी कहानियो की विषय–वस्तु ये सारी प्रवृत्तियाँ है । उन्होंने शिक्षा जगत की, साहित्य–जगत की एवं भारतीय संस्कृति की विडम्बनाओं का चित्रण अपनी कुछ कहानियों में किया है । 'रिसर्च का चक्कर' में उन आचार्यो पर व्यंग्य है, जो शोध के नाम पर छात्रों से अपने निजी स्वार्थो की पूर्ति करवाते है । अपने विरोधी गुट के अध्यापकों के विरुद्ध खबरे एकत्र करने जैसा विषय छात्रो को दिया जाता है । इसी तरह 'एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया' में पौराणिक कथा के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियो पर व्यंग्य किया गया है । आधुनिक पीढ़ी तर्क और विचार करने में समर्थ है । गुरु के एक हाथ के अँगूठें माँगे जाने पर एकलव्य कहता है कि वह दोनों हाथो से समान रूप से काम करने की योग्यता रखता है । इस तरह वह गुरु को अँगूठा दिखा देता है । 'आना और न आना रामकुमार का' में लेखकों की मनोवृत्ति पर व्यंग्य है । जिस क्षेत्र से लेखक को जितना पैसा मिलता है, उसीके हिसाब से वह उस क्षेत्र को प्रगतिशील, समृद्ध या पिछड़ा हुआ घोषित करता है । 'साहब का सम्मान' निजी स्वार्थ की पूर्ति का मार्ग जब साहित्य में से ढूह्म.ा जाता है, तब आयकर अफसर भी बड़ा कवि बन जाता है । व्यापारी वर्ग, आयकर अफसर को उसकी साहित्य सेवा के लिए सम्मानित करता है । 'वे बहादुरी से बिके' उन लेखकों पर व्यंग्य है, जो नीति या अनीति से जैसे भी हो सके, अपनी पुस्तकों पर अधिकतम लाभ कमाना चाहते है । 'अपने अपने ईष्टदेव' भी साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्य है । 'बैताल की छब्बीसवीं

कथा' में एक ऐसे लेक्चरर का चित्रांकन किया गया है, जिसने तरककी पाने के लिए अपना दाँत भी दान कर दिया । 'ग्रान्ट अभी तक नहीं आयी' में उन प्रोफेसरों का जिक्र है, जिनकी आँखो की चमक, ज्ञान की आभा एक मंत्री के सामने फीकी पड़ जाती है । ऐसे ही 'जिसकी छोड भागी', 'दो नाकवाले लोग', 'एक लड़की पाँच दीवाने', 'जैसे उनके दिन फिरे' आदि कहानियाँ सामाजिक होते हुए भी उनमें भारतीय संस्कृति के ह्रास का चित्रण दृष्टिगोचर होता है । आधुनिक युग में भारतीय संस्कृति के मूल्य गिर गये हैं, उसका पतन हो रहा है, ऐसा संकेत परसाईजी ने अपनी कहानियों में दिया है । इस तरह परसाईजी की कहानियों में विषय–वैविध्य देखने को मिलता है, जिसमें उन्होंने प्रत्येक पहलू को अपनी कहानियों का विषय बनाया है । उनकी बहुत–सी कहानियों में शिक्षा, साहित्य, संस्कृति आदि पर व्यंग्य किया गया है ।

इस प्रकार परसाईजी ने अनेको कहानियाँ लिखी है, जो सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि विषय वस्तु को लिये हुए प्रायः सभी अर्थगांभीर्य पुर्ण कहानियाँ है । परसाईजी की कहानियों के विषय में श्री धनन्जय वर्मा लिखते है – ''परसाई की इन कहानियों का जायजा ले तो उनमें से समकालीन मनुष्य की इतनी विविध शकले उभरती हैं, उसके इतने मुख्तलिफ चेहरे और उसके इतने सघन और व्यापक प्रतिरूप सामने आते हैं कि वो सब परसाई के अनुभव संसार की गहनता और विविधता के ही प्रमाण हो जाते है । परसाई की कहानियाँ इस लिहाज से समकालीन भारत का एक सेरेबीन केलिड़ोस्कोप है और यह बना है उन शबीहों से जो मुख्तलिफ वर्गो और स्थितियो, प्रसंगो और घटनाओं में फँसे और जो जदोजहद करते मनुष्यों की है, जो अपने माध्यम से राजनीति, प्रशासनतंत्र, शिक्षा, नोकरशाही, गर्ज कि समकालीन जीवन–जगत के लगभग हर स्तर को रोशन करती है । ये कहानियाँ जिन व्यक्तियों को उभारती है, उन्हें वो समाज की प्रतिनिधि और टाइप बना देती है । वो व्यक्ति की हालत, पहचान और होनी ही नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिति, मानवीय अस्मिता और नियति की कहानियाँ हो जाती है । वे

व्यक्ति के अन्तर्मन और मानसिकता के माध्यम से सामाजिक जीवन की विसंगतियों की पड़ताल करनेवाले कहानीकार है ।''[२७] परसाईजी की कहानियों ने कहानी के संस्कार रुचि एवं संस्कृति को बदला है । उनकी कहानियों ने नई कहानी में पुरानी परंपरा को तोड़कर बिलकुल नया रूप, नया ढाँचा, नया ढंग प्रदान किया है । अपनी कहानियों के विषय में परसाईजी लिखते है – ''मुख्य रूप से मैंने कहानियाँ लिखी है, गो इसमें भी मतभेद है कि वे नये शास्त्रीय मान से कहानियाँ हैं भी या नहीं । बहुत बारीक समझ के कुछ लोगों ने कहा भी है कि वे 'चीजें' मन पर असर तो डालती हैं, याद भी रहती है, गूँजती भी है मगर उनके कहानी होने में शक होता है । होता होगा । अपने पैर में जो जूता फिट न बैठे, उसे कोई जुता ही नहीं मानते । वे भूल जाते हैं, कि कुछ जूते सिर के नाप के भी बनाये जाते है ।''[२८] संक्षेप में कहे तो कह सकते हैं कि परसाईजी की कहानियाँ हिन्दी कहानी–साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान है ।

❀ परसाइजी की कहानियों का स्वरूपगत अध्ययन :

परसाईजी की कहानियाँ जीवन की गहराइयों एवं परिवेश से सम्बद्ध कहानियाँ है । उन्होंने जीवन के द्वन्द्वों को एक नवीन शैली में प्रस्तुत किया है । परसाईजी की अधिकतर कहानियाँ मध्यमवर्ग से सम्बद्ध हैं । एक ओर उन्होंने मध्यमवर्ग के दायरे में तेजी से हो रहे देशव्यापी मूल्य–संक्रमण को पकड़ने की कोशिश की है और दूसरी ओर महानगरीय परिवेश में आत्मीयता की आर्द्रता समाप्त होने से उत्पन्न अकेलेपन और अजनबीपन के अहसास को कुरेदा है । जहाँ वे राजनीतिक सामाजिक सन्दर्भो में घँसे हैं, वहाँ व्यवस्था और कुरूपता तथा अमानवीयता को रेखांकित करना उनका अभिष्ट रहा है । वैसे परसाईजी ने अपने साहित्य में गद्य की प्रत्येक विधा को नियमों से दूर, किसी भी मानदण्ड को आधार न मानते हुए बिलकुल स्वतंत्रता से लिखा है । उनकी सभी रचनाओं में साहित्यिक तत्त्वों का निर्वाह कहीं भी दिखाई नहीं

देता । कहानी के लिए प्रारंभ में आलोचकों ने छः तत्त्वो को प्राधान्य दिया था – कथा–वस्तु, चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, देशकाल वातावरण, भाषाशैली एवं उद्देश्य । इन छः तत्त्वो के सफल प्रयोगवाली कहानी को सफल कहानी माना जाता था । परन्तु स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक युग में जहाँ कहानी के विषय–वस्तु एवं स्वरूप बदले है, वहीं उसकी सफलता के तात्त्विक मूल्यो में भी परिवर्तन हुआ है । आज के युग की कहानी को आलोचक दो तत्त्वों के आधार पर आलोचित करते है – कथ्य एवं शिल्प । इन दो बातो का सफल निर्वाह कहानी को सफल बना देता है । वैसे परसाईजी की कहानियों को किसी पूर्व नियोजित मानदण्डों के आधार पर मूल्यांकित करना बड़ा ही कठिन कार्य है । क्योंकि उनकी कहानियाँ अलग शैली में व्यंग्यात्मकता के साथ लिखी गयी है । व्यंग्य जिसमें मुख्य है, ऐसी कहानियों के विषय में श्री जयप्रकाश का यह लिखना सर्वथा यथार्थ ही है कि ‘‘हरिशंकर परसाई की कहानियों के साथ एक दिलचस्प विडम्बना है कि पाठक उन्हें सहजभाव से तथा रुचिपूर्वक ग्रहण करता है लेकिन वे आलोचक को संकट में डाल देती है । उन्हें परखने की कोशिश में आलोचना और मूल्यांकन के प्रचलित औजार भोथरे पड़ जाते हैं । यह आकस्मिक नहीं कि परसाई की कहानियाँ भी समकालीन आलोचना के लिए लगभग वही मुश्किल पैदा करती है, जो मुक्तिबोध की कविताओ ने की थी । यह भी अनुभव किया जाता है कि दरअसल परसाई पर लिखने के लिए एक नये आलोचनाशास्त्र की आवश्यकता पड़ेगी । जाहिर है परसाई की कहानियों में ऐसा कुछ जरुर है, जो आलोचना को संशयग्रस्त किए हुए है ।’’[२६] जयप्रकाशजी का उपर्युक्त कथन सर्वथा सत्य ही है । फिर भी आधुनिक आलोचना के कथ्य एवं शिल्प के साथ–साथ परसाईजी के साहित्य में जो ‘स्पिरिट’ है, उस व्यंग्य की दृष्टि से भी हम उनकी कहानियों का मूल्यांकन करेंगे । इस प्रकार कथ्य, शिल्प एवं व्यंग्य इन तीन तत्त्व के आधार पर हम यहाँ परसाईजी की कहानियों का मूल्यांकन करेंगे ।

❀ कथ्य :

कथ्य के अंतर्गत रचना के कथानक की विशेषताएँ, चरित्र एवं उसमें चित्रित संवेदना तत्त्व की चर्चाकी जाती है । प्रारंभिक विद्वान आलोचकों ने कथावस्तु, चरित्र–चित्रण, उद्देश्य आदि तत्त्वों की अलग से चर्चा की है, जबकि आधुनिक युग में इन सभी तत्त्वों को कथ्य के अंतर्गत समाविष्ट करके आलोचना की जाती है । आज की कहानी में जहाँ स्वरूपगत वैशिष्ट्य देखा जाता है, वहीं पर उसकी आलोचना में भी वैशिष्ट्य पाया जाता है । स्वातंत्र्योत्तर युग की सभी आधुनिक कहानियाँ प्राचीन तत्त्वों को ध्यान में रखकर नहीं लिखी जाती । उसमें वर्णनात्मकता के स्थान पर विचार तत्त्व को प्राधान्य दिया गया है । फलतः नयी कहानी में कथ्यगत विशेषता के अंतर्गत कथा, चरित्र, संवेदना, उद्देश्य, भावतत्व इत्यादि की चर्चा की जाती है । यथा –

➢ *वस्तु*

कोई भी कहानीकार कहानी के माध्यम से किसी संवेदनात्मक ईकाई की प्रस्तुति करता है । संवेदना अमूर्त धारणा है, इसलिए इसे अन्य लोगों तक प्रेषित करने के लिए बाह्य घटनात्मकता का आश्रय लेने की जरुरत होती है । यही घटनात्मकता कहानी की वस्तु है । यह वस्तुजीवन की स्थितियाँ होती हैं, जिनका प्रतिबिम्ब कहानी में प्रस्तुत किया जाता है । कोई भी कहानीकार सर्वप्रथम अपने भावों को चुनता है, फिर उन भावों को व्यक्त करनेवाली वस्तु का निर्माण करता है । जहाँ तक परसाईजी की कहानियों की वस्तु के विषय में बात है, तो उनकी कहानियाँ सपाट कथानक वाली नहीं होती है । वे नाटकीयता को मोड़ देकर विभिन्न आयामों से पाठक को हतप्रभ करते है और एक तरह की स्थिति के चरम पर पहुँचने के पूर्व ही दूसरी अवस्था का बयान करने लगते हैं । इससे पाठक नीरसता से बचता है । पर इसके लिए कहानी के साथ तादात्म्य के लिए गहरी तल्लीनता होनी चाहिए, अन्यथा मर्म छूट जाता

है । श्री मधुरेश परसाईजी की कहानियों के विषय में लिखते है – ''सामाजिक विकृतियों के चक्रव्यूह में फँसे साधारण आदमी की यातनाओं को केन्द्र में रखकर चलनेवाला लेखक शाश्वत साहित्य का प्रभामंडल बनाकर नहीं चल सकता ।....यही कारण है कि परसाई की परवर्ती कहानियां अपने समय की विडम्बनाओ और कुरूपताओं को बड़ी सहजता के साथ अंकित करती है । हरिशंकर परसाई की इन कहानियों के आधार पर आजादी के बाद के भारत की एक मुकम्मिल तस्वीर आसानी से तैयार की जा सकती है, जिसमें राजनीति, शासनतंत्र, शिक्षा पद्धति, नौकरशाही और साहित्य एवं कला की विकृतियों के साथ शायद ही ऐसा कोई पक्ष होगा जो छूटा हो ।''[३०]

परसाई की कुछ प्रमुख कहानियाँ जैसे मोलाना का लड़का : पादरी की लड़की, राग–विराग, सदाचार का तावीज, भोलाराम का जीव, मुंडन, एक तृप्त आदमी की कहानी, सत्यसाधक मंडल इत्यादि बहुत–सी कहानियाँ ऐसी है, जो अपने आशयो और अन्तर्वस्तु की व्यापकता की दृष्टि के कारण परसाईजी के समूचे लेखन के प्रतिनिधि अंश के रूप में ली जा सकती है । इन कहानियो में यदि एक और राजनीति और शासनतंत्र की विकृतियों एवं कार्य पद्धति की आलोचना की गयी है, तो दूसरी और साधारण आदमी की यातनाओं और महत्त्वाकांक्षा शून्य मानसिकता के निर्माण की विडम्बना को भी रेखांकित किया गया है । इस पूँजीवादी समाज में धर्म और अध्यात्म प्रायः हंमेशा ही धूर्तता, छद्म और ढोंग का पर्याय बनकर उपस्थित होता है । अतः स्वाभाविक ही परसाईजी ने उसकी वास्तविकता के उद्घाटन में दिलचस्पी ली है ।

'भोलाराम का जीव', 'सदाचार का तावीज' और 'मुंडन' जैसी कहानियाँ राजनीति, शासन और सरकारीतंत्र की वास्तविक पहचान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहानियाँ है । इन कहानियों को पढ़कर जिस वास्तविकता से हमारा साक्षात्कार होता है वह इतिहास और सरकारी आँकडो से अलग ही नहीं, उस सबके विरोध में भी पड़ता है । 'भोलाराम का जीव' देश की समूची व्यवस्था पर एक रनिंग कमेंट्री जैसी है । यह कहानी दफतरी तंत्र को उद्घाटित करती है, जहाँ

रिटायर होने के पाँच वर्ष बाद भी भोलाराम की पेंशन नही खुलती है, क्योंकि उनकी अर्जियाँ उड़ती फिरती हैं, इसलिए कि उन पर दबाने के लिए 'वजन' नही रखा गया था। 'सदाचार का तावीज' वास्तविक आर्थिक सुरक्षा के अभाव में भ्रष्टाचार निरोधक प्रयासों की असफलता की और संकेत करती है। महीने के शुरु के दिनों में जो व्यक्ति भ्रष्टाचार निषेध के लिए एक मजबूत स्टेण्ड ले सकता है, महीने के आखिरी दिनों में आर्थिक तंगी के कारण वह एक बदली हुई स्थिति में भी हो सकता है। इसीलिए इस प्रकार की कहानियाँ स्वयं परसाईजी के अनुसार किसी ऊपरी सुधार की जगह, समूची व्यवस्था के बदलाव पर जोर देती है। इसी कहानी पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं – ''संकेत मैं यह करना चाहता हूँ कि बिना व्यवस्था में परिवर्तन किये, भ्रष्टाचार के मोके बिना खतम किये और कर्मचारियों को बिना आर्थिक सुरक्षा दिये, भाषणों, सर्कुलरों, उपदेशों, सदाचार समितियों, निगरानी आयोगों के द्वारा कर्मचारी सदाचारी नहीं होगा। इसमें कोई उपदेश नहीं है। सिर्फ विरोधाभाषों को सामने लाया गया है। और कुछ संकेत दिये गये है।''[३१]

'मुंडन' शासन ओर सरकारी तंत्र की उन व्यावहारिक जटिलताओं को सामने लाती है, जो आँख के आगे की चीज के लिए भी परम्पराओं और नीतियों के नाम पर देखने ओर स्वीकार करने से इंकार करती है। चीजों को टालकर, समय का लाभ लेकर, विरोधियों की सारी चिल्ल–पों के बावजूद, समितियों ओर आयोगों के गठन की प्रक्रिया अपनाकर सत्य को कितने ही लम्बे समय तक अनदेखा किया जा सकता है, क्योंकि अन्ततः फैसला सत्तारुढ दल के पक्ष में ही किया जाना होता है। 'राग–विराग' और 'सत्य साधक मंडल' जैसी कहानियाँ धर्म के नाम पर पलनेवाली धूर्तताओं को उद्घाटित करती है। 'रागविराग' में बस यात्रियों की व्यवहारगत विचित्रताओं के साथ ही चुस्त जुमलों और उपमाओ के द्वारा पाखण्ड और छद्म के विस्फोट उद्घाटन की कोशिश की गयी है। लेकिन उसमें साधु के व्यवहार की स्थूलता और पूरी कहानी का सरलीकृत निष्कर्ष कहानी के प्रभाव को इतना तीव्र नही कर पाता

है जितना कि 'सत्य साधक मंडल' के संकेत और व्यंग्य विधायक व्यंजना के द्वारा मुमकिन होता है । सत्य साधक मंडल का सबसे बड़ा आकर्षण क्या है । वहाँ व्यापारी और अच्छे नौकरी पेशा लोग इसलिए आते हैं कि इन्क्मटैक्स और सेल्सटैक्स अधिकारियों के आने की संभावना बनी रहती है, भले ही वे अपनी एकांत साधना के कारण अब तक आ न सके हों । ''कालेज की एक युवा सुन्दरी अध्यापिका मिस सकसेना आती थी । पर उनका तबादला हो गया ओर वे अपने सामान के साथ हमारे चार साधको का सत्य बाँधकर ले गयी । चारों ने आना छोड़ दिया ।''[३२]

परसाईजी की 'भीतर का घाव' कहानी किसी सुधारवादी दृष्टिकोण पर आधारित दहेज–विरोधी रचना नहीं है । वह समाज की बुनियादी विकृति पर आघात करनेवाला हथियार है और युग को मूलगत गहराई तक आन्दोलित करनेवाला दस्तावेज भी है । किसी भी रचना को यह बल, संवेदन की सघनता रचनाकार की चेतना के जीवन–स्पन्दन और वैज्ञानिक चिन्तन से प्रखर हुई प्रज्ञा से मिलता है । श्री कृष्णकुमार श्रीवास्तव लिखते है कि ''वास्तव में इस कहानी में परसाई सच का केवल बखान ही नही करते, वे पाठक को झकझोरते भी है और अभी तक वह जिसकी उपेक्षा करता रहा है, उसकी और देखने को बाध्य करता है । परसाई जिस तरह स्थितियों और मूल्यों को स्वयं देखते और समझते हैं, पाठकों को भी उसी तरह देखने और समझने को उत्तेजित करते है । वे पाठकों के भ्रमो, पाखंडो और कुण्ठाओ को नेस्तनाबूद करते चलते हैं, वे सतह के ऊपर पड़े उस नकाब को उठाकर वास्तविकता को प्रत्यक्ष कर देते हैं, इस अर्थ में वे खतरनाक लेखक हैं । परसाई की कोई भी रचना पढ़कर हम ठीक वहीं नहीं रह जाते, जो हम उस रचना को पढ़ने के ठीक पहले होते है ।''[३३] 'मोलाना का लड़का, पादरी की लड़की' कहानी में धार्मिक कट्टरता और धर्मोन्माद का संघर्ष प्रगतिशील वैज्ञानिक आग्रहो से होता है । मौलाना ओर पादरी दोनो ही का एतराज बच्चों के प्रेम विवाह को लेकर इतना नहीं है, जितना कि यह आग्रह है कि वे अपने अपने धर्म में उनका

बाकायदा मत परिवर्तन कर पूण्य हासिल करें । लेकिन रफीक और बेला आध्यात्मिक प्रेरणा से शुरु करके क्रमशः भौतिक आवश्यकताओं से अनुशासित होने लगते हैं । उनके अपने इस निजी अनुशासन का टकराव जब उनके अपने अपने पिता के अनुशासन से होता है, तो बहुत सोच विचारकर जो रास्ता वे चुनते है, वह वही है, जिसके लिए उनके पिता अलग अलग अपने–अपने प्रभुओं से प्रार्थना करते हैं । उन नादानों को माफ करके सही रास्ता दिखाने की प्रार्थना ओर यह सचमुच आश्चर्यजनक है की दोनों की प्रार्थना का असर एक ही होता है – ''दोनों के अलग अलग प्रभुओं ने उनकी संतानो को सही रास्ता दिखाया । लगभग दस बजे वे दोनों एक ताँगे में बैठे उस रास्ते पर जा रहे थे । उस रास्ते का नाम था अल्वंट रोड, जिसके उस छोर पर सिविल मेरिज के रजिस्ट्रार का दफतर था ।''[३४]

'पड़ोसी के बच्चे' परिवार कल्याण नियोजन के सन्दर्भ में लिखी गयी रचना नहीं है, न वह जनसंख्या के विस्फोट को रेखांकित करती है । यह कहानी मानव के बीच समान अधिकार की अप्रत्यक्ष वकालत है ओर गैरबराबरी पर चोट करती है । ऐसे ही 'क्रांति हो गयी' संपूर्ण क्रांति के अवैज्ञानिक संभ्रमजन्य नारे का उपहास करने के लिए नहीं लिखी गयी । बदलते परिवेश, भिन्न आयामों और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के बदलाव के बावजुद रचना ने अपनी प्रासंगिकता नहीं खोयी है । यह लेखक परसाईजी की अस्मिता का मूल तत्त्व है । 'क्या कहा' कहानी पूँजीवादी समाज में प्रचलित प्यार, प्रेम के ढकोसले को उजागर करती हैं । 'नरक से बोल रहा हूँ' और 'भूख का स्वर' सामाजिक उत्पीड़न को रेखांकित करती है तथा समस्त स्थापित सामाजिक – राजनैतिक व्यवस्था के खिलाफ जिहाद करने के लिए, विद्रोह करने के लिए जाग्रत करनेवाली रचनायें है । श्री रामकान्त श्रीवास्तव लिखते है – ''परसाई के कथा–साहित्य के विकास को देखें तो यह दिलचस्प तथ्य सामने आता है कि जब तक उन्होंने कहानी के मान्य फोर्म को अपनाया तब तक उनकी कहानियाँ प्रभावशाली नहीं बन सकी । प्रारंभिक दौर की उनकी कहानियों में

प्रेमचंद जैसी आदर्शवादिता है । उनकी 'स्मारक' कहानी 'पंचपरमेश्वर' की याद दिलाती है । आज यदि उनकी रचना 'पड़ोसी के बच्चे' उनके नाम के बिना प्रकाशित कर दी जाय तो यह पहचानना कठिन होगा कि यह उनकी रचना है । 'भीतर का घाव', 'किताब का एक पन्ना', 'वे दोनों', 'भूख के स्वर' जैसी कहानियाँ करुणा और आदर्श के मेल से रची गई है । ये रचनाएँ इस अर्थ में अवश्य दृष्टव्य हैं कि मोहभंग के चर्चित काल में परसाई उस आधुनिकतावाद से बचे रहे जो हमारे गाँवों कस्बो की जीवन स्थितियों से अलग थलग रहकर उन समस्याओं को चित्रित करने की ओर प्रवृत हो रहा था, जो यूरोप की विश्व युद्धोत्तर साहित्य से छनकर आ रही थी ।''[३५]

परसाईजी की 'चार बेटे', 'मन्नू भेया की बारात' और 'भगत की गत' जैसी कहानियाँ विसंगतियों की व्यापकता के निषेध के कारण एकदम सतही कहानियाँ बनकर रह गयी है । किसी सामाजिक या राजनीतिक विसंगति के बदले जब परसाई निजी संबंधों की जमीन पर उत्तर आते है, तो उनके चार बेटों में से दो धन के मोह में माँ को कुलटा तक बना देते हैं । इसी तरह 'मन्नू भेया की बारात' भारतीय समाज में लड़केवालो की कटु प्रवृत्ति के बदले अर्थहीन अतिरंजनाओ में उलझकर रह जाती है । 'भगत की गत' में लाउडस्पीकर पर पूजा और कथा को एक सामाजिक समस्या के रूप में लेने के बावजूद उसका ट्रीटमेंट एकदम स्थूल है । इसके विपरीत जब वह पूरी कहानी या उसमे पिरोये गये चुस्त जुमलो के जरिये सामाजिक विसंगति की ओर संकेत करते है तो उसकी मार कहीं गहरी और दूर तक छीलनेवाली होती है । इस प्रकार परसाईजी की कहानियों की वस्तु स्वयंमेव अर्थपूर्ण एवं उदात्त होती है ।

➢ *चरित्र :*

कहानी में मनुष्य की जीवनस्थितियों का प्रतिबिम्बन होता है । अतः वे व्यक्ति जिनकी जीवन स्थितियाँ किसी कहानी में गुम्फित हैं, उस कहानी के 'पात्र' कहलाते है । यदि कहानी प्रत्यक्ष जीवन–सम्पर्क से प्राप्त संवेदना की

कथा है तो उसमें आनेवाले पात्र चरित्र ही होंगे । किसी पात्र को व्यक्तित्व देने का ही दूसरा नाम चरित्र–चित्रण है । कहानी में कभी–कभी पात्रों का स्पष्ट चित्रण नहीं मिलता, इस दृष्टि से उनका रेखाचित्र के रूप में उल्लेख किया जाता है । परसाईजी की कहानियों के प्रमुख पात्र या चरित्र मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है और एक तरह से कहा जा सकता है कि परसाईजी के चरित्र महज ऐसे विलक्षण व्यक्तियों के चित्र भर नहीं हैं, जो अपनी विचित्रताओं से चौकाते हैं, बल्कि परसाईजी ने मनुष्य की उत्कृष्ट जिजीविषा की गहन खोज, व्यक्तित्व सम्पन्नता और अनेक पर्तो के भीतर दबे असली आदमी के रंग और रेखाएँ भी ढूह्म.ी है । इस कथन की पुष्टि उनका चरित्र ‘मनीषीजी’ करता है । ‘मनीषीजी’ कहानी में मनीषीजी की विचित्रताएँ ओर व्यक्तित्व की असाधारणता भर नहीं है, वह निपट अकेले आदमी का विकट साहस, साधारण आदमी की विशाल मूल्यवता, अपने आस–पास के जीवन के प्रति गहरे शामिल होने की विलक्षण मानवीय सामाजिकता ओर भारतीय आदमी की जिजीविषा का अद्‌भुत चित्रांकन है । डॉ. मनोहर देवलिया लिखते है – “ वह अकेला, साधनहीन और निस्व आदमी ‘मनीषी’ केवल विचित्र व्यक्ति नहीं, जो सामाजिक हलचलों से अलग थलग कटा हुआ अपने व्यक्तित्व को अद्विितीय बनाये है, वह सामाजिक संलग्नता की जीवित प्रतिमूर्ति निस्वार्थ और फक्कड चीज है, जिसमें भारतीय आदमी के भीतर का सन्यास और बाहर का कार्यकर्ता आपस में एकमेव हो गये हैं । ..... परसाई की यह बहुत बड़ी विशेषता ही कही जावेगी कि वे व्यक्तियो के विशिष्ट व्यवहार और उसके माध्यम से पात्र के विशिष्ट मनोविज्ञान को चित्रित करते है ।”[३६]

परसाईजी प्रत्येक व्यक्ति को, उसके विशिष्ट व्यक्तित्व, मनोविज्ञान एवं व्यवहार को सामाजिक व्यवहार तथा विकास की उपज के रूप में देखते है । वे व्यक्ति द्वारा परिवेश तथा परिवेश द्वारा व्यक्ति को परिवर्तित करने के प्रयासो के द्वन्द्व की परिणति के रूप में ही व्यक्ति के मनोविज्ञान, व्यक्तित्व और व्यवहार को पढ़ते हैं । ‘एक तृप्त आदमी’, ‘एन.एल. मास्टर’, परिवेश से हार

मानकर समझोता कर लेते हैं । उन्हें मालूम हैं कि परिवेश अर्थात यह दुनिया, जो बड़ी बेरहम और साथ ही बहुत शक्तिशाली है । इस दुनिया से कुछ नहीं मिल सकता ओर दूनिया से लड़कर भी कुछ लिया नहीं जा सकता । बस ! इस सत्य को जान लेने से उनकी सारी महत्त्वाकांक्षाएँ मर जाती हैं । वे संघर्ष से भी बचते हैं और जो कुछ मिल रहा है, उससे कुछ अतिरिक्त प्राप्त करने की ईच्छा करने से भी । देखिए परसाईजी किस तरह परिवेश का ज्ञान प्राप्त होने से मर चुकी महत्त्वाकांक्षाओं को ही एन.एल. मास्टर की तृप्ति का कारण बताते है – ''लोग कहते है – 'एन.एल. मास्टर पूर्ण तृप्त आदमी है ।' मेरा मित्र तो उन पर मुग्ध है । कहता है – 'ऐसा आदमी दुर्लभ है । दुनिया में निराशा, विफलता, पिपासा ओर कुण्ठा के पुतले ही देखने में आते है । .. वह पूर्ण तृप्त आदमी है । उसे कोई भूख नहीं है ।' और मुझे याद आता है कि पिछले साल जब में बीमार पड़ा था, तब मेरी भी भूख मर गयी थी । अच्छे से अच्छे पकवान मेरे सामने रखे रहते थे ओर में मुँह फेर लेता था ।''[३७]

'असहमत' को एक बातूनी किस्म आदमी के रूप में परसाईजीने प्रस्तुत किया है । 'असहमत' सबसे नफरत करता है, प्रिन्सिपल से, साथियों से, विद्यार्थियों से । वह मकान मालिक से भी नाराज रहता है । ऐसा जान पड़ता है कि वह पूरी दूनिया से नाराज है । उसने मौजूदा जमाने की स्पर्धा, पक्षपात ओर चतुरता को भी नजर अन्दाज कर दिया । कोलेज में पढ़ाना चाहता था, तब उसे स्कूल मास्टरी करनी पड़ी । विश्वविद्यालय में जाना चाहता था, तब इस घटिया कोलेज में नोकरी मिली । उसने मान लिया कि दुनिया ने उसकी कीमत नही दी । उसके साथ अन्याय किया और सिर्फ उसीके साथ । परसाईजीने अपने पात्रों के प्रति हंमेशा सहानुभूति रखी है । कभी–कभी उनकी दीन–हीन दशा, आरोपित मूर्खता और नैसर्गिक स्वभाव के प्रति व्यंग्यात्मक अथवा उपहासात्मक दृष्टि नहीं रखी है । 'रामदास' उनकी व्यंग्य कलात्मकता में बिलकुल नयी दिशा है । परसाईजी रामदास का उपहास नहीं करते, वे उसके

अवसाद को चित्रित कर पूरी समाज–व्यवस्था का उपहास करते हैं । श्री प्रवीण अटलूरी यथार्थ लिखते है कि ''रामदास ने एक सामान्य सुविधामय, प्रतिष्ठित, आत्मसम्मान जनक और स्वाभिमानी जीवन की कामना की होगी । उसने इन आकांक्षाओं के जन्म लेने से पहले ही बेईमानी न करने के आदर्श मूल्य अपना लिए होंगे, जो लगातार अभ्यास से मजबूत हो चुके होंगे । सामाजिक यथार्थ से परिचय होते ही वह जान गया कि दुनिया उसे ईमानदारी से जीने नहीं देगी, किन्तु उसके मन में आदर्श की स्थापना इतने गहरे तक हो चुकी थी कि वह अपने आदर्श किसी भी कीमत पर त्यागने के लिए तैयार न हुआ । उसने कष्ट सहना ही श्रेयस्कर समझा, अब फिर कष्ट उसकी मजबूरी बन गये । कष्ट सहते–सहते वह अपने परिवार के कष्टों के प्रति संवेदनहीन होता गया । उसे सबकुछ निरर्थक लगने लगा । उसे विश्वास हो गया कि कोई 'निस्वार्थ सहायता' नही करता । लोगों की मानवीयता पर शंका करने और स्वाभिमान के कारण वह अपना दुख किसी से नही बताता था । उसके बेटे की मौत का अर्थ था उसका मन ही मन घुलना और चुपचाप आँसू बहाना । बीच में अचेतन में दबी आकांक्षाएँ उभर आएँ तो परिवार को 'अच्छा' सा मकान मिल जाये तो ले आऊँ कहना । क्या कहीं रामदास का उपहास है ? नहीं, यह रामदास का अवसाद है, जो किसी ईमानदार व्यक्ति के प्रति समाज की निर्दयता का उदाहरण है । पूरे समाज का उपहास है । परसाई ने अपने पात्र का चित्रण बड़े आदर पूर्वक किया है, जो सामान्य जन के प्रति उनके दृष्टिकोण और संवेदनशीलता को ही व्यक्त करता है । इसमें रामदास अपने पूरे इतिहास और पारिवारिक पृष्ठभूमि के साथ खडा है ।[३८]

'गाँधीभक्त' सेवकजी की महात्वाकांक्षा और मूल्यों के टूटने की कथा है । सेवकजी के जीवन इतिहास में केवल दो ही विशिष्ट घटनाएँ हुई थी, एक यह कि वे गांधीजी के साथ ही जेल में थे, दूसरी यह कि गांधीजी स्वयं उनकी शादी में आकर शाल भेंट कर गये थे और आशीर्वाद भी दे गये थे । सेवकजी के साथी मित्रों की सम्पन्नता को देखकर उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग्रत

होती है और वे नैतिक मूल्य भूल जाते हैं । परसाईजी सेवकजी के जीवन में घटी मात्र दो घटनाओं और उनके साथी राजनेताओं के नैतिक पतन को ही उनके व्यक्तित्व के बिलकुल विचित्र एवं विशिष्ट विकास के आधार के रूप में चित्रित कर पाने में पूरी तरह सफल है । सेवकजी का यह व्यवहार कितना ही विचित्र या विशिष्ट लगे पर विश्वसनीय भी लगता है । 'ठण्डा शरीफ आदमी' अपने जीवन में ऐसे कर्मचारियों को ही नजदीक से देख सका, जिन्होंने व्यवस्था के स्तभों की अधीनता स्वीकार कर, उनकी चाटुकारिता में पर्याप्त लाभ लिया और वह चाटुकार हो गया, उसने अधीनता स्वीकार कर ली । यह ठण्डा शरीफ आदमी केवल इस व्यवस्था के मूल स्तम्भों को स्वीकार करता है, इसीलिए उसकी सारी महत्त्वाकांक्षाएँ भी पूरी होती है, लेकिन भीतर से वह बिलकुल निष्प्राण लगता है, जैसे जिन्दगी किसी के आदेश से संचालित होती है । परसाईजी लिखते है – ''सोचता हूँ, किस साधना से आदमी ऐसा ठण्डा हो जाता है ? जिन्दगी में इतनी तरह की आग है, कहीं कोई गर्मी इसे महसूस क्यों नहीं होती ? जिन्दगी की जटिलता को सुलझाकर इसने किस तरह सीधा ओर सपाट कर लिया है ?''[३६] बातूनी इस बात को अच्छी तरह जानता है कि महत्त्वपूर्ण होने और बनने के लिये केवल योग्यता ही काफी नहीं है, बल्कि इसके साथ पैसा और पद की आवश्यकता भी होती है जो कि उसके पास है ही नहीं । इसलिए वह बातूनी बनकर विशिष्ट बनने की कोशिश करता है ।

इस प्रकार परसाईजी की कहानियों में अनेक पात्र है । उनकी जिन्दगी की तरह उनका साहित्य संसार भी एक कारवां जैसा है, जिसमें तरह तरह के लोग शामिल है । उनकी कहानियों में ढेर से जीवंत पात्र हैं और वे सब हमारे इतने जाने–पहचाने है कि हम भो चक्के रह जाते हैं कि हमने अभी तक 'मस्तमौला मनीषीजी, भोली उम्मीद पर जीनेवाले रामदास, आत्मकेन्द्रित प्रोफेसर, प्रेमी दुकानदार ओर हलवाई, आध्यात्मिक गुरु के चक्कर में फँसे अपर डिवीजन क्लर्क, ठण्डे शरीफ आदमी और चौराहे पर बैठे निठल्ले काका

को इतने गौर से क्यों नहीं देखा, जबकि हमारे 'समकालीन' समाज की रचना इन्हीं लोगों से हुई है । परसाईजी ऐसे विरल लेखक हैं, जिनसे उनके समकालीनों के विषय में पूछे जाने पर जिनकी दृष्टि बड़े लोगों पर ही नहीं, उस पान के ठेलेवाले पर भी जाती है, जो उन्हे पान खिलाता था । इस संदर्भ में श्री धनन्जय वर्मा परसाईजी की कहानियों को समकालीन भारत का एक सैरेबीन केलिड़ोस्कोप निरुपित करते हुए लिखते है – ''वो व्यक्ति की हालत, पहचान ओर नियति की कहानियाँ हो जाती है । वे व्यक्ति के अंतर्मन और मानसिकता के माध्यम से सामाजिक जीवन की विसंगतियों की पड़ताल करनेवाले कहानीकार है । इन व्यक्ति चरित्रों के जरिये वे व्यवस्था के रूप और बहुरुपियेपन को भी उजागर करते हैं ।''[४०] संक्षेप में परसाईजी की कहानियों के पात्र वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले, वैविध्य से पूर्ण एवं पाठको की संवेदना को स्पर्श करनेवाले सजीव पात्र है ।

➢ *मानवीय संवेदना :*

कहानी में प्रतिबिम्बित होनेवाली जीवन स्थितियाँ किसी मनुष्य की होती है । अतः कहानी में मानवीय संवेदना का चित्रण होता है । कई बार कहानियों में मानवेतर जीवों अथवा निर्जीव वस्तुओं की जीवन स्थितियो का चित्रण भी होता है, परन्तु वे मानवेतर जीव या अजीव, अपने आंतरिक रूप में मनुष्य ही होते है । डॉ. रामनिवास गुप्त लिखते है – ''मनुष्य मानवीय संवेदना को ही ग्रहण कर सकता है और उसी में प्रभावित भी होता है, यही कारण है कि कहानी देवता–दानव, भूत–प्रेत, चूहा–बिल्ली आदि किसी की हो, मूलतया मनुष्य की होती है । इसीलिए कहा गया है कि कहानी मानवीय जीवन स्थितियों के प्रतिबिम्ब ही प्रस्तुत करती है । कहानी के प्राण उसके द्वारा प्रेषणीय संवेदना में बसते हैं ।''[४१] इस तरह कहानी में मानवीय संवेदना का चित्रण अनिवार्य हो जाता है । परसाईजी की कहानियाँ व्यक्ति के मन की एकान्तिक अनुभूतियों की कहानियाँ है । उन्होंने अपनी कहानियों में आधुनिकता

और भोतिकता से पीड़ित समकालीन मानव के अन्तस् की समस्याओं को स्वर दिया है । उनकी कहानियाँ व्यक्ति–मन के महीन–से–महीन भाव को छूकर उसकी व्याख्या करने में सक्षम हैं । स्वतंत्रता के बाद के वर्षो में मानवीय सम्बन्धों के टूटन की प्रक्रिया शुरु हई । इस दौर में आदमी बहुत अधिक स्वकेन्द्रित होने लगा । परसाईजी ने अपनी कहानियों में सामाजिक स्तर पर टूट रहे पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्ध के ढाँचे का बेबाकी से वर्णन किया है । वस्तुतः परसाईजी के लेखन के केन्द्र में एक जीवित व्यक्ति और उसकी अनन्त समस्याएँ है । उसके विभिन्न रिश्तों और व्यापारों की बुनावट है । परसाईजी की कहानियों में सूक्ष्म मनोभावों और संघर्षो के नये आयाम निरुपित किये गये हैं । उनकी अधिकांश कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन एवं उससे जुड़े विभिन्न पक्षो का चित्रण किया गया है । परसाईजी के विषय में डॉ. सुरेश आचार्य लिखते है – ‘‘परसाईजी की बेलोस संवेदनशीलता और बेलाग स्नेह उन्हें सच्चा आदमी प्रमाणित करते है । उनका साहित्य पढ़कर जो हँसी आती है, वह गलतफहमी के कारण आती है, हँसी समाप्त होने पर जो खरोंचें दिल पर शेष रह जाती है, वे परसाई को एक भारतीय संवेदना का लेखक बताती है ।’’[४२]

परसाईजी की कई कहानियों में नारी की दयनीय स्थिति, उसकी परतंत्रता एवं उसके स्वतंत्र अस्तित्व के अभाव की अभिव्यक्ति पायी जाती है । ‘जिसकी छोड भागी’ में पुरुष के अहं का चित्रण है, तो ‘एक लड़की पाँच दीवाने, कहानी में नारी मनोविज्ञान का सूक्ष्म विवेचन है । परसाईजी की ‘पाठकजी का केस’, ‘विकास कथा’, ‘लघु शंका न करने की प्रतिष्ठा’, ‘किताब का एक पन्ना’, ‘राग विराग’, ‘मेनका का तपोभंग’, ‘इडन के सेब’, ‘नहुष का निष्कासन’, ‘भीतर का घाव’ इत्यादि कई कहानियों ने नारीमन को स्पष्ट वाणी प्रदान की है, जो स्त्रियों की दयनीय स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करती है । ‘भीतर का घाव’ नामक एक मात्र कहानी इतनी हृदय स्पर्शी एवं भावप्रवण है कि वह नारी द्वारा नारी का शोषण प्रस्तुत करने में पूर्ण तौर पर सक्षम है । परसाईजीने देवी स्वरूपा एवं सुशीलाभाभी तथा कर्कशा माँ एवं चाची के चरित्रों

को एक साथ प्रस्तुत करके नारी मन की सभी परतों को खोल दिया है । न केवल मनः स्थिति बल्कि सामाजिक स्थिति को भी स्पष्ट किया है । माँ-चाची के उपेक्षापूर्ण व्यवहार को सहन करना, भाभी की विवशता न थी किन्तु वह सुसंस्कृत महिला थी, साथ ही साथ वह दहेज न लाने के कारण उनके अत्याचार सहने को विवश थी । "ऐसी स्नेहमयी, ऐसी सेवा करनेवाली देवी से भी मेरे माता-पिता प्रसन्न नहीं थे । आज माता और पिता दोनों को अपने हाथों से जलाकर निपट चुका हूँ । मैं बड़ा मातृभक्त, बड़ा पितृभक्त रहा हूँ । पर आज जब उनके पार्थिव शरीर की राख भी परमपावन गंगा में बहा चुका हूँ, कहता हूँ कि माता और पिता ने भाभी को बहुत सताया । सताया इसलिए कि वह गरीब की लड़की थी और उसके पिताने दहेज में कुछ न दिया था । ... माँ बात-बात में गाली देती, पिताजी दिन में दो-चार बार उनके खानदान को नीच कहते । वह बेचारी, पाँच मील दूर रहनेवाले अपने दुखी माता-पिता से, मिलने भी नहीं दी जाती थी । घर में मेरी विधवा चाची थी, जो निर्जला एकादशी करती थी, नवदुर्गा में एक लौंग खाकर उपवास करती थी पर वहभी रोज भाभी को सो गालियाँ देने के पहिले जल ग्रहण नहीं करती थी ।"[४३] यह सामाजिक कहानी मध्यवर्गीय बहू -सास के चरित्र को स्पष्ट करती है तथा दहेज जैसी कुप्रथा पर गहरा आघात करती है ।

परसाईजी एकांगी जीवन-दर्शन के रचनाकार नहीं है । उन्होंने जीवन और समाज का विस्तृत अध्ययन एवं अनुभव किया है । 'पैसे का खेल' उनकी प्रथम रचना है । इस कहानी के द्वारा ही परसाईजी की वर्गीय-चेतना का आभास मिलता है । इस संक्षिप्त कहानी में न चमत्कारिक कथा है, न विचारोत्तेजक संवाद, किन्तु सामान्य-सी इस कहानी में करुणा की ऐसी अन्तर्धारा प्रवाहित है कि हमें मानसिक उथल-पुथल से भर देती है । इसमें धनिक वर्ग की अमानवीयता तो है ही, ड्राइवर के रूप में मध्यम वर्ग की गुलाम मानसिकता भी है । सम्पन्नता और विपन्नता के अंतर्सघर्ष की परिणति ही मार्क्सवाद के रूप में हुई है । "इधर बच्चा कुरते से आँसू पोंछता जाता

था और धूल में सने हुए लैया के टुकडे खाता जाता था । भीतर स्वादिष्ट प्रसाद बाँटा जा रहा था । अतृप्त बालक बोला, 'माँ ! ओर ! 'माँ ने कहा,' बेटा, अब पैसे नहीं है ! चलो घर चले । '... उधर गजरो से लदे कार' के मालिक सेठ-चंचल लक्ष्मी के कृपापात्र उस चंचलकार पर सवार होकर चल दिये ।''[४४] यह स्थिति कितनी भयावह और बीभत्स है कि बहुत थोडे लोग देवतुल्य अट्टालिकाओं में वैभव विहार करे और अधिकांश मनुष्य न केवल मूलभूत आवश्यकताओं के लिए तरसें, बलिक धनियों की हिकारत का शिकार भी बने ।

परसाईजी ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रविष्ट बुराइयों का चित्रण अपनी कहानियों में करके छात्रों की ऐयाशी, अध्यापकों का आलस्य तथा शिक्षा को व्यवसाय बनाना इत्यादि कइ बातों का चित्रण करके वर्तमान शिक्षा को आधारहीन तथा समर्पणहीन बताते हुए वर्तमान गुरु-शिष्य के संवेदनाविहीन सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है । उनकी 'एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया' कहानी एक ऐसे गुरु और शिष्य की कथा है, जो दोनों ही एक - दूसरे को मूर्ख बनाने की कोशिश करते है । ऐसे ही 'ग्रान्ट अभी तक नहीं आयी' में उन प्रोफेसरों का जिक्र है, जिनकी आँखों की चमक, ज्ञान की आभा एक मंत्री के सामने फीकी पड़ जाती है । वे मूर्तिवत, काष्ठवत मंत्री की बातों का समर्थन करते है । उनका अपना अस्तित्व मंत्री के समक्ष नगण्य हो जाता है । ''मंत्री देश की गरीबी का जिक्र कर उदास होता है, तो चेहरे भी उदासी में डूब जाते है । देखते रहते हैं, मंत्री कब उदासी से उबरता है । उसके उबरते ही चेहरे भी उबरकर मुसकराने लगते हैं । दर्शनशास्त्र, इतिहास संस्कृति के चेहरे 'रिफलेक्ट' कर रहे हैं ।'[४५] डॉ. अर्चनासिंह लिखती है, ''चेहरों का रिफल्क्शन उनकी निरीहता, निर्जीवता, अस्तित्वहीनता का प्रतीक है । मंत्री के सामने उनका अस्तित्व हीन होना शिक्षा के दिग्गजों के लिये लज्जा की बात है ।''[४६] इस तरह शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में भी मानव-मानव के बीच में

भ्रष्टाचार, चापलूसी, जी–हजुरी एवं जातिवाद ने अपना स्थान बना लिया है । कहीं पर भी निस्वार्थ अभाव दिखाई नहीं देता ।

धर्म जब धन्धे से जुड़ जाता है, तो वह कितना विकृत और सिद्धान्तहीन हो जाता है, यह बात परसाईजी की 'वैष्णव की फिसलन' कहानी के द्वारा पता चलता है । यह कहानी प्रतीकात्मक है । भगवान के मंदिर का पूजारी 'वैष्णव' करोडपति है । मंदिर की जायदाद है, सूद पर पैसा देता है । पैसों का और अच्छा उपयोग करने के लिए होटल खोल लेता है । ग्राहकों की माँग पर होटल में मांस, शराब, कैबरे और स्त्री का प्रबंध करता है । वैष्णव का कहना है, यह सब वह प्रभु की मर्जी से कर रहा है । धर्म को शोषण से जोड़कर सुदखोरी, दो नंबर का धंधा और होटल में शराब, स्त्री की व्यवस्था, सभी कुछ बड़ी आसानी से किया जा सकता है । डॉ. मदालशा व्यास लिखती है – "वैष्णव के माध्यम से परसाई कहते हैं कि ढोंगी भक्त धर्म के नाम पर धन्धे चलाते हैं, ईश्वर की आड़ लेकर अच्छे बुरे सभी धर्म कर्म करते है । धर्म में आज अमानवीयता और मूल्यहीनता व्याप्त हो गयी हैं । परसाईने इस कहानी में बड़ी सफलता के साथ अपनी बात समझायी है ।"[४७] इस कहानी के द्वारा परसाईजी ने ह्रास होते हुए नैतिक मूल्यों की ओर संकेत किया है ।

इस प्रकार परसाईजी कोरी भावुकता, सहानुभूति या करुणा के सर्जक नहीं है । गहरी करुणा में भी आक्रोश और वितृष्णा के भाव छिपे होते हैं । वे दिन–हीन जनों के दुख में तो शामिल हैं, किन्तु पलायन एवं अकर्मण्यता की स्थिति में फटकार लगाने से भी नही चुकते । भारतीय समाज में शनैः शनैः होते हुए परिवर्तन को परसाईजी की कहानियों में देखा जा सकता है । भारतीय समाज में धीरे धीरे शाश्वत मूल्यों का अवमूल्यन होता गया, उसका सूक्ष्म चित्रण परसाईजी की कहानियों में परिलक्षित होता है । उनकी कहानियों का दायरा धीरे धीरे बढ़ता गया, उसीके साथ–साथ उनकी चेतना एवं संवेदना भी सजग होती गयी । परसाईजी की संवेदनशीलता ही उनकी कहानियों का

प्राण है । परसाईजी की कहानियाँ यशपालजी एवं प्रेमचन्द के नजदीक नहीं है । प्रेमचन्दजी का आदर्शवाद तथा यशपालजी की क्रांति का संदेश परसाईजी के लेखन में कदापी नही है । उन्होंने रचनात्मक उद्देश्य से संवेदनशील कहानियाँ लिखी है । परसाईजी प्रतिबद्ध लेखक हैं, उनकी प्रतिबद्धता शोषितों, दलितों एवं गरीबों के प्रति हैं । श्री राजेश जोशी यथार्थ लिखते है – ''परसाई की मनुष्य के प्रति एकांगी दृष्टि कभी नहीं रही । 'करुणा की अन्तर्धारा' जो उनकी रचना प्रक्रिया का मुख्य हिस्सा है, उसने उन्हें मनुष्य को उसकी पूर्णता में देखने की दृष्टि दी है । वे जिसके विरुद्ध हैं, क्रूर है, उसके प्रति भी एक 'साफ्ट कार्नर' उनमें हरवक्त मौजूद होता है, जो उन्हें एक बड़ा और मानवीय लेखक बनाता है । वे व्यक्ति के प्रति हिंसक नहीं है । गलत व्यवस्था और प्रतिगामी विचार के विरुद्ध है, उनको संचालित करनेवाली शक्तियों के विरुद्ध है ।''[४८] इस तरह परसाईजी की कहानियाँ मानवीय संवेदना की उत्तम उदाहरण हैं ।

❀ शिल्प :

कहानी में कथ्य की तरह शिल्प का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । कथ्य जहाँ कहानी को आधार देता है, वहीं शिल्प उसे रूप प्रदान करता है । शिल्प के आधार पर ही किसी भी कृति की आंतरिक संरचना होती है । आलोचक श्री सुरेन्द्रजी कहानी के लिए शिल्प को आधार मानते हुए लिखते है कि '' कहानी की सही जमीन उसका 'कहानीपन' ही है, शिल्प की सार्थकता इसी कहानीपन को उभारने में है हालाँकि यह नामुमकिन है कि सही शिल्प के अभाव में 'कहानीपन' सार्थक हो जाए और वह भी नयी कहानी में... यदि शिल्प कथा को आयाम नहीं दे पाता तो निश्चय ही वह कहानी को कमजोर बनाता है ।''[४९] वस्तुतः शिल्प कहानी के आंतरिक दबाव की परिणति है । कहानी का कथ्य अपने अनुरूप शिल्प स्वयं ढूंढ़ ही लेता है । किसी भी कहानी में शिल्प की पहचान कहानी की वस्तु की भी पहचान है । संक्षेप में

शिल्प के दम पर भी कोई कहानी अपनी अलग पहचान बना लेती है । शिल्प के अंतर्गत भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक, छन्द, अलंकार, कहावते, मुहावरे इत्यादि सभी तत्त्वों की चर्चा की जाती है, जो किसी भी रचना को कलागत सौन्दर्य प्रदान करते है । जहाँ तक परसाईजी की कहानियों के विषय में देखा जाए, तो कह सकते है कि परसाईजी जहाँ अपनी कहानियो में जीवन की मीमांसा करते है, वहीं उसे कलात्मक सौन्दर्य से सँवार भी देते है । कथ्य के साथ शिल्प के स्तर पर भी उन्होंने कहानी में कुछ अभिनव प्रयोग किए है । उनकी कहानियों में कथानक की विरलता, घटना विहीनता एवं भावों के आरोह अवरोहों को महत्त्व दिया गया है । कथ्य ही नहीं, अपितु शिल्प की दृष्टि से भी परसाईजी की कहानियाँ अपवाद की सीमा तक विशिष्ट है । उनकी कहानियों को न तो तथाकथित शास्त्रीय प्रतिमानो की कसौटी पर कसा जा सकता है और न ही बंधे बंधाये मान–मूल्यों के आधार पर परखा जा सकता है । परसाईजी की कहानियों के शिल्प में अनेक सूक्ष्म और नवीन प्रयोग मिलते है । उनकी कहानियाँ झूठे रूपवाद से मुक्त है । ये कहानियाँ शिल्प प्रधान कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि संश्लिष्ट शिल्प की कहानियाँ हैं । परसाईजी की एक ही कहानी में भिन्न भिन्न शिल्प मिल जाते है । कुल मिलाकर उनकी कहानियो को एक 'कलात्मक बुनावट' माना जा सकता है । परसाईजी की कहानियों में निम्नांकित शिल्प के विभिन्न रूप दिखाई देते है ।

➢ *भाषा :*

मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिस सार्थक मौखिक साधन को अपनाता है, वह 'भाषा' है । भाषा हमारे विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम हैं । मानव अनुभूति मन से करता है, किन्तु इस अनुभूति को अभिव्यक्ति करने के लिए उसे भाषा का माध्यम चाहिए । भाषा न केवल हमारे भावों और अनुभवों की सम्प्रेषिका है, वरन वह साहित्य का मूल आधार भी है । विचारों के आदान–प्रदान का सशक्त माध्यम होने के कारण साहित्य

का महत्त्व भी भाषा पर ही टिका हुआ है । श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते है – "लेखक जो कुछ भी कहना चाहता है, भाषा के अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरा साधन नहीं । वह मात्र शब्द प्रयोग नहीं करता, शब्दो द्वारा एक वस्तुसंसार भी निर्मित करता है ।"[५०] आधुनिक हिन्दी साहित्य में आम भारतीय के अन्तर्मन की तकलीफ को उसकी अपनी भाषा में अभिव्यक्ति देने में श्री हरिशंकर परसाई का स्थान महत्त्वपूर्ण है । भाषा के क्षेत्र में उन्होंने सर्वथा नवीन दृष्टिकोण अपनाया है । भाषा परसाईजी के लिए कथा कहने का माध्यम ही नहीं है, वरन् भाषा को वे कथा के सत्य को पकड़नेवाला तत्त्व मानते है । उनकी भाषा में अनुभवों को आत्मसात करने की अद्‌भुत क्षमता है और इन अनुभवों को सुत्रबद्ध भाषा में प्रवाहित करने की विशिष्ट कला है । परसाईजी ने एक अलग ही सहज, सरल जनभाषा को अपनाया है । डॉ. सीता किशोरने यथार्थ ही लिखा है – "परसाई के व्यंग्य लेखन में भाषा का जो स्वरूप व्यवहृत हुआ है, वह ध्वनि, रूप और शब्द के धरातल पर बोली की ताकत ओर ताजगीवाला रूप है । परसाई देख परखकर लिखते हैं, सोच–समझकर लिखते हैं । उन्होंने जो कुछ लिखा, लिखा है, उनसे लिख नहीं गया । वे शब्द–चयन में से उठाते हैं, बैचेनी पेदा कर देनेवाला भाव पैदा कर देते हैं और इस तरह शब्द में जो भाव उपजता है, वह एक बिरली ध्वनि का बोध कराता है, इसीसे उनके व्यंग्य को निरक्षर भी बैठकर दुहरा लेता है । बिना लिहाज किये प्रहार करने की जब–जब जरुरत होती है, तब–तब ध्वनि, भाव और शब्द सीधे बोली से ही उठाने पड़ते हैं । बोली सीधे–सीधे जन से जुड़ी है । ... चोट करने के लिए जब–जब उन्होंने आक्रमक रुख अपनाया है, तब तब भाषा समर्थ हथियार के रूप में उनके हाथ में रही है ।"[५१]

परसाईजी की कहानियों में प्रयुक्त भाषा अत्यन्त सहज, सरल एवं प्रवाहमयी है । उनकी भाषा में प्रवाह निरन्तर बना रहता है । पाठक पूरे समय कहानी में डूबा हुआ स्वयं को लेखक के बिलकुल नजदीक पाता है । कहानी में परसाईजी का भाषा–कौशल उस स्थान पर अपनी विशिष्ट छाप

छोड़ता है, जहाँ परसाईजी अपनी कही हुई बात का समर्थन कराने हेतु अपने विचार, संवेदना, भावना, दर्शन तथा नैतिकता की अभिव्यक्ति करते है । यही भाव उनकी प्रत्येक कहानी को महत्त्वपूर्ण बना देते है । सीधी, सादी, सरल एवं सहज भाषा से पूर्ण उनकी कहानियाँ पाठकों पर पूर्ण प्रभाव छोडती है । 'रामदास' कहानी में रामदास का चित्रण परसाईजी ने इसी सहज प्रवाहमयी भाषा में किया है – ''बाजार के चोराहें पर, एक इमारत की दूसरी मंजिल पर एक अखबार का दफतर है । एक नाटे–से आदमी को हाफ पैण्ट पहने आप अगर इस दफतर की सीढियों पर चढते उतरते देखें, तो समझ लीजिए कि वह रामदास है ओर अगर निश्चय करना हो, तो जब वह सीढियों से नीचे उतरे तो उससे पुछिए – 'आनन्दजी है ?' 'अगर वह जरा ठहीरए, सोच लेने दीजिए' कहकर अपने सिर पर एक ऊँगली से ठोका मारे और नीचे देखते हुए क्षणभर सोचकर जवाब दे, 'हाँ ठीक है' या 'हाँ, ठीक है, नहीं है' तो यह पक्का है कि वह रामदास ही है । हर बात को इतना सोचकर बोलनेवाला इस शहर में दूसरा आदमी नही है ।''[५२] परसाईजी की कहानियों की भाषा में जो कलात्मकता, विशेषता एवं साहजिकता है, वह उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति का प्रतीक है । इसके पीछे उनकी संवेदना, नैतिकता भी स्पष्ट दिखाई देती है । उनकी कहानियों को पढ़ते हुए बार–बार इस बात का आभास होता है कि इन्होंने जीवन को कितनी गहराई से जिया है । जीवन को कितने ही कोणों से परखा है ? जीवन के व्यापक अनुभव ने ही उनकी भाषा को इतना सफल एवं समर्थ बनाया है । यही कारण है कि उनकी भाषा भी कुछ हद तक स्वतंत्र एवं स्वच्छन्द है । परसाईजी की कहानियों में प्रयुक्त भाषा एकदम आम बोलचाल की भाषा है । वस्तुतः यह खड़ीबोली के मध्यवर्गीय समाज की कस्बाई भाषा है । हालाकि धनन्जय वर्मा के मतानुसार ''कुछ लोगों को परसाई की भाषा में व्याकरण हीनता, ग्राम्यत्व दोष और किसी–किसी को तो भदेसपन भी नजर आता है, लेकिन परसाई की कहानियों की अन्र्वस्तु जिस समाज और आदमी से आती है, भाषा भी उसी की बोलचाल की, उसके

रहन–सहन ओर रीति–रिवाजों की है । उसमें सड़कों – गलियों, आफिस कारखानों, खेतों–खीलहानों के जनजीवन की खालिस देसी बोली के तेवर हैं, उसीके कहनात ओर मुहावरें है ओर उनकी इस भाषा ने न केवल हिन्दी गद्य का मिजाज बदला है बल्कि पूरे तेवर और मुहावरें को जिन्दादिल और मर्दाना बनाया है ।''[५३]

परसाईजी की कहानियाँ बिल्कुल साधारण बात से शुरु होती है या किसी सूत्रवाक्य से । उनमें इतने छोटे–छोटे वाक्य है, इतनी सरलभाषा है ओर कथन–पद्धति इतनी सहज है कि कहीं–कहीं तो वे 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'सिहांसन–बतीसी' या 'वैताल कथाओ' का आभास देती है । यथा –

(१) यह सिर्फ दो आदमियों की बातचीत है (असहमत)
(२) आशीर्वादों से बनी जिन्दगी है । (बुद्धिवादी)
(३) पहले वह ठीक था, (साधना का फोजदारी अंत)
(४) एक दिन राजा ने खीझकर घोषणा कर दी कि मनुफाखोरों को बिजली के खम्भें से लटका दिया जायेगा । (उखडे खम्भें)
(५) एक राज्य में हल्ला मचा कि भ्रष्टाचार बहुत फैल गया है । (सदाचार का तावीज)
(६) चुनाव के समय हर चीज का महत्त्व बढ़ जाता है । (विकलांग राजनीति) इत्यादि ।[५४]

परसाईजी की भाषा के सिलसिले में यह कहना कि उनकी भाषा किसी भी समर्थ लेखक के लिए एक बड़ी चुनौती है, अत्युक्ति नहीं होगी । एक जमाने में कबीर की भाषा को पंचमेल खिचड़ी कहकर बड़ा मजाक उडाया जाता था पर आगे चलकर उन्हीं को वाणी का डिक्टेटर कहा जाने लगा । परसाईजी हिन्दी जगत में कबीर के बाद दूसरे ऐसे भाषा अन्वेषक हैं, जो हर तथाकथित शिष्ट को अपनी साधारण बोलचाल की नायाब भाषा से निशाना बनाते है । अपनी भाषा के सन्दर्भ में स्वयं परसाईजी कहते हैं – ''कोइ लेखक भाषा बनाता नहीं । हमलोग कोई भाषा नहीं बनाते, विश्वविद्यालय में भाषा बनती

हैं । जिस राह से लोग चलेंगे, वहीं सड़क होंगी । जिस पगदंडी से लोग चल रहे है, वह ही सड़क कहलायेगी । तो हम तो भाषा सीखते है । जिस समाज के अंदर हम रहते है, वो ही हमको भाषा सिखाता है । अनुभव भी देता है । कोई भाषा के संस्कार हमारे अध्ययन से, संस्कार से आते है, ये अलग बात है । तो मेरी जो भाषा है, वो सप्रयास नहीं है, लेकिन जीवन को में सही रूप में देखता हूँ ।.... एक सहज भाषा जिसमें मैं अपनी बात अधिकारपूर्वक और प्रभावशाली ढंग से कह सकुँ, ऐसी भाषा मेंने अपनाई । मेरी भाषा बहुत सहज है ।''[५५] संक्षेप में परसाईजी की भाषा अपने आप में अनूठी एवं सामान्य मानवी की भाषा है । उनकी कहानियों की लोकप्रियता में विशेष योगदान उनकी प्रभावोत्पादक भाषा का रहा है, जो स्वयं ही उसकी महत्ता सिद्ध करती है । अंत में श्री कैलाशप्रसाद 'विकल' का परसाईजी की भाषा के संदर्भ में यह लिखना वास्तव में यथार्थोक्ति सिद्ध होता है – ''भाषा का इतना गहरा जनवादी प्रयोग ओर तथ्य की इतनी भेदक दृष्टि मुझे जमाने के किसी और लेखक में प्राप्त नहीं होती ।''[५६]

➢ *नवीन उक्तियाँ – कहावतें – मुहवरे :*

कहावतें, लोकोक्तियाँ और मुहावरें अभिव्यंजना संस्कृति के गूढार्थ को व्यंजित करनेवाले सूत्रकथन हुआ करते हैं । वे परिवर्तनशील होते है । युग और इतिहास के जीवन की नाटकीय छबियों के प्रतीक होते हैं । समाज के जीवन में कितना लालित्य है, वह कितने रंगोवाला है, इसका अंदाजा भी मुहावरों, उक्तियों और कहावतों के चलन–प्रचलन और प्रयोग से लग जाता है । श्री राजेश्वर सक्सेना इसके विषय में लिखते हैं – ''ये (कहावतें, मुहावरे ओर सूक्तियाँ) लोक – प्रचलित छंदों की तरह मुखाग्र होती है । इसमें अभिव्यंजना ओर संप्रेषण के तमाम गुण समाहित होते है । .... इनमें फैंटेसी की कलात्मकता होती है । इनमें सुलक्षित कथ्य की सुगर्भित जीवन–चेतना रहती है । अभिव्यंजना में कितनी विकासमान – प्रगतिमान जीवन शक्ति है, इसका

पता भी पूराने मुहावरों, उक्तियों, कहावतों के मुरझाने और मरने तथा नयों के पैदा होने से लगता है । रचनाकार की प्रतिभा के गुणधर्म भी इनसे स्पष्ट होते है ।"[५७]

खड़ीबोली हिन्दी में उक्तियों, कहावतों और मुहावरों का पुरातन भण्डार है । परसाईजी ने इस भंडार की साफ सफाई की है ओर सड़े गले को निकाल फेंका है । अपनी कहानियों के द्वारा उन्होंने नये युग की आवश्यकता के अनुरूप खड़ीबोली की संप्रेषण क्षमता और अभिव्यंजना क्षमता को आगे बढ़ाया है, प्रौढ़ बनाया है । उनकी प्रत्येक कहानी में नये–नये मुहावरों का प्रयोग हुआ है । श्रेष्ठ ओर कलात्मक सूक्तियाँ उनकी कहानियों में झलकती है । उनकी कहानियों में प्रयुक्त कुछ उदाहरण देखें –

❖ जब जीना मरने से अधिक कष्टकर हो तो मरने को ही सच्चा जीवन मान लेना चाहिए ।
❖ जब पेट भरा हो तो भोजन के नीचे सत्य दब जाता है ।
❖ तली हुई मछली ओर सलाद के साथ देश की दुर्दशा कितनी स्वादिष्ट लगती है ।
❖ शुद्ध आत्मा चालाक होती है, उसे कोई धोखा नहीं दे सकता ।
❖ इस देश का आदमी कब चूहे की तरह आचरण करेगा
❖ वैष्णव ने धर्म को धन्धे से खूब जोड़ा है ।
❖ कुछ बड़े आदमी, जिनकी हैसियत है, इस्पात की नाक लगवा लेते हैं और चमडे का रंग चढ़वा लेते है ।
❖ बिगड़ा रईस ओर बिगड़ा घोड़ा एक तरह के होते है, दोनों बोखला जाते हैं ।
❖ बनिया मन्दिर में भगवान का मुकुट बनवा देगा, पर किसी को नकद एक पेसा भी नही देगा ।
❖ अपने खाने का ठिकाना नहीं है, पर उदारता में कर्ण है ।

- चाहे साम्राज्यवाद हो या प्रजातंत्र – दोनो ही चमचों की बुनियाद पर खड़े रहते है ।
- भूखे की कला, संस्कृति और दर्शन पेट के बाहर नहीं होते ।
- जहाँ मिथ्या का राज होगा, वहाँ सत्य का इसी प्रकार तिरस्कार होगा ।
- सड़ा विद्रोह एक रूपये में चार आने किलो के हिसाब से बिक जाता है ।
- दानशीलता, सीधापन, भोलापन असल में एक तरह का इनवेस्टमेन्ट है ।
- इस देश में सामान्य आदमी के खून का उपयोग फूलों के रंग और खुश्बु देने के काम आ रहा है ।
- आत्मा बड़े लोगों का शोक है... अध्यात्म भी धंधा है ।
- अमरीका हो आने से ईश्वर खुद ही पास सरक आता है और ईश्वर पास सरक आये तो बिजनेस ही बिजनेस हैं ।
- स्वार्थ और परमार्थ ने हाथ मिला लिये है या ईश्वर बिजनेसमैन हो गया है ।
- धर्म धन्धे से जुड़ जाए, इसी को योग कहते है ।"[५८]

इस तरह इन सूक्तियों के माध्यम से परसाईजी ने आधुनिक सभ्यता, संस्कृति एवं नैतिक मूल्य और बदलते हुए मानदण्डों की अभिव्यक्ति की है । परसाईजी के मुहावरें और कहावतों में यह क्षमता है कि वह प्रवाहमान रहते है । ये सभी जीवन–यथार्थ के साथ–साथ संप्रेषणीयता और अभिव्यंजना में अद्वितीय है । संक्षेप में कहे तो परसाईजी ने अपनी कहानियों में शिल्प के नवीनतम प्रयोग करते हुए अपने युग के अनुरूप कहावतें, मुहावरें एवं सूक्तियों का सृजन किया है ।

➢ *बिम्ब योजना :*

साहित्य में बिम्ब का विशेष महत्त्व होता है । बिम्ब–योजना शिल्प का अत्यन्त क्रियाशील पक्ष है । बिम्ब का जन्म कल्पना से होता है । प्रथम

कल्पना, फिर बिम्ब का आविर्भाव, तदुपरांत बिम्ब में से प्रतीक का निर्माण होता है । किसी भी साहित्यकार के मानस में सर्वप्रथम एक कल्पना जन्म लेती है, फिर वह साहित्यकार उस कल्पना को कलम के द्वारा मूर्त रूप प्रदान करता है । साहित्य में कल्पना के सौन्दर्य को मूर्त रूप में प्रकट करना ही बिम्ब–योजना है । संक्षेप में कहे तो बिम्ब का सीधा सम्बन्ध अभिव्यक्ति और मस्तिष्क में उभरनेवाले चित्रो से है ।

परसाईजी ने अपनी कहानियों में प्राचीन बिम्बों को स्थान न देकर अत्यन्त आधुनिक एवं व्यंग्यात्मक बिम्बों की रचना की है । निःसंदेह परसाईजी ने मानव जीवन के कई ऐसे द्वन्द्व ओर अन्तर्विरोध हैं, जो केवल बाहरी स्तर पर ही दिखाइ देते हैं, ऐसी बातों को उन्होंने बिम्ब के द्वारा उभारी है और इतना ही नहीं, इन बिम्बों को उन्होंने हमारे समाज की धार्मिक, सामाजिक एवं पौराणिक मान्यताओं के साथ जोड़कर बड़ी ही गहरी समझदारी से काम लिया है । वैसे परसाईजी अपने साहित्य में बिम्ब का अधिक प्रयोग करते है, ऐसा उन्होंने अपने श्री रमाकान्त मिश्र से हुए साक्षात्कार में कहा है, ''मैं सचमुच 'प्रतीक' से 'बिम्ब' की तरफ जा रहा हूँ, क्योंकि मुझे बिम्ब इस समय अभिव्यक्ति का ठीक माध्यम लगता है तथा मेरे अनुभव शायद बिम्ब से ज्यादा सफलता से प्रकट हो सके । पर यह एक प्रयोग है, सफल न होऊँगा तो 'किस्सा गोईब करने लगूँगा । सामाजिक विकृतियों की अभिव्यक्ति मैं बिम्बों में प्रकट करता हूँ । यह सही है कि मैं आजकल बिम्बो में सोचता हूँ ।''[५६] परसाईजी ने अपनी कहानियों में बहुत से बिम्ब प्रस्तुत किये है । उन्होंने भविष्य का बिम्ब प्रस्तुत करते हुए वर्तमान में होनेवाले शाश्वत मूल्यों के हनन एवं स्वार्थ परता का बिम्ब प्रस्तुत किया है, तो कही पर बिम्ब के माध्यम से सामाजिक कुरीतियो पर आघात किया है । कहीं–कहीं पर तो उन्होंने बिम्ब के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का भी चित्रण प्रकट किया है । जो बात कई पृष्ठों तक कही जा सकती है, उसे बिम्ब के माध्यम से परसाईजी ने अत्यन्त सहजता से अभिव्यक्ति दी है । परसाईजी ने अपनी कहानियों में जहाँ भी

बिम्बों की रचना की है, वहाँ पूरी तरह से सफल रहे है । 'पहला पुल' कहानी में परसाईजी ने पौराणिक पात्रों के द्वारा आधुनिक युग में होते भ्रष्टाचार, आडम्बर एवं भाई–भतीजावाद की स्थिति को उजागर किया है । प्रस्तुत कहानी में पौराणिक पात्रों के द्वारा अत्यन्त सफल बिम्ब का सृजन हुआ है, ''जब पुल तैयार हो गया, तब नल–नील रामचन्द्र के पास आये और साष्टांग दण्डवत् करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये । विनय की प्रभु, पुल बनकर तैयार हो गया है । रामने आश्चर्य से उनकी ओर देखा और कहा यह क्या कहते हो ? पुल बन गया ? ऐसा तो होते नहीं देखा गया । अभी तो मैंने उसका शिलान्यास किया है । जिसका शिलान्यास हो, वह इतनी जल्दी नहीं बनता, बल्कि बनता ही नहीं है । जिन्हें बनना होता है, उनका शिलान्यास नही होता और जिनका शिलान्यास होता है, वे बनाये नही जाते ।''[६०] फिर उस पुल पर जाने के लिए राम ने सुग्रीव को कहा, तब सुग्रीव ने उसके उद्‌घाटन की बात की, जो अत्यंत आवश्यक है और उसके लिए सुग्रीव ने राम के श्वसुर जनकजी को बुलाने की बात की । यथा – ''बिना विधिवत उद्‌घाटन के पुल पर एक कदम भी नहीं रखा जा सकता । कितने पुल बनकर वर्षो से पड़े है, पर उन पर कोई नहीं चलता, क्योंकि उनका उद्‌घाटन नहीं हो सका है । महाराज, पुल पार उतरने के लिए नहीं, बल्कि उद्‌घाटन के लिए बनाये जाते है ।.... मेरी अल्पमति के अनुसार आपके श्वसुर जनकजी के करकमलों से पुल का उद्‌घाटन होना चाहिए ।''[६१] राजा जनकजी को आने में जितना खर्च होता है, उतने में दो पुल और बन सकते थे । जनकजी ने पुल का उद्‌घाटन किया । कुछ ही समय में वह पुल गिर जाता है । और उस पुल के सम्बन्ध में जो जाँच–कमीशन बिठाया था, उसकी रिपोर्ट कलियुग के इस चोथे चरण तक तैयार नहीं हुई । इस तरह इस कहानी में परसाईजी ने पौराणिक बिम्ब के द्वारा वर्तमान समय के दूषणों को समाज के सामने उजागर किया है ।

इस प्रकार परसाईजी की कहानियों में नवीन कल्पनाओं से बने बिम्ब मिलते है । बिम्बों के द्वारा कहानी की संप्रेषणीयता एवं संवेदनशीलता बढ़ जाती है । परसाईजी के सभी बिम्ब सहज एवं अत्यन्त सरल प्रतीत होते है, कहीं पर भी बिम्ब का सायास प्रयत्न नहीं दिखाई देता । सभी बिम्ब स्वाभाविक बन पाये है । संक्षेप में परसाईजी की बिम्ब योजना संक्षिप्त होते हुए भी सचोट है ।

➢ *प्रतीक–योजना :*

प्रतीक का सामान्य अर्थ चिन्ह होता है । प्रतीक एक तरह का संकेत ही होता है, किन्तु प्रतीक में अर्थ की निश्चयात्मकता होती है, जबकि संकेत में अनिश्चितता । प्रतीक कहानी में विशिष्ट अर्थ को व्यंजित करते हैं । किसी भी कल्पना के मुर्त रूप को बिम्ब कहते हैं, उसी प्रकार मूर्त के द्वारा अमूर्त की पहचान को प्रतीक कहा जाता है । प्रतीक अभिव्यक्ति का बहुत बड़ा माध्यम है । जो वस्तु प्रत्यक्ष नहीं है, उसका स्मरण करके प्रस्तुत करना प्रतीक योजना या प्रतीकात्मकता कहलाती है । कुछ प्रतीक सार्वभौम होते है । जैसे सिंह वीरता का, श्वेतरंग पवित्रता का, लोमड़ी चतुराई का, मंदिर शांति का प्रतीक है । यहाँ पर वीरता, पवित्रता, चतुराई, शांति इत्यादि अमूर्त है । जब कि सिंह, श्वेतरंग, लोमड़ी, मंदिर आदि मूर्त है, तो मूर्त के द्वारा अमूर्त की पहचान या फिर स्थापना करना ही प्रतीक योजना है । प्रतीक रहस्यमय होते हैं । श्री नरेन्द्र इष्टवाल लिखते है – ''प्रतीक स्वातंत्र्योत्तर कहानी में आज के व्यस्त संकुल और संश्लिष्ट जीवन का अंग बन गया है । रचनाकार प्रतीकों का प्रयोग अव्यक्त एवं सूक्ष्म अनुभूतियों को मूर्त अभिव्यक्ति देने के लिए उन्हें एक विशाल परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने व रचना को मार्मिक व प्रभावोत्पादक बनाने के लिए करते हैं ।''[६२]

परसाईजी की कहानियों में प्रतीकों का सार्थक प्रयोग देखने को मिलता है । उनके प्रतीक सूक्ष्म एवं अमूर्त संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने में समर्थ

है । परसाईजी की कहानियों में काल व स्थान ही प्रतीकात्मक नहीं होते, बल्कि कई पात्र भी प्रतीक के रूप में आते है । विशेषकर परसाईजी ने पूराने प्रतीकों को नये सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है । गूढ़ार्थ को अभिव्यंजित करने के लिए परसाईजी ने भेड़–भेड़िये, कुता, उल्लू, सुअर, दीमक, पेपरवेट, अयोध्या, वैष्णव की होटल, वानरराज, एकलव्य, इन्द्रासन, हनुमान का लाल लंगोट, टार्च, मोर, गधा, बैंगन जेसे कई शब्दों के द्वारा प्रतीक योजना प्रस्तुत की है । उन्होंने अपनी बहुत–सी कहानियों में अनेकों प्रतीकों का सृजन किया है । उनकी 'जैसे उनके दिन फिरे', 'वैष्णव की फिसलन', 'भेड़ें ओर भेड़ियें', 'भोलाराम का जीव', 'दो नाकवाले लोग' आदि कई कहानियों में प्रतीको के द्वारा प्रवर्तमान समय की समस्याएँ प्रकट हुई है । परसाईजी कुछ कहानियों में राजनैतिक स्थितियों को प्रतीक के माध्यम से उजागर करते हैं और बड़े–बड़े व्यक्तियों की बुराइयों का पर्दाफाश करते हैं । परसाईजी की 'जैसे उनके दिन फिरे' कहानी प्रतीकात्मक कहानी है । इसमे लेखक ने आधुनिक वास्तविक यथार्थ को प्रस्तुत किया है कि आज के युग में जो सबसे ज्यादा प्रजा का धन लूटने में समर्थ और चालक है, वही उत्तराधिकारी बनने के लिए योग्य हैं क्योंकि आजादी के बाद हमारे राष्ट्र की यही स्थिति है । 'भेड़ें और भेड़ियें' में प्राणियों के प्रतीकों के द्वारा परसाईजीने वर्तमान राजनेताओं की स्वार्थ लोलुपता को प्रकट किया है, तो 'भोलाराम के जीव' के प्रतीक द्वारा सरकारी तंत्र में चलनेवाली भ्रष्टाचारी नीतियों को स्पष्ट किया है । ऐसे ही 'वैष्णव की फिसलन' कहानी के द्वारा परसाईजी ने धर्म की आड़ में तथा ईश्वर के नाम पर मनुष्य की भ्रष्टता का संकेत दिया है । कहानी में वैष्णव भक्त प्रभु के नाम का आधार लेकर कितने ही बुरे कार्य करता है । उसके पास बहुत–सा धन है, जो बुरे कर्मो से कमाया है । कहानी में परसाईजीने वैष्णव के प्रतीक के द्वारा बहुत–सी बातों का संकेत दिया है । ''वैष्णव एक दिन प्रभु की पूजा के बाद हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा, – 'प्रभु, आपके ही आशीर्वाद से मेरे पास इतना सारा दो नम्बर का धन इकट्ठा हो गया है । अब मैं इसका क्या करु ? आप ही

रास्ता बताइए । मैं इसका क्या करु ? प्रभु ! कष्ट हरो सबका’ तभी वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज उठी, ‘अधम, माया जोड़ी है, तो माया का उपयोग भी सीख । तू एक बड़ा होटल खोल । आजकल होटल बहुत चल रहे हैं ।’’[६३] आगे चलकर उस होटल में धर्म की आड़ लेकर मांस, शराब और सुन्दरियों का मिलना शुरु होता है । संपूर्ण कहानी प्रतीकात्मक है । धर्म, भक्ति, ईश्वर इत्यादि के प्रतीक द्वारा प्रवर्तमान समय की बुराइयों का पर्दाफाश किया गया है । वैष्णव भी अपने धन्धे को धर्म से जोड़ देता है । धर्म भी कितना सिद्धान्तहीन, भ्रष्ट और शोषक हो गया है ।

इस तरह परसाईजी की कहानियों में प्रयुक्त नवीन प्रतीक आधुनिक यथार्थ को पूर्ण अभिव्यक्ति देते हैं । संक्षेप में कहे तो परसाईजीने अपनी कहानियों में बड़े ही सटीक प्रतीकों का सही एवं सुन्दर चयन करके उनको सफलतापूर्वक प्रयुक्त किये हैं ।

➢ *कहानी में फन्तासी :*

अंग्रेजी भाषा के ‘फैंटेसी’ शब्द का हिन्दी पर्याय ‘फन्तासी’ होता है । फन्तासी अभिव्यक्ति का एक माध्यम है । फन्तासी को ‘काल्पनिक’ भी कहा जा सकता है, क्योंकि फन्तासी के पर्याय के रूप में कल्पना, स्वप्नचित्र, भ्रांति, मोह इत्यादि शब्द प्रयुक्त किये जाते है । इस अर्थ में फन्तासी के द्वारा कहानी में कल्पना के माध्यम से यथार्थ का चित्रण करना होता है । डॉ. अर्चनासिंह लिखती है, – ‘‘फन्तासी में लोक–कल्पना का पूरा प्रयोग किया जाता है, इसलिये फन्तासी लोकजीवन के विविध रंगो को उभारने में पर्याप्त सहायक होती है ।’’[६४] फन्तासी में कल्पना का भरपूर प्रयोग किया जाता है । व्यंग्य की सर्जना में फन्तासी का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है । डॉ. मनोहर देवलिया फन्तासी में वास्तविकता का महत्त्व स्वीकार करते हुए लिखते है, – ‘‘ फैंटेसी वास्तविकता नहीं है, किन्तु वह यथार्थ से अधिक वास्तविक लगती है । वास्तविकता के बगैर फैंटेसी का अस्तित्व संभव नहीं है, इसीलिए फैंटेसी यथार्थ

और माया के बीच स्वतंत्र आवाजा ही करती है । वह कभी भ्रम पैदा करती है कि वह यथार्थ है और कभी अपने ही पैदा किये भ्रम को तोड़ती हुई यह घोषणा करती है कि वह 'माया' है । लेकिन दोनों ही स्थितियों में वह हमारे लिए वास्तविकता का कुछ ऐसा बोध कराती है, जो वास्तविकता में रहते हुए, हमें देखना संभव नहीं था ।[६५] कोई भी साहित्यकार फन्तासी के माध्यम से कहानी और साहित्य की अन्य सभी विधाओं में व्यंग्य का सृजन करने में पूर्ण सफल हो सकता है ।

परसाईजी ने फन्तासी का प्रयोग बहुत ही सुन्दर रूप से किया है । फन्तासी के विषय में उनका कहना है, – "लोक कल्पना से दीर्घकालीन सम्पर्क और लोक–मानस से परम्परागत संगति के कारण 'फैंटसी' की व्यंजना प्रभावकारी होती हैं । इसमें स्वतंत्रता भी काफी होती है और कार्यकारण सम्बन्ध का शिकंजा ढीला होता है, यों इसकी सीमाएँ भी बहुत है ।"[६६] इस तरह फन्तासी प्रभावशाली व्यंजना और स्वतंत्रता होती है, यह जानते हुए ही परसाईजीने इसका चयन किया है । परसाईजी की बहुत सी कहानियाँ फन्तासी के द्वारा लिखी गयी है । उनकी 'एक वैष्णव की कथा', 'जैसे उनके दिन फिरे', 'अकाल उत्सव', 'निठल्लेपन का दर्शन', 'सदाचार का तावीज', 'दो नाकवाले लोग', 'एक फिल्म कथा', 'इन्सपेक्टर माता दीन चाँद पर' इत्यादि कई कहानियाँ फन्तासी में लिखी गयी है । परसाईजी की फन्तासी कहानियाँ लघु आकार की है । उन्होंने बहुत विस्तृत फन्तासी नहीं लिखी । अपितु परसाईजी इतने प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे कि उनकी कहानियों में कहीं–कहीं तो छोटे–छोटे वाक्यों में भी लम्बी फन्तासी पायी जाती है । परसाईजी की 'इन्स्पेक्टर मातादीन चाँद पर' एक प्रभावक फन्तासी है । इस कहानी में परसाईजी ने एक भ्रष्ट पुलिस अफसर को कल्पना के द्वारा चाँद पर भेजा है, जहाँ जाकर उसने वे सभी बुराइयाँ एवं भ्रष्टाचार चाँद पर भी फैला दिये, जो पृथ्वी पर उनके द्वारा किये जाते थे । कल्पना के द्वारा आधुनिक युग के भीषण यथार्थ का परसाई ने भंड़ा फोड़ा है । मातादीन चाँद पर जाकर वहाँ कैसी अव्यवस्था

फैलाता है और जो स्थिति बनाता है, वह सभी बाते परसाईजीने कहानी के अंत में लिखी है, – ''कोई आदमी किसी मरते हुए आदमी के पास नहीं जाता, इस डर से कि वह कत्ल के मामले में फँसा दिया जायेगा । बेटा बीमार बाप की सेवा नहीं करता । वह डरता है, बाप मर गया तो उस पर कहीं हत्या का आरोप नहीं लगा दिया जाय । घर जलते रहते हैं और कोई बुझाने नहीं जाता–डरता है कि कहीं उस पर आग लगाने का जुर्म कायम न कर दिया जाय । बच्चे नदी में डूबते रहते है और कोई उन्हें नहीं बचाता । इस डर से कि उस पर बच्चे को डूबाने का आरोप न लग जाय । सारे मानवीय सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं । मातादीनजी ने हमारी आधी संस्कृति नष्ट कर दी है । अगर वे यहाँ रहे तो पूरी संस्कृति नष्ट कर देंगे । उन्हें फौरन रामराज में बुला लिया जाय ।''[६७] इस तरह परसाईजीने फन्तासी के माध्यम से हमारी पुलिस के द्वारा किये जानेवाले भ्रष्टाचार एवं अव्यवस्था का तादृश्य चित्रण किया है । ऐसे ही 'सदाचार का तावीज' कहानी में परसाईजी ने आधुनिक भारत की आर्थिक स्थिति को व्यक्त किया है । तो 'जैसे उनके दिन फिरे' में जनता का शोषण एवं समाज में फैली बुराइयों का स्पष्ट संकेत दिया है ।

संक्षेप में परसाईजी की सर्जनात्मक क्षमता उच्चकोटि की है । फलतः उनकी फन्तासी में लिखी गयी सभी कहानियों में प्रवर्तमान यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति हुई है । सच तो यह है कि परसाईजी ने फन्तासी के माध्यम से अपना जीवनानुभव व्यक्त किया है । फलतः उनकी फन्तासी कहानियाँ अत्यधिक प्रभावशाली एवं अभिव्यंजना में पूर्ण सक्षम बन पायी है ।

➢ *प्राचीन कथाओं का नवीन संदर्भ में प्रयोग :–*

हमारे साहित्य में बहुत–सी प्राचीन कथाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हुई है । रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद, पंचतंत्र, हितोपदेश, विक्रम–बैताल की कथाएँ इत्यादि बहुत–सी प्राचीन कथाओं का सृजन भारतीय–साहित्य में हुआ

है । आधुनिक युग में साहित्यकार अपनी रचनाओं में प्राचीन कथाओं को नवीन संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए एक नवीन प्रयोग करते है । डॉ. अर्चनासिंह लिखती है, – ''आधुनिक कथाकार प्रायः पौराणिक कथाओं का प्रस्तुतीकरण आधुनिक परिवेश में करके एक प्रकार का नवीन प्रयोग कर रहे हैं । परसाईजी ने भी इस प्रकार की रचना की है तथा पौराणिक एवं पुरातन कथाओं–कहानियों को नये सन्दर्भ में देखा, परखा एवं प्रस्तुत किया है । अन्धायुग नामक रचना इस प्रकार का एक सफल प्रयोग है । धर्मवीर भारती द्वारा किया गया यह प्रयोग हिन्दी साहित्य जगत के लिए एक अद्‌भुत रचना है ।''[६८]

परसाईजीने अपनी बहुत–सी कहानियों का मूलाधार प्राचीन कथाओं से लिया है । उनकी 'सुदामा के चावल', 'बैताल की छब्बीसवी कथा', 'बैताल की सत्ताईसवी कथा', 'बैताल की अट्ठाइसवी कथा', 'त्रिशंकु बेचारा', 'मेनका का तपोभंग', 'पहला पुल', 'लंका–विजय के बाद', 'हनुमान की रेल–यात्रा', 'एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया', 'इतिहास का सबसे बड़ा जुआ' इत्यादि कहानियों में रामायण, महाभारत, पुराण एवं प्राचीन लोककथाओं को लेकर परसाईजी ने नवीन संदर्भ में प्रस्तुत करके एक नवीन प्रयोग किया है । डॉ. मदालशा व्यास लिखती है, – ''परसाई ने पौराणिक कथाओं का नवीन प्रयोग किया है । वे भारतीय जीवन के परम्परागत पुराण और इतिहास से पात्र लेते है और व्यंग्य द्वारा एक नया ही अर्थ प्रस्तुत कर देते है । रचनाकार समाज से ही पात्र एवं चीजें उठाता है और मिथक का सहारा लेकर अपने अनुभवों से सर्वथा नवीनता प्रदान कर उसे फिर समाज को लौटा देता है । शायद कला में जीवन का रचनात्मक पुनर्सृजन यही है । परसाई प्राचीन मिथकों को बड़ी खूबी से इस तरह प्रासंगिक बना देते हैं कि उनमें आज की व्यवस्था का तंत्र प्रस्तुत हो जाता है ।''[६९] परसाईजीने अपनी कहानियों में प्राचीन पात्रों, कथाएँ एवं घटनाओं को आधुनिक प्रवर्तमान युग के संदर्भ में रखकर देखा है तथा नवीन कथा के रूप में प्रस्तुत किया है और इस प्राचीन कथाओं को

नवीन संदर्भ में प्रस्तुत करके परसाईजी ने अत्यन्त सूक्ष्मता से आधुनिक यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति की है । आज के इस अत्याधुनिक युग की राजनीति एवं सड़े हुए समाज के वास्तविक रूप का यथार्थ चित्रण प्रकट किया है । परसाईजी की 'सुदामा के चावल', 'पहला पुल' भ्रष्टाचार की विडम्बना को व्यक्त करते है, तो 'एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया' कहानी आधुनिक युग की शिक्षा का यथार्थ रूप प्रकट करती है । 'बैताल की कथाएँ' एवं 'त्रिशंकु बेचारा' सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश करती है । 'सुदामा के चावल' कहानी में सुदामा कृष्ण से मिलने जाते है, तब उसके राज्य के कर्मचारी सुदामा के पास रिश्वत मांगते है और दरिद्र सुदामा के चावल सभी कर्मचारी खा जाते है । सुदामा महाराज कृष्ण को सारी बाते बताते है, तब कृष्ण सुदामा से यह बात किसी को न बताने के लिए बहुत धन देते है । इस प्रकार दोनों मित्रों के बीच सौदा तय होता है । कहानी में कृष्ण सुदामा से कहते हे, – "मैं तुमसे सौदा कर सकता हूँ । तुम्हारे पास राज्य का एक रहस्य है जिसे प्रकट करने में शासन कलंकित होगा । बोलो, इस रहस्य को गुप्त रखने का क्या लोगे ? यहाँ इसी तरह दे–लेकर मुँह बन्द कर दिया जाता है ।"[७०]

इस तरह परसाईजीने अपनी कहानियों में प्राचीन कथाओं को नवीन संदर्भ में प्रस्तुत करके प्रवर्तमान युग की विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण किया है । इस दृष्टि से परसाईजी की कहानियों में यह एक अत्यन्त नवीन एवं सफल प्रयोग माना जाता है ।

➢ *शैली :*

शैली कहानी के कलेवर को सुसज्जित करनेवाला कलात्मक आवरण होती है । इसका सम्बन्ध–कहानीकार के आंतरिक और बाह्य पक्षों से रहता है । कहानी–लेखक अपनी कहानी अनेक प्रकार से कहना चाहता है । वह उसे वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक, विवरणात्मक, पत्रात्मक इत्यादि किसी भी रूप में लिख सकता है । उसकी शैली ऐसी हो, जो पाठकों के मन को अपनी

ओर आकृष्ट कर सके । कहानी में शैली के आधार पर ही कहानी की रचना होती है ।

परसाईजी की कहानियों को देखा जाय, तो परसाईजी ने विशेषकर व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है, क्योंकि परसाईजी एक व्यंग्यकार है । अतः उनकी प्रत्येक रचना में व्यंग्य का होना अत्यन्त स्वाभाविक है । इसके अतिरिक्त उन्होंने संवादात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक इत्यादि शैलियों का भी अपनी कहानियों में यथास्थान सृजन किया है । कथ्य को सँवारने के लिए परसाईजीने कहानियों में विविध प्रयोग किये हैं । उन्होंने लोककथाओं की शैली, फन्तासी, चुटीली लघुकथाएँ, रिपोर्ताज शैली का प्रयोग किया है । कथ्य सहज रूप में सम्प्रेषणीय बने, कैसे बने इसका उन्हें ज्ञान है । लोकजीवन में प्रचलित कथाशैलियों में लिखी गयी कहानियाँ साधारण से साधारण आदमी को ग्राह्य हो जाती है । किसी भी कहानीकार ने परसाईजी जैसे प्रयोग नहीं किये है । उनकी 'जैसे उनके दिन फिरे', 'हनुमान की रेलयात्रा', 'सदाचार का तावीज', 'एक जोरदार लड़के की कहानी,' 'एक तृप्त आदमी की कहानी', 'दस दिन का अनशन' आदि कई कहानियो में उनके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न शैलियाँ झलकती है । परसाईजी की व्यंग्यात्मक शैली के विषय में श्रीलाल शुक्ल लिखते है, – " 'सदाचार का तावीज' या उससे भी ज्यादा पुष्ट रचनाओं वाले संग्रह 'जैसे उनके दिन फिरे' की कथाओं के सहारे किसी भी साहित्य की विपन्नता टूट सकती है । इनमें व्यंग्य की लगभग सभी क्लासिकी शैलियों का उन्होंने सार्थक प्रयोग किया है । लोककथाओं का छद्म पौराणिकता का, पैरोडी अन्योक्ति–अतिश्योक्ति का, गाली–गलौज, घिसाई–रगडाई का – हर व्यंग्य परक तरकीब का सहज अनायास खेल इनमें देखा जा सकता है । उनमें त्रिशंकु की गाथा का नया रूप है, वैतालपचीसी की परिवर्धित कथाएँ है, चन्द्रलोक में पुलिस अफसर के करिश्मे हैं, हनुमान की रेल–यात्रा और रामकथा के अभिनव संस्करण है । कथाओं के ताने–बाने में बार–बार परसाई की मौलिकता और

आविष्कारक प्रतिभा का साक्षात्कार होता है । परसाई की कहानियाँ हमेशा नयी सूझ से आती हैं, अपने को कहीं दोहराती नहीं है ।"[७१]

परसाईजी की कहानियों की एक विशेषता उनकी सहजशैली है । उनकी किसी भी कहानी पर दुरुहता या क्लिष्टता का आरोप नहीं लगाया जा सकता । अस्पष्टता का भी नहीं । वे स्पष्ट रूप से जानते हैं कि उन्हें क्या कहना है । अतः उनकी कहानियाँ हर स्तर के पाठक के लिए सहज रूप से बोधगम्य और प्रभावशाली है । परसाईजी की बहुत–सी कहानियों में एक से अधिक शैलियाँ दृष्टव्य होती है । जैसे उनकी कहानी 'एक मध्यवर्गीय कुत्ता' में आत्मकथात्मक, संवादात्मक एवं व्यंग्यात्मक इत्यादि कई शैलियाँ प्रयुक्त हुई है । यथा – "मेरे मित्र की कार बंगले में घुसी तो उतरते हुए मैंने पूछा, 'इनके यहाँ कुता तो नहीं है ?' मित्र ने कहा, 'तुम कुत्ते से बहुत डरते हो ।' मैंने कहा, 'आदमी की शक्ल में कुते से नहीं डरता । उनसे निपट लेता हूँ । पर सच्चे कुते से बहुत डरता हूँ ।' कुतेवाले घर मुझे अच्छे नहीं लगते । वहाँ जाओ तो मेजबाज के पहले कुता भौंककर स्वागत करता है । अपने स्नेही से 'नमस्ते' हुई ही नहीं कि कुते ने गाली दे दी – क्यों यहाँ आया बे ? तेरे बाप का घर है ? भाग यहाँ से ।"[७२] इस तरह परसाईजी की कहानियों में शैली–सौन्दर्य भी दृष्टिगोचर होता है ।

इस प्रकार शिल्प की दृष्टि से देखा जाय तो परसाईजी की कहानियाँ अपने कथ्य की सघनता के कारण वे शिल्प की मोहताज नहीं है, बल्कि उसी कथ्य के अनुरूप अपना शिल्प भी वे स्वयं खोज लेती है । इतिहास, पुराण, लोककथा, लोकवार्ता और फैंटेसी ये सारी चीजे उनके यहाँ उनकी अपनी शर्तो पर उपस्थित है । परसाईजी जैसे चाहते हैं काम लेते हैं । काल की परिमिति यहाँ स्थगित हो जाती हैं और सब कुछ एक विराट वर्तमान पर आकर स्थिर हो जाता है ।

❀ व्यंग्य :

साहित्य में व्यंग्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । व्यंग्य साहित्य मे, प्रत्येक काल में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है । यह बात अलग है कि उसका स्वरूप भिन्न–भिन्न काल में भिन्न–भिन्न रहा है । व्यंग्य द्वारा समाज, धर्म तथा राजनीति की कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न युगों से जारी है । समाज तथा राजनीति एवं अन्य क्षेत्रों में प्रचलित कुरीतियाँ ही प्रायः व्यंग्य का विषय बनी हैं । प्राचीन काल से व्यंग्यकारों का यह मंतव्य रहा है कि तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक कुरीतियों को दूर किया जाय । उन्होंने इन त्रुट्टियो को व्यंग्य के माध्यम से ही उजागर किया है । श्रीराममूर्ति त्रिपाठी लिखते है, – ‘‘यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्म–साक्षात्कार कराता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था की सडाँध को इंगित करता है और परिवर्तन की और प्रेरित करता है – तो वह सफल व्यंग्य है ।’’[७३] ‘व्यंग्य’ शब्द भारतीय साहित्य में नया नहीं है । हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार ‘वि’ तथा ‘अंग’ के योग से ‘व्यंग’ तथा ‘व्यंग’ से ‘व्यंग्य’ शब्द का निर्माण हुआ है । अंग्रेजी में ‘व्यंग्य’ के लिए ‘सेटायर’ का प्रयोग होता है । साहित्य में ‘व्यंग्य’ का अर्थ है – व्यक्ति या समाज के दोषों, न्यूनताओं को सीधे न कहकर टेढे ढंग से प्रस्तुत अभिव्यक्ति – जो सामाजिक, नैतिक, आर्थिक अन्याय, अविचार, विसंगतियाँ, अन्तर्विरोध आदि को दर्शाती है ।

श्री हरिशंकर परसाई आधुनिक व्यंग्य लेखन के उज्जवल नक्षत्र हैं । परसाईजी की कहानियाँ व्यंग्यपरक है यह कहने की अपेक्षा यही कहा जाय कि उनकी कहानियों के प्राण ही व्यंग्य है, तो सर्वथा उचित होगा । व्यंग्य के साथ उनकी कहानियों में संवेदनशीलता भी व्याप्त है । परसाईजीने अपनी कहानियो में पौराणिक एवं एतिहासिक पात्रों, प्रचलित कथाओं, तथा अपनी काल्पनिक बनायी हुई कथाओ को व्यंग्य के द्वारा आधुनिक युग के सामाजिक यथार्थ के

साथ ऐसा सन्नियोजन किया है, कि उनकी प्रत्येक कहानी अपनी व्यंग्यात्मक और युगबोध के कारण अधिक प्रभावक हो उठी है । अपनी सृजनात्मक कल्पना के कारण परसाईजी युग–जीवन की समस्याओं को बड़े ही सहज भाव से प्रकट कर सके है । डॉ. मदालशा व्यास लिखती है, – ''परसाई की कहानियों में उदासीनता, आत्मालाप और नकारात्मक भावबोध नहीं है, यहाँ मानवीय संवेदना है, कोरी भावुकता नहीं । परसाई के पात्र परिस्थितियों से जूझते हुए भी कभी दया की भीख माँगते नजर नहीं आते । उन्होंने जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं पर अपनी कहानियों के माध्यम से व्यंग्य किया है ।''[७४] परसाईजी ने अपनी कहानियों में व्यंग्य के द्वारा आधुनिक समाज के लगभग सभी कोनों को छुआ है । जीवन के सभी समसामयिक प्रश्नों पर गहनता से विचार किया है। पाठक को भी वे सभी क्षेत्रों पर सोचने के लिए विवश करते हैं । इसी कारण उनकी कहानियों में निम्नांकित राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक इत्यादि सभी क्षेत्र पर किये गये सफल व्यंग्य की झांकी पायी जाती है ।

१. प्रशासन एवं राजनीति पर व्यंग्य :

परसाईजी ने अपनी कहानियों में सर्वाधिक राजनैतिक व्यंग्य की कहानियाँ लिखी है । राजनीति के विषय में स्वयं परसाईजी लिखते है, – ''राजनीति बहुत बड़ी निर्णायक शक्ति हो गयी है । वह जीवन से बिलकुल मिली हुई है ।..... राजनीति सिद्धान्त और व्यवहार की हमारे जीवन का एक अंग है । उससे नफरत करना बेफकूफी है ।''[७५] परसाईजी के राजनीतिक विचारों का आधार उनका निरपेक्ष इतिहास बोध है । वे मानव संघर्ष के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में ही वर्तमान राजनीति को देखते है । राजनीति पर किये व्यंग्य ने परसाईजी के यथार्थवाद को न केवल प्रासंगिक और अनिवार्य बनाया है, बल्कि समूचे जीवन की खुली सच्चाई का दस्तावेज बना दिया है ।

परसाईजी की मुख्यतः 'आमरण अनशन', 'भेड़ें और भेड़ियें', 'जैसे उनके दिन फिरे', 'सुदामा के चावल', 'इन्स्पेक्टर मातादीन चाँद पर', 'ग्रान्ट अभी तक नहीं आई', 'राजनीति का बँटवारा', 'मुंडन', 'पहला पुल' इत्यादि बहुत–सी कहानियों में उन्होंने राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है । 'आमरण अनशन' कहानी में परसाईजी ने नाम एवं प्रतिष्ठा के भूखे धनवानों पर करारा व्यंग्य किया है । लोग धन का दान तो करते है, पर वह नाम एवं प्रतिष्ठा के लिए उसमें दाम कम, दिखावा ज्यादा होता हैं । परसाईजी ने नाम एवं प्रतिष्ठा के भूखे नेता एवं अध्यक्षों को भी नहीं छोड़ा, जो नाम की लालसा में धूर्तता एवं बदमासी पर उतर आते हैं । ऐसे लोगों के गिरते चरित्रों को व्यंग्य से मारा हैं । परसाईजी ने इस कहानी के द्वारा आज की अनशन प्रथा पर भी जोरदार व्यंग्य कसा है । बात–बात पर अनशन करनेवालों पर मीठा प्रहार किया हैं । ये लोग भ्रष्टाचार को शिष्टाचार मानकर चलने से ही नेता एवं धनवान बने हैं । 'भेड़ें और भेड़ियें' कहानी प्रतीकात्मक है, गौर से देखा जाये तो कहानी के पात्र भेड़ें, भेड़िये, सियार आदि आज भी समाज में पाये जाते हैं । भेड़ें आम जनता का प्रतीक हैं, तो भेड़ियें नेताओ का । कैसी विचित्र बात है कि दस प्रतिशत लोग अपनी चालाकी से नब्बे प्रतिशत लोगों को मूर्ख बनाकर उस पर शासन करते है । परसाईजी ने उनके शासन में होते अत्याचार का संकेत दिया है, – ''हर भेड़िये को सवेरे नाश्ते के लिए भेड़ का मुलायम बच्चा दिया जाये, दोपहर के भोजन में एक पुरी भेड़ तथा शाम को स्वास्थ्य के ख्याल से कम खाना चाहिए, इसलिए आधी भेड़ दी जाये ।''[७६] इस कहानी में परसाईजी ने खुशामदी लोग जो नेताओं के आसपास रहकर अपना उल्लू सीधा करते है, ऐसे लोगों पर परसाईजी ने व्यंग्यबाण चलाये है । आज के कवि, लेखक, नेता, धर्मगुरु आदि सब राजनीति के खिलौने बन चुके हैं और सच्चाई का दामन छोड़कर बेइमानी–धूर्तता के रंग ओढ़ लिए है ।

'जैसे उनके दिन फिरे' कहानी राजनैतिक है, जो लोककथा के रूप में प्रस्तुत हुई है । इसमे स्वार्थी, लालची, अनैतिक व्यक्तियों पर तीव्र प्रहार मिलता

है । यह कहानी संकेतात्मक है, स्वतंत्रता के बाद सत्ता प्राप्त करने के स्वार्थी शासकों पर व्यंग्य मिलता हैं । इस स्पर्धा में ईमानदार और परिश्रमी को तो कोई पूछता ही नहीं । इसमें लुटेरे, डाकु और मिलावट करनेवाले व्यापारी भी पीछे रह जाते हैं । इस स्पर्धा के विजयी तो वे बनते हैं, जो पहनते सादी वेशभूषा पर रहते राजसी ठाठ में और ईमानदारों के खुन पसीनों की कमायी पानी की तरह बहाते फिर भी उनकी ईमानदारी तो निष्कलंक ही रहती हैं । ऐसे लोगों की विचारधारा अत्यन्त स्वार्थीवृत्ति की है, – ''राज्य का आधार धन हैं । राजा को प्रजा से धन वसूल करने की विद्या आनी चाहिए । प्रजा से प्रसन्नतापूर्वक धन खींच लेना राजा का आवश्यक गुण है । उसे बिना नश्तर लगाये खून निकालना आना चाहिए ।''[७७] परसाईजीने इस कहानी में सत्ताधारियों पर करारा व्यंग्य फटकारा है । 'सुदामा के चावल' कहानी शासक और शासन व्यवस्था पर चोटकर व्यंग्य की कहानी है । परसाईजीने इस कहानी में प्राचीन पात्रों के द्वारा आज की राजनैतिक व्यवस्था को उजागर किया है । शासन में रहा हर शासक प्रजा से पहले अपने रिश्तेदारों का भला करेगा । वैभव के आगे विद्वान झुक जाते हैं । वैभवशीलता में अपनी विद्वता प्रदर्शित करते हैं । परसाईजी ने इस कहानी में शासनव्यवस्था से अनभिज्ञशासक राजा तथा राज्य के कर्मचारी एवं विद्वान व्यक्तियों की भ्रष्टाचारी नीतियों पर व्यंग्य करते हुए प्रवर्तमान युग की राजनीति को स्पष्ट किया है । ऐसे ही परसाईजी की 'इन्स्पेक्टर मातादीन चाँद पर' कहानी में हमारी आज की शासन व्यवस्था पर व्यंग्य किया हैं । साथ ही पुलिसतंत्र पर भी व्यंग्य किया गया है । इस कहानी में लेखक ने देश में चल रही रिश्वतखोरी की बात कही है । इस देश में चपरासी से लेकर राजनेता तक लांच रिश्वत लेते हैं । अतः पूरी राजकीय व्यवस्था बुराई का स्थान बन चुकी है । देश की पुलिस की स्थिति और प्रशासन का वर्णन इस प्रकार हैं, – ''कम तनखा दोगे, तो मुलाजिम की गुजर नहीं होगी ।..... उसे उपरी आमदनी करनी ही पड़ेगी और ऊपरी आमदनी

तभी होगी जब वह अपराधी को पकडेगा ।..... हमारे रामराज के स्वच्छ और सक्षम प्रशासन का यही रहस्य है ।'[७८]

इस तरह परसाईजी की कहानियों में अत्र–तत्र राजनैतिक व्यंग्य पाया जाता है । राजनीतिक विसंगतियाँ और विरूपता का परसाईजीने व्यंग्य के द्वारा पर्दाफाश किया है ।

२. *समाज में व्याप्त दूषण एवं कुरीवाजों पर व्यंग्य :*

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं । उसे समाज के रीत–रिवाजों को निभाते हुए उनका पालन करते हुए, इन नियम–कायदों को उनकी समस्त कमजोरियों अथवा न्यूनताओं के संदर्भ में समझते हुए चलना पड़ता है । ऊँच–नीच का भेदभाव विभिन्न सामाजिक अंधविश्वास, जाति बिरादरी व्यक्ति को प्रायः इतना कमजोर, बेजान और जर्जर बना डालते हैं कि उसका समूचा व्यक्तित्व ही नहीं, मनुष्यता के मान मूल्य भी खतरे में पड़ जाते हैं । समाज को जीवन में व्याप्त ये सभी विसंगतियाँ, रचनाकार की चेतना को झकझोरती हैं, उस पर आघात करती है तथा उसे चिन्तन लेखनी अथवा तूलिका के माध्यमों द्वारा स्वयं को व्यक्त करने के लिए, अपनी वास्तविक तथा यथार्थ प्रतिक्रियाओं को कारगर रूप में स्पष्ट करने के लिए व्यंग्य कथनों का उपयोग करने, व्यंग्य द्वारा प्रहार की मुद्रा अपनाने या व्यंग्य चित्रों के जरिये विसंगतियों को मूर्त रूप देने की दिशा में प्रेरित करती है । समाज में व्याप्त विसंगतियों को जितने गहरे जाकर व्यंग्यकार पकडता है, उनके कारणों तक जा सकता है, उतनी ही उसके व्यंग्य लेखन में गम्भीरता और सार्थकता आती जाती हैं । परसाईजी भी ऐसे ही व्यंग्यकार है, जिन्होंने अपनी कहानियों में समाज में व्याप्त विसंगतियों को गहरे से खोजा है और अपने व्यंग्य का आधार बनाया है ।

परसाईजी की 'सदाचार का तावीज', 'एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया', 'भोलाराम का जीव', 'भीतर का घाव', 'दो नाकवाले लोग' इत्यादि बहुत–सी कहानियों में सामाजिक व्यंग्य देखा जा सकता है । 'सदाचार का

तावीज' कहानी आर्थिक सुरक्षा के अभाव में भ्रष्टाचार प्रयासो से सफल न होने की ओर संकेत करती है । जब तक आर्थिक सुरक्षा नहीं प्राप्त होती, भाषणो, सर्कुलरो, उपदेशो, समितियों, निगरानी आयोगों के तावीजो से कोई कर्मचारी भ्रष्टहीन नहीं बन सकता । 'भोलाराम का जीव' कहानी में परसाईजी ने रेल्वे, ठेकेदारो, इंजीनियरो, ओवरसीयरो आदि के अकार्यो को व्यंग्य से प्रकाशित करके आम जनता के सामने उन्हें बेनकाब किया हे, जो आम जनता की सुख–सुविधा उन तक पहुँचने से पहले बीच में ही खा जाते हैं, – "कई इमारतो के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रदी इमारते बनायी । बड़े–बड़े इंजीनियर भी आ गये है, जिन्होंने ठेकेदारो से मिलकर पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया । ओवरसीयर है, जिन्होंने उन मजदूरो की हाजिरी भरकर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गये ही नहीं ।"[७९] इस कहानी में 'वजन' शब्द आज की घूसखोरी का उत्तमोत्तम नमूना हैं । यहाँ परसाईजीने जो–जो समस्या उठायी है, वह आज भी वैसी ही वैसी नजर आती है । डॉ. सुरेश माहेश्वरी ने प्रस्तुत कहानी के संदर्भ में लिखा है, – "भोलाराम का जीव' कहानी लालफीता वाले दफतरी तंत्र को उजागर करती है, जहाँ Weight न रखने से मरण–पर्यन्त Wait करना पड़ता है । रिटायरमेन्ट के पाँच साल बीत जाने पर भी पेन्शन मंजूर नहीं होता । यह तब मंजूर होती है, जब फाइल पर वजन–रिश्वत रखी जाती है ।"[८०]

'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया' कहानी संपूर्ण व्यंग्यामक हैं । इसमें पिछड़ी मुद्रणकला के प्रकाशन, प्रचार व परतंत्रता पर प्रकाश पाया जाता हैं । विद्यार्थियों में भेदभाव रखते अध्यापकों एवं शिक्षित बेकारी जैसी समस्याओं पर प्रकाश मिलता है । खुशामदी विद्यार्थी एवं परिश्रमी विद्यार्थी के फर्क को दर्शाया गया हैं । शिक्षा जगत की कुरूपता एवं गुरुमहिमा का गलत उपयोग करनेवालों पर भी वार किया गया है । पद का अनुचित लाभ उठानेवाले अध्यापक भी नहीं बचे । अपने दोषों पर युगीन विरूपता का नकाब पहनते अध्यापकों की मनोवृत्ति दर्शायी है, साथ ही जागरुकता का प्रचार भी किया है । परसाईजी

की 'भीतर का घाव' कहानी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में लिखी गयी एक मार्मिक पारिवारिक कहानी है । इस कहानी में दहेज प्रथा एवं आर्थिक समस्या जैसे ज्वलित प्रश्नों के चित्रण से आज का घृणित यथार्थ प्रस्तुत हुआ है । एक नारी ही नारी की दुश्मन बन रही है । दहेज के कारण नारी का करुण अंत हो रहा है और समाज मूक दर्शक बन गया है । ५० साल से पहले लिखी गयी इस कहानी की समस्या आज भी ज्यों की त्यो है । ऐसे ही परसाईजी की 'दो नाकवाले लोग' कहानी ने समाज के उच्चवर्ग और मध्यमवर्ग के बीच जो संघर्ष होता हैं उसकी बात कही गयी हैं । जो उच्चवर्ग के लोग होते हैं, वह बुरा कार्य करते है, फिर भी उनकी समाज में नाक नहीं कटती, क्योंकि उनके पास पैसे होते हैं । लेकिन मध्यमवर्ग के लोग छोटा–सा कार्य करे तो भी उनकी नाक समाज में कट जाती है, क्योंकि उनके पास ज्यादा पैसे नहीं होते । प्रस्तुत कहानी में परसाईजी ने मध्यमवर्ग के लोगों पर व्यंग्य किया है । इस कहानी में परसाईजी एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति को समझा रहे थे कि लड़की की शादी में व्यर्थ खर्च मत करो । परंतु वे बुजुर्ग कहते है कि "आप ठीक कहते हैं, मगर रिश्तेदारों में नाक कट जायेगी ।"[८१] इस तरह हमारे समाज में जब व्यक्ति की मान–मर्यादा, शान शौकत, प्रतिष्ठा आदि सब चली जाती है, तब लोग कहते है कि उनकी नाक कट गयी । समाज में चलते झूठे रिवाज एवं दिखावे की वृत्ति पर परसाईजी ने करारा व्यंग्य किया है ।

ऐसे ही परसाईजी की 'रामदास', 'जिसकी छोड भागी', 'एक लड़की पाँच दीवाने', 'वैष्णव की फिसलन, 'पैसे का खेल', 'भूख के स्वर' इत्यादि कई कहानियों में सामाजिक व्यंग्य यथार्थ रूप में पाया जाता है ।

३. धर्मक्षेत्र की बुराइयों पर व्यंग्य :

परसाईजी ने धर्म के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियो को भी अपने व्यंग्य का माध्यम बनाया है । धार्मिक कर्मकाण्डों, पाखण्डों, धर्म का अपनी स्वार्थसिद्धि में प्रयोग और साम्प्रदायिक भावना पर प्रहार किया है । ऐसी कहानियों में

'राग–विराग', 'वैष्णव की फिसलन', 'मौलाना का लड़का पादरी की लड़की', 'भगत की गत' इत्यादि है । इन कहानियों में परसाईजीने धर्मक्षेत्र में हो रही अनीतियों पर व्यंग्य किया हे ।

परसाईजी की 'राग–विराग' कहानी आधुनिक है । इसमें परसाईजी का मुख्य लक्ष्य धर्म के नाम पर साधु वेशधारी, पाखण्डी संन्यासियों की धूर्तता प्रकट करना है, जो माँ और बेटी का संग भी निषेध मानते है, स्त्री को देवी कहते हैं, दुनिया को धृणा से देखते हैं और स्त्री सामीप्य मिलते ही रागी बनते है । आज के युग में बुराई ने धर्म को भी नहीं छोड़ा, यही बात परसाईजी स्पष्ट करना चाहते हैं । समाज के सामने साधु–संन्यासी बेहद निर्विकार रूप से जनता की सहानुभूति को प्राप्त करते ही है, उसका शोषण भी करते हैं । जिस स्त्री को देवी कहकर संबोधित करते हैं, उसीके प्रति उनकी नीयत दुरस्त नहीं रहती । परसाईजी प्रत्येक मानव को यही कहना चाहते है कि ''जो धर्म माता और पुत्री से डरने के लए कहता है, वह धर्म नहीं हो सकता, वह पाखण्ड है ।''[८२] ऐसे ही परसाईजी की 'वैष्णव की फिसलन' कहानी यह उद्घाटित करती है कि जब धर्म व्यवसाय और अर्थ से जुड़ जाता है, तो वह कितना विकृत और सिद्धान्तहीन बन जाता हैं, यही बात पर इसमें व्यंग्य किया गया है । यह कहानी प्रतीकात्मक हैं । इस कहानी में धर्म और शोषण की अंतः सूत्रता को बड़े सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है । परसाईजी ने इस कहानी में धर्म और अमानवीयता पर व्यंग्य किया है । शराब, मांस, सुंदरी एवं कैबरे जैसी अमानवीय वृत्ति को ईश्वर की इच्छा के साथ जोड़ना अमानवीयता है, जिस पर लेखक ने चोटदार व्यंग्य कसा है ।

इसी तरह परसाईजी की 'मौलाना का लड़का पादरी की लड़की' कहानी में लेखक ने धर्म–परिवर्तन करानेवाले लोगों पर व्यंग्य किया है । प्रस्तुत कहानी में व्यक्ति पैसो के लिए ईश्वर को भी बेच देने को तैयार हो जाता हैं, उस पर परसाईजीने व्यंग्य किया है । 'भगत की गत' में धार्मिक पाखण्ड पर परसाईजीने व्यंग्य लिखा है – ''भगवान ने कहा – 'वे तो अपनी चीज का

विज्ञापन करते है ?... मैं क्या कोई बिकाऊ माल हूँ ?''[८३] आज भी समाज में धार्मिक पाखण्डी पुजारी मन्दिरों में लाउड स्पीकर मँगाकर भजन, कीर्तन कराते हैं और समझते हैं – यह सब भगवान को खुश रखेगा और पुजारी को मुक्ति मिल जाएगी । परन्तु इनके भजन से केवल धार्मिक पाखण्ड ही मालूम होते हैं । असल में ये पाखण्ड पुजारी अपने भौतिक सुख के लिए करते हैं, जिस पर 'परसाई' ने कटु और तीव्रतर व्यंग्य प्रहार किया है । इस प्रकार परसाईजी की कहानियो में धर्मक्षेत्र की बुराइयों पर किया गया करारा व्यंग्य दृष्टिगोचर होता है ।

४. शिक्षा एवं साहित्य में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्य :

परसाईजी की कहानियों में कोई भी क्षेत्र व्यंग्य के तिक्ष्ण बाणों से घायल होने के लिए अछूत नहीं रह पाया है । उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र पर अपनी वेधक व्यंग्य दृष्टि चलायी है । उनके व्यंग्य के दायरे में शिक्षा एवं साहित्य भी आ गये हैं । शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में प्रवर्तमान युग में अनेकानेक विसंगतियाँ फैल गयी है । सर्वत्र भ्रष्टाचार, दिखावा एवं षडयंत्र ही है । ऐसी विसंगतियों ने शिक्षा एवं साहित्य के पवित्र क्षेत्रो को भी नहीं छोडा है । परसाईजी की 'अपने–अपने इष्टदेव', 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया', 'साहब का सम्मान', 'इतिश्री रिसर्चाय', 'आचार्यजी, एक्सटेशन और बागीचा' इत्यादि जैसी बहुत–सी कहानियों में शिक्षा और साहित्य की विसंगतियों का पर्दाफाश हुआ है ।

'अपने अपने इष्टदेव' कहानी में परसाईजी ने उन साहित्यकारों की चाटुकारिता पर व्यंग्य किया हैं, जो सरकारी सम्मान, इनाम या सहायता प्राप्त करने की लालसा रखते हैं । इस कहानी में साहित्यकार दूसरे साहित्यकार की ईर्ष्या करता हैं, उन पर व्यंग्य किया गया है । इस कहानी में जो लेखक अच्छा लिखते हैं, उनको सफलता नहीं मिलती, परन्तु जो इष्टदेव को प्रसन्न करते हैं, उनको सफलता मिलती हैं, उन पर परसाईजी ने व्यंग्य किया हैं ।

परसाईजी ने शिक्षा जगत पर भी सचोट व्यंग्य लिखा है । प्रो. राधेमोहन शर्मा लिखते हैं, – ''जब परसाई युग की बात युग के लिए लिखते हैं, तब हम देखते हैं कि आज भी एकलव्य से अँगूठा गुरु दक्षिणा में माँगा जाता है । सहसा अर्जुन हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला– 'तो गुरुदेव, मुझे वर दीजिए कि मैं ही फर्स्ट क्लास, फर्स्ट आऊँ और छात्रवृत्ति लेकर विदेश जाऊँ ।' आचार्य की सेवा शिष्य करता है और आचार्य ने उसे अभयदान भी दिया है, परन्तु आचार्य बोले – 'पर एकलव्य ने मेरी रिपोर्ट कर दी थी ।' परसाई युग की सडांध को साहित्य में व्यंग्य से उरेह दिया है कि आज के एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखा दिया । यहाँ युग की विसंगति बिलकुल रूपायित होकर व्यंग्य में उभर गयी है ।''[८४] 'ढपोल शंखजी मास्टर हो गये' – एक ऐसी कहानी है, जो शिक्षा विभाग की तमाम विसंगतियों को उभारकर सामने लाती है । यह कहानी यह बताती है कि शिक्षा व्यवस्था की नींव ही कमजोर की जा रही है । अध्यापकों का चयन योग्यता के आधार पर न होकर सिफारिशों के आधार पर हो रहा है । शिक्षा का यह पतनशील स्वरूप पूरी की पूरी पीढ़ी को निष्क्रिय बना सकता है । इस तरह परसाईजी ने शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त विसंतियों को समाज के सामने लाकर उस पर करारा व्यंग्य किया है ।

५. आर्थिक विषमताओं पर व्यंग्य :

परसाईजीने अपनी कहानियों में गरीबी, आर्थिक शोषण, मजदूर लोगों के जीवन का चित्र स्पष्ट करते हुए आर्थिक विषमताओं पर भी व्यंग्य किया है । उनकी 'रामदास', 'मनीषीजी', 'भोलाराम का जीव', 'एक तृप्त आदमी की कहानी', 'भूख के स्वर' जैसी बहुत–सी कहानियों में अर्थतंत्र पर व्यंग्य किया है ।

'एक तृप्त आदमी की कहानी' में परसाईजी ने आम आदमी की गरीबी के पाटो में पिसती हुई जिन्दगी और उसकी परेशानी, रोज मर–मरकर जीने

को जिन्दगी और आम आदमी की पीडा को वाणी प्रदान करके आर्थिक विषमता पर व्यंग्य किया है । ‘रामदास’ जैसे इमानदार व्यक्ति की जीवनचर्या भारतीय अर्थ व्यवस्था के लिए कुठाराघात के समान है । डॉ. अर्चनासिंघ लिखती है – ‘‘रामदास जैसे न जाने कितने लोग हैं, जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिता रहे हैं । परसाईजी ने अत्यन्त करुण कहानी के माध्यम से अर्थतंत्र पर प्रहार किया है । गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बितानेवाले ये लोग आजादी के ४० साल बाद भी वहीं हैं । एक तरफ ये लोग है, दूसरी तरफ ‘आइलकिंग’, ‘साहब महत्त्वाकांक्षी’ एवं ‘भैया साहब’ जैसे लोग हैं, जो सारे देश की अर्थव्यवस्था को अपनी मुट्ठी में जकड़े हुए है तथा सारे देश को अँगूठा दिखा रहे है ।’’[८५] ऐसे ही परसाईजी की ‘उखड़े खम्भे’, ‘नया धन्धा’, ‘सेवा का शौक’ जैसी अत्यन्त मार्मिक कहानियों में भी आर्थिक विषमताओं पर व्यंग्य किया है । परसाईजी ने अपनी कहानियों में राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था का संपूर्ण चित्र प्रदर्शित करके उसमे छिपी विषमताओं को ढूंढकर उसे व्यंग्य के द्वारा मानव समाज के सामने स्पष्ट किया है ।

संक्षेप में परसाईजी ने हिन्दी कहानियों में श्रेष्ठव्यंग्य की स्वस्थ परंपरा स्थापित की है । उन्होंने सर्वाधिक मात्रा में राजनीतिक घटनाओं और परिस्थितियों की विडम्बनाओं पर व्यंग्य कहानियाँ लिखी, इसके बाद सामाजिक और आर्थिक वसंगतियों पर । राजनीति और अर्थनीति के खोखलेपन को परसाईजीने समर्थ, स्पष्टवक्ता और सच्चे लेखक की हैसियत से व्यक्त किया है । उनकी कहानियों में भारत की समसामयिक राजनीति, सामाजिक मान्यताओं और आर्थिक विषमताओं पर गहरा व्यंग्य है । अपनी कहानियों के द्वारा परसाईजी ने समाज की हर विसंगति पर व्यंग्य के हथियार का वार किया है और इसमें वे एक सफल व्गंग्य कहानीकार के रूप में उभरे हैं ।

❀ निष्कर्ष :

परसाईजी के कहानी–साहित्य की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उन्होंने भारतेन्दु युगीन गद्य और खास कर व्यंग्यात्मक लेखन की श्रेष्ठ परम्परा को नये सिरे से आविष्कृत किया और उसका कलात्मक विकास किया है । इस विकास में सिर्फ श्रेष्ठ परम्परा से जुड़कर उसकी कडियों को आगे बढ़ाने की बात ही नहीं, बल्कि सार्थक और नवीन प्रयोगों की मौलिक प्रतिभा के भी भरपूर दर्शन होते हैं । अतः यह विकास एक गुणात्मक विकास है । परसाईजी के कथा साहित्य के विषय में डॉ. मालमसिंह लिखते है, – ''परसाई के कथा–साहित्य में रूपायित स्थितियों, घटनाओं–व्यक्ति चरित्रों और सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक यथार्थ से गुजरना एक त्रासदयी, लज्जास्पद किन्तु अविस्मरणीय अनुभव होता है । उनके यहाँ वैयक्तिक और सामाजिक अनुभव का द्वेत नहीं है, न उनके समकालीन जीवन का केन्द्रीय मनुष्य पाशविक या यांत्रिक दुनिया का कुंठित, अकेला, हताश, आत्म निर्वासित या अतीत के गहवरों में गुम । इसके विपरीत उनमें आदमी की चौतरफा आजादी के लिए क्रांतिकारी चेतना स्पन्दित है । समाज का क्रांतिकारी परिवर्तन, मनुष्य की मुक्ति, एक बेहतर संसार की रचना यही वो परिप्रेक्ष्य हैं, जिसमे ये कहानियाँ लिखी गयी हैं । उनके पीछे एक जीवन–दर्शन और मूल्य दृष्टि है, एक विचारात्मक विवेक और विश्वदृष्टि हैं । यही कारण है कि मामूली से मामूली आदमी के दुख–दर्द, मध्यमवर्गीय चरित्र की विसंगतियों, निम्न मध्यमवर्गीय मजबूरियों से ही यह अनुभव संसार रूपायित हुआ है । इन कहानियों के चरित्रों की व्यापकता के कारण विषय–वस्तु भी इतनी विविधात्मक हो गयी है कि समाज का कोई भी पक्ष छूट नहीं पाया है ।'[८६]

इस प्रकार विस्तृत फलक एवं विषय–वैविध्य में फैला परसाईजी का यह कहानी साहित्य आधुनिक युग का प्रामाणिक चित्र तो है ही, साथ में उसकी व्यंग्यात्मकता मानव–समाज के संपूर्ण कैनवास को प्रस्तुत करती हुई यथार्थता का

दर्शन कराती है । संक्षेपमें परसाईजी की कहानियो का कथ्य जहाँ विराट है, वहीं उसका शिल्प मौलिक है एवं उसका व्यंग्य उत्कृष्ट है । परसाईजी की ये सभी कहानियाँ समकालीन यथार्थ जगत के अगणित चित्र ही है, क्योंकि यह उनके जीवनानुभव का परिणाम हैं ।

सन्दर्भ सूची :

क्रम	पुस्तक – लेखक	पृष्ठ
१.	हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकार – श्री हजारीप्रसाद सक्सेना	१
२.	हिन्दी साहित्य की प्रवृतिया – जयकिशन खण्डेलवाल	७३३
३.	हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास – राजनाथ शर्मा	८५६
४.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृतियाँ – शिवकुमार शर्मा	६३२
५.	साहित्यिक निबन्ध – राजनाथ शर्मा	६०७
६.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृतियाँ – शिवकुमार शर्मा	६३३
७.	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – श्री गणपतिचन्द्र गुप्त	४५३
८.	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – श्री गणपतिचन्द्र गुप्त	४५६
९.	हिन्दी साहित्य की प्रवृतिया – जयकिशन खण्डेलवाल	७३९
१०.	हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास – राजनाथ शर्मा	८६४
११.	हिन्दी साहित्य – युग और प्रवृतियाँ – शिवकुमार शर्मा	६३८
१२.	कहानी स्वरूप और संवेदना – राजेन्द्र यादव	४६
१३.	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – श्री गणपतिचन्द्र गुप्त	४६२
१४.	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – श्री गणपतिचन्द्र गुप्त	४६३
१५.	आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवनमूल्य – डॉ. रमेश देशमुख	८-D
१६.	आठवें दशक की हिन्दी कहानी – डॉ. प्रतिभा धारासूरकर	१०
१७.	परसाई रचनावली–१, धनन्जय वर्मा	१८
१८.	युग साक्षी– 'यथार्थ का पुनरुद्धार' – जयप्रकाश	२७४
१९.	परसाइ रचनावली–१ – संपादक मंडल	४
२०.	परसाई रचनावली–४ – डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र	१३
२१.	आँखन देखी – डॉ. खगेन्द्र ठाकुर	३६४
२२.	परसाई रचनावली–१, धनन्जय वर्मा	१७
२३.	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	६७

२४.	परसाई की दुनिया – डॉ. कपिलकुमार तिवारी	७२
२५.	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	९३
२६.	परसाई रचनावली भाग–६ – हरिशंकर परसाई	२४३
२७.	परसाई रचनावली–१, धनन्जय वर्मा	१५
२८.	परसाई रचनावली भाग–६ – हरिशंकर परसाई	२४४
२९.	युग साक्षी हरिशंकर परसाई – श्री जयप्रकाश	२७३
३०.	आंखन देखी – श्री मधुरेश	२४८
३१.	परसाई रचनावली भाग–६ – हरिशंकर परसाई	२४३
३२.	परसाई रचनावली भाग–१ – 'सत्यसाधक मण्डल' – हरिशंकर परसाई	१८९
३३.	आँखन देखी – श्री कृष्णकुमार श्रीवास्तव	९९
३४.	परसाई रचनावली–१ 'मौलाना का लड़का, पादरी की लड़की' – हरिशंकर परसाई	३६२
३५.	युगसाक्षी – रमाकांत श्रीवास्तव	२४४
३६.	हरिशंकर परसाई व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. मनोहर देवलिया	८०
३७.	परसाई रचनावली–१ 'एक तृप्त आदमी की कहानी'	४०३
३८.	आँखन देखी– श्री प्रवीण अटलूरी	२१२
३९.	परसाई रचनावली–१ 'ठण्डा शरीफ आदमी'	१२८
४०.	परसाई रचनावली–१, धनन्जय वर्मा	१५
४१.	हिन्दी साहित्य समीक्षा – डॉ. रामनिवास गुप्त	११८
४२.	परसाई की दुनिया – डॉ. सुरेश आचार्य	३०
४३.	परसाइ रचनावली–२ 'भीतर का घाव'	२०८
४४.	परसाइ रचनावली–२ 'पैसे का खेल'	१९६
४५.	परसाइ रचनावली–१ 'ग्राण्ट अभी तक नहीं आयी'	१०६
४६.	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	७८

४७.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	८७
४८.	आँखन देखी – राजेश जोशी	२२७
४९.	नई कहानी : प्रकृति और पाठ – श्री सुरेन्द्र	७२
५०.	नये साहित्य का तर्कशास्त्र – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	१५१
५१.	हरिशंकर परसाई की दुनिया – डॉ. सीता किशोर	८३
५२.	परसाई रचनावली–१ 'रामदास'	३६
५३.	परसाई रचनावली–१ श्री धनन्जय वर्मा	१९
५४.	परसाई रचनावली–१ हरिशंकर परसाई	
५५.	युगसाक्षी हरिशंकर परसाई – प्रभाकर चौबे की बातचीत	६३
५६.	आँखन देखी – कैलाश प्रसाद 'विकल'	२३६
५७.	आँखन देखी – श्री राजेश्वर सकसेना	२८१
५८.	परसाई रचनावली – १–२ सभी कहानियों में से	
५९.	आँखन देखी– श्री रमाशंकर मिश्र	५९
६०.	परसाई रचनावली–१ 'पहला पुल'	२०५
६१.	परसाई रचनावली–१ 'पहला पुल'	२०६
६२.	कथाकार निर्मल वर्मा – श्री नरेन्द्र इष्टवाल	१२२
६३.	परसाई रचनावली–१ 'वैष्णव की फिसलन'	१६५
६४.	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	२८
६५.	हरिशंकर परसाई व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. मनोहर देवलिया	१२२
६६.	परसाई रचनावली – ६ 'हरिशंकर परसाई	२३८
६७.	परसाई रचनावली – २, 'इन्सपेक्टर मातादीन चांद पर' कहानी	१४२
६८.	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	२३८
६९.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	१५२
७०.	परसाई रचनावली–१ 'सुदामा के चावल' कहानी	२६८
७१.	आँखन देखी – श्रीलाल शुक्ल	४७९

७२.	परसाई रचनावली–१ 'एक मध्यवर्गीय कुता' कहानी	२५
७३.	आँखन देखी – श्री राममूर्ति त्रिपाठी	२८६
७४.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई – डॉ. मदालशा व्यास	७६
७५.	परसाई रचनावली–६ – हरिशंकर परसाई	२४४
७६.	परसाई रचनावली–१ – 'भेडे और भेडिये' कहानी	१०५
७७.	परसाई रचनावली–१ – 'जैसे उनके दिन फिरे' कहानी	३७१
७८.	परसाई रचनावली–२ – 'इन्सपेक्टर मातादीन चाँद पर' कहानी	१३७
७९.	परसाई रचनावली–१ 'भोलाराम का जीव' कहानी	१६६
८०.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन – डॉ. सुरेश माहेश्वरी	७२
८१.	परसाई रचनावली–१ 'दो नाकवाले लोग' कहानी	२७१
८२.	परसाई रचनावली–१ 'राग–विराग' कहानी	३३५
८३.	परसाई रचनावली–१ 'भगत की गत' कहानी	४१४
८४.	हरिशंकर परसाई व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि –प्रो. राधेमोहन शर्मा	४६
८५.	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य – डॉ. अर्चनासिंह	९१
८६.	परसाई की सृजनात्मकता – डॉ. मालमसिंह	१०८

❀❀❀

पंचम अध्याय
लघुकथाकार श्री हरिशंकर परसाई

- विषय प्रवेश–लघुकथा : परिचय और परिभाषा
- लघुकथा के स्वरूपगत तत्त्व
- हिन्दी लघुकथा : उद्‌भव और विकास
- हिन्दी लघुकथा और हरिशंकर परसाई
  - विषयगत अध्ययन
  - स्वरूपगत अध्ययन
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

पंचम अध्याय
लघुकथाकार श्री हरिशंकर परसाई

❀ विषय प्रवेश :

लघुकथा हिन्दी गद्य–साहित्य की नवीन स्वतंत्र एवं स्वतः परिपूर्ण विधा है। अपनी सजातीय विधाओं जैसे उपन्यास, कहानी, लम्बी कहानी आदि से स्वतंत्र एवं उन्हीं की तरह एक अलग कथा विधा है। यह हिन्दी की ऐसी विधा है, जो गद्य–वर्ग की है, कथा–वर्ग की है। अर्थात, इसमें कथातत्त्व की अनिवार्यता उतनी ही है, जितनी कि गद्य की। इसके मूल में जो कथात्मक आधार होता है, वह कल्पना प्रसूत होता है। लघुकथा को कहानी का संक्षिप्त रूप नहीं कहा जा सकता। यह एक स्वतंत्र साहित्य प्रकार है। डॉ. शिवकुमार शर्मा लघुकथा के विषय में लिखते हैं – "लघुकथा में अपेक्षित कथांश का होना जरुरी है, भले ही यह कथांश या ग्रहीत स्थिति कितनी ही सूक्ष्म अथवा क्षीण क्यों न हो। इसकी शैली संकेत प्रधान द्रूत वर्णनात्मक होती है, जिसकी प्रभावात्मकता व्यंग्य के प्रयोग से द्विगुणित हो जाती है। इसमें समाज, दर्शन, इतिहास, धर्म व संस्कृति, राजनीति व भ्रष्टाचार, बेकारी, शोषण, गरीबी आदि किसी भी ज्वलन्त विषय को ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु इस सन्दर्भ में यह लाजमी है कि उसमें भावप्रवणता और अभिवांछित शिल्पगत कलात्मकता का मणिकांचन योग होना चाहिए। लघुकथा में नावक के तीर के समान चुटीला कसकभरा व्यंग्य होना चाहिए।"[१]

इस तरह लघुकथा हिन्दी साहित्य की एक नूतन विधा ही है। गद्य–साहित्य की यह एक ऐसी नवीन विधा है, जिसके माध्यम से अत्यन्त सीमित शब्दों में किसी सांकेतिक कथानक को अतिव प्रभावशाली ढंग से लाक्षणिक अथवा अभिव्यंजना पद्धति से संप्रेषित किया जाता है। हम सर्व

प्रथम लघुकथा की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे, तत्पश्चात इस क्षेत्र में श्री हरिशंकर परसाई के योगदान का मूल्यांकन करेंगे ।

❀ लघुकथा : परिचय और परिभाषा :

लघुकथा का कलेवर छोटा लेकिन उसकी मार बहुत दूरगामी होती है । इसमें जीवन की किसी न किसी विसंगति पर प्रहार किया जाता है । लघुकथा का शिल्प चाँदनी रात में सूई में धागा पिरोने की तरह है और इसका प्रभाव सूई की चुभन से कहीं बेधक और तीखा होता है । श्री रमेशकुमार लिखते है – ''आकार लाघव, अर्थ गर्भित भाषा, जनमानस से घनिष्ठ सम्बन्ध के साथ ही लघुकथा के लिए सर्वाधिक महत्त्व की बात है – सघन मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता तथा पाठक को झकझोर कर कुछ सोचने पर मजबूर कर देने की क्षमता । लघुकथा व्यक्ति के सामान्य पक्ष का नहीं अपितु असामान्यपक्ष का चित्रण करती है । मानव-जीवन की विसंगतियों को प्रकट करना ही इसका उद्‌देश्य है ।''[२] भावप्रवण अनुभूतियों की गहन व तीव्र अभिव्यक्ति, भाव तरलता, गतिमयता, संक्षिप्तता तथा भाषा पर असामान्य अधिकार ये कुछ ऐसे गुण है, जो लघुकथा के लिए अनिवार्य है । लघुकथा में भावपक्ष के तीव्र अतिरेक के साथ कलापक्ष का संतुलन बहुत ही आवश्यक है । सर्व प्रथम हम यहाँ लघुकथा का परिचय परिभाषा तथा स्वरूप इत्यादि पर दृष्टिपात करने का प्रयास करेंगे ।

हिन्दी साहित्य की नवीन विधाओं में जीवनी, आत्मकथा, यात्रा-वर्णन, साक्षात्कार, डायरी आदि को अपना स्थान जमाने में समय लगा है । साथ ही इन सभी विधाओं के स्वरूप विवेचन के क्षेत्र में अभी तक विशेष कार्य नहीं हुए है । जबकि लघुकथा इन सभी विधाओं से आगे निकल गयी है । क्योंकि लघुकथा के सृजन में एवं उसके स्वरूप विवेचन में पर्याप्त मात्रा में कार्य हुए है तथा हो रहे हैं । लघुकथा अपने जन्म के साथ ही चर्चास्पद रही है । सत्य यह है कि यह विधा हिन्दी साहित्य-जगत में अपना विशेष स्थान बना

चुकी है । लघुकथा का परिचय देते हुए डॉ. सतीशराज पुष्करणा लिखते है – ‘‘लघुकथा में प्रयुक्त ‘लघु’ शब्द का अर्थ ‘हलका’, ‘छोटा’, ‘निर्बल’, ‘तुच्छ’, ‘क्षुद्र’, ‘कम’, ‘अल्प’, ‘अस्थिरचित’ आदि न होकर ‘स्वस्थ’ एवं ‘फुर्तीला’ से हैं । अतः लघुकथा आकार में ‘लघु होते हुए भी ‘बीज’ में विशाल वटवृक्ष की तरह है । ‘लघु’ इसका एक ‘गुण’ अवश्य है, किन्तु अब ‘कथा’ से जुड़कर ‘लघु’ यानी ‘लघुकथा’ अब एक सम्पूर्ण संज्ञा के रूप में रुढ़ हो गया है । अतः इसे अब किसी अन्य नाम से न तो सम्बोधित करना चाहिए और नहीं यह उचित है । लघुकथा अब मात्र लघुकथा है । इसे इसी रूप में देखा, समझा एवं परखा जाना चाहिए ।’’[३] हिन्दी साहित्य में मूलतः ‘लघुकथा’ शब्द मराठी से आया है, जो मराठी साहित्य में ‘कहानी’ के पर्याय के रूप में उपयोग होता है । श्री विलास गुप्ते के अनुसार ‘‘लघुकथा कहानी का संक्षेपीकरण नहीं है । न वह किसी भावबोध या स्थिति का ढाँचा मात्र है, यह अपने आप में पूर्ण रचना है ।’’[४] इस प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य में लघुकथा का अपना स्वतंत्र महत्त्व एवं अस्तित्व है ।

लघुकथा साहित्य के इस प्रर्वमान युग में एकदम ही नवीन एवं अनूठी विधा है । विभिन्न विद्वानों ने लघुकथा को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है । वैसे आधुनिक लघुकथा का कलेवर प्राचीन कथाओं से सर्वथा भिन्न है । दोनों के मूल में पड़े हुए विचार, भावना, उद्देश्य सब एक दूसरे से अलग पड़ते हैं । ऐसी परिस्थिति होते हुए भी निम्नांकित विद्वान आलोचको ने लघुकथा को परिभाषा में बाँधने का प्रयत्न किया है ।

हिन्दी में सर्वप्रथम बुद्धिनाथ झा ‘कैरव’ ने न केवल ‘लघुकथा’ शब्द का उपयोग किया, बल्कि उसे इस प्रकार परिभाषित भी किया – ‘‘संभवतः लघुकथा शब्द अंग्रेजी के ‘शार्टस्टोरी’ शब्द का अनुवाद है । ‘लघुकथा’ और ‘कहानी’ में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है । यह लम्बी कहानी का संक्षिप्त रूप नहीं है । लघुकथा का विकास दृष्टांतो के रूप में हुआ । ऐसे दृष्टांत नैतिक और धार्मिक क्षेत्रो से प्राप्त हुए । ‘इसप की कहानियाँ’ ‘पंचतंत्र की कथाएँ’ ‘महाभारत’,

'बाईबिल', 'जातक' आदि कथाएँ इसी के रूप है । आधुनिक कहानी के सन्दर्भ में 'लघुकथा' का अपना स्वतंत्र महत्त्व एवं अस्तित्व है । जीवन की उत्तरोत्तर द्रुतगामिता और संघर्ष के फलस्वरूप उसकी अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता ने आज कहानी के क्षेत्र में लघुकथाओं को अत्यधिक प्रगति दी है । रचना और दृष्टि से लघुकथा में भावनाओं का उतना महत्त्व नहीं है जितना किसी सत्य का, किसी विचार का, विशेषकर उसके सारांश का महत्त्व है ।"[५]

डॉ. ओमानन्द सारस्वत लघुकथा को मात्र चोंकाने की वस्तु नहीं मानते । उनका मत है कि "इस विधा को मात्र चोंकाने, गुद्‌गुदाने, स्तब्ध करने या मनोरंजन देने तक ही सीमित करना एकांगी दृष्टिकोण है, इसमें ध्वन्यात्मकता या सांकेतिकता या व्यंग्यतीव्रता आदि के माध्यम से चेतना को हिलाकर सोचने को मजबूर करने की प्रक्रिया भी निहित है ।"[६] श्री तरुणजैन के अनुसार "किसी भी हताहत घटना के सूक्ष्मतमबिन्दु के मर्म की खाल को संक्षिप्ततम शब्दो में करने वाली विधा को ही लघुकथा कहा जा सकता है ।"[७] डॉ. श्रीमती पुष्पा बंसल के अनुसार "लघुकथा साहित्य के परिवार की वह लघु आकार की सदस्या है जो कम–से–कम शब्दों में जीवन के किसी हतप्रभकर देनेवाले यथार्थ को गहन अर्थगर्भित भाषा में व्यक्त करती है । सपाट बयानी तथा प्रभाव में मार्मिकता का अभाव लघुकथा को असफल रचना बना देते हैं ।"[८] श्री रामनिवास 'मानव' के अनुसार, "वह गद्य–रचना, जिसमें किसी सूक्ष्म मनःस्थिति या भाव–स्थिति को एक लघु–घटना द्वारा कथात्मक संस्पर्श देकर उकेला गया हो, लघुकथा कहलाती है ।"[९] श्री कुलदीप जैन का कथन है – "लघुकथा क्षणिक आवेश एवं संवेग की चुस्तदुरस्त एक ऐसी लघु आकारीय कथा–सृजन है जो समाज में व्याप्त विसंगतियों की और न मात्र ध्यान आकर्षित करती है बल्कि पाठक के मन–मस्तिष्क में उसके समाधान हेतु एक छटपटाहट उत्पन्न कर देती है ।"[१०] 'हिन्दी साहित्यकोश' में लघुकथा की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है – "सम्भवतः लघुकथा शब्द अंग्रेजी के 'शार्ट स्टोरी' शब्द का सीधा अनुवाद है । वैसे कहानी शब्द भी अंग्रेजी के 'शार्ट

स्टोरी' के ही लिए है । इस प्रकार लघुकथा और कहानी में तात्त्विक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता । व्यवहारिक दृष्टि से 'लघुकथा' कहानी के छोटे रूप (शार्ट स्टोरी) से अपना तात्पर्य रखती है । पर यह कहना कि लघुकथा लम्बी कथा का सार रूप है, नितान्त भ्रमोत्पादक है ।''[११] श्री विक्रम सोनी के शब्दों में – ''जीवन का सही मूल्य स्थापित करने के लिए 'व्यक्ति' और उसके 'काल' से विवेच्य क्षण को लेकर उसे कम से कम और स्पष्ट सारगर्भित शब्दों में असरदार ढंग से कहने की सफलतम विधा का नाम लघुकथा है – जो सीधे चिंतन तंतुओं को प्रभावित करती है ।''[१२] श्री धीरेन्द्र शर्मा के मतानुसार – ''साहित्य में इसकी (लघुकथा की) भूमिका एक बड़ी सैन्य गुल्म की भाँति न होकर गुरिल्लों की उस लघु टुकडी की भाँति है, जो अपने शत्रु के विरुद्ध सुनियोजित और सफल आक्रमण करने में सक्षम रहती है ।''[१३] डॉ. शंकर पुणताम्बेकर लघुकथा की परिभाषा करते हुए कहते है – ''लघुकथा आकार में लघु किन्तु अपनी गहन अर्थगर्भित शैली के द्वारा समाज–व्यवस्था के व्यापक सन्दर्भो से जुड़ी ऐसी कथा है, जिसकी सघन संवेदना चेतना को एकदम स्पंदित कर देती है ।''[१४]

इस प्रकार उपर्युक्त सभी विद्वानों की परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में लघुकथा की परिभाषा इस तरह दी जा सकती है – 'वह लघुआकारीय गद्य–कथात्मक रचना जो आधुनिक मानव–जीवन में व्याप्त किसी विसंगति को व्यंग्यात्मक मुद्रा में प्रस्तुत कर पाठक को झकझोर कर रख दे, लघुकथा होगी ।'' सारतः ये सभी परिभाषायें लघुकथा के स्वरूप को उजागर कर रही है ।

❀ लघुकथा के स्वरूपगत तत्त्व :

लघुकथा कथा–साहित्य के वर्ग की विधा होने के कारण इसके तत्त्व कहानी के तत्त्व से साम्यता रखते है । अपितु विभिन्न विद्वानों ने लघुकथा के भिन्न–भिन्न तत्त्व बताये है । श्री कुमार अखिलेश्वरी नाथ ने लघुकथा के छः तत्त्व बताये है । उन्होंने लिखा है– ''मेरी धारणा में लघुकथा – समीक्षा के

निम्नलिखित छः मानक तत्त्व होते है । ये छः मानक तत्त्व है (१) आकार, (२) भाषा (३) शैली, (४) सहजता (५) प्रासंगिकता और (६) कथ्य ।''[१५] इनके मतानुसार लघुकथा में आकार अर्थात लघुकथा का कम से कम शब्दों वाला संक्षिप्त रूप और भाषा, शैली, साहजिकता, एक ही प्रसंग की योजना एवं एक ही महत्त्वपूर्ण कथ्य की कथा का होना अनिवार्य है । तो दूसरी तरफ श्री रमेशकुमार लिखते है कि ''लघुकथा कथा–वर्ग की विधा है । अतः लघुकथा के तत्त्व भी वही है जो कहानी के है अर्थात कथानक, पात्र, शैली तथा उद्देश्य । देश–काल, वातावरण आदि तत्त्व लघुकथा में छद्म रूप में आते हैं । लघुकथाकार देश–काल का निर्माण शब्दों में नहीं कर सकता । इसके लिए उसके पास न तो स्थान है और न ही अवकाश । कथानक में घटना का चरमबिन्दु अपने आप में एक देशकाल के अस्तित्व का साक्षी होता है । अतः देशकाल लघुकथा में सूक्ष्म रूप में होता है । इसी प्रकार संवाद को भी लघुकथा का अनिवार्य तत्त्व नहीं माना जा सकता, इसे हम शैली के अन्तर्गत रख सकते है । शैली संवादात्मक हो सकती है । एक बात एक लेखक संवाद के माध्यम से कहता है तो दूसरा वर्णन अथवा विवेचन के माध्यम से, अतः लघुकथा के उपर्युक्त चार ही तत्त्व माने जा सकते हैं ।''[१६] इस तरह श्री रमेश कुमार के मतानुसार देखा जाए तो लघुकथा में चार ही तत्त्व होते हैं । कथानक, पात्र, शैली और उद्देश्य – उनकी दृष्टि में संवाद, शीर्षक, व्यंग्य इत्यादि लघुकथा के तत्त्व न होकर इसकी विशेषताएँ हैं, क्योंकि संवाद एवं व्यंग्य शैली के अंतर्गत समाविष्ट हो जाते है और शीर्षक उद्देश्य को ही प्रकट करता है, अतः उद्देश्य के अंतर्गत आ जाता है । फलतः लघुकथा के मूलतः चार तत्त्व है । इस प्रकार इन दोनों विद्वानों ने लघुकथा के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का निर्देश किया है, जिन तत्त्वों का लघुकथा में विशेषरूप से महत्त्व माना जाता है ।

लघुकथा के विषय में श्री सुकेश साहनी लिखते है कि है कि ''लघुकथा को अपने आप में मुकम्मल कृति होना चाहिए । यह अपनी लघुता के बावजूद

यथार्थ जीवन के अछूते कोने को भी प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त कर पाठक को मानसिक आहार देने में सक्षम है । फलस्वरूप आज भागमभाग के युग में लघुकथा प्रासंगिक एवं अनुकूल सिद्ध हो रही है । आज पाठक लघुकथा से संक्षिप्त रूप में किसी गहरी अति महत्त्वपूर्ण, पैनी और चुभनेवाली बात की अपेक्षा करता है । आज लघुकथा के पास अनेकों ऐसे उदाहरण है, जिनमें नवीनतम कथ्यों को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है और इससे लघुकथा से परहेज रखनेवालों का यह भ्रम टूटा है कि लघुकथा का अपना सीमित सिकुडा हुआ दायरा है ।''[१७] श्री सुकेश साहनी के इस कथन को दृष्टि समक्ष रखें, तो यह निर्विवाद सत्य है कि प्रवर्तमान युग में लघुकथा ही मानव-जीवन से एकदम जुड़ी हुई विधा है । लघुकथा संक्षिप्त और स्वतंत्र विधा होने के कारण इसकी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ भी है । आधुनिक युग की नवीन विधाओं में लघुकथा एक ऐसी लोकप्रिय विधा है, जिसके संदर्भ में आलोचकों ने उसके स्वरूप विवेचन की चर्चा करते हुए इसकी कुछ विशेषताएँ निश्चित करते हुए इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । श्री रमेशकुमार शर्मा अपनी पुस्तक 'हिन्दी लघुकथाः स्वरूप एवं इतिहास' में लघुकथा की निम्नांकित विशेषताएँ बताते है – (१) लघुता, (२) कथात्मकता (३) आधुनिकता – बोध (४) यथार्थ चित्रण (५) तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता (६) व्यंग्यात्मकता (७) नवीन विधा (८) स्वतंत्र विधा ।[१८]

इन विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि लघुकथा में लघुता होनी चाहिए । साथ ही इसमें कथात्मकता, आधुनिकता-बोध, तीक्ष्ण सम्प्रेक्षणीयता, व्यंग्यात्मकता आदि होते हुए यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हुई यह एक नवीन एवं स्वतंत्र विधा है । इन विशेषताओं से परिपूर्ण लघुकथा पाठक पर अपना तीव्र प्रभाव छोड़ती है । अतः किसी भी लघुकथा में इन विशेषताओं का होना अनिवार्य बन जाता है ।

इस प्रकार लघुकथा प्रवर्तमान युग की एक अत्यन्त ही नवीन विधा है, जिसका प्रारंभ छठे दशक से होकर आज चरम सीमा की और पहुँच रहा है ।

आज के युग की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा का बहुमान लघुकथा को मिला है । अंत में डॉ. स्वर्ण किरण की लघुकथा के संदर्भ में लिखी गयी यह बात सचमुच यथार्थ दिखती है, जो लघुकथा के विषय की संपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करती है । उन्होंने लिखा है – ''लघुकथा जीवन की लघु संवेदना, लघु घटना, लघुक्षण की एक जल्दबाजी में खींची गई तस्वीर है, पर इस लघुकथा के लेखक का, जो तस्वीर खींचनेवाले का रोल अदा करता है – व्यक्तित्व लगा–लिपटा रहता है । सामान्य तस्वीर खींचनेवाला अपने व्यक्तित्व को तस्वीर में प्रक्षेपित नहीं कर पाता, जबकि लघुकथा की तस्वीर खींचनेवाला लेखक लघुकथा के जरिये पहचान लिया जाता है । इससे यह बात स्पष्ट है कि लघुकथा कला खंड साहित्यारूप होने पर भी स्वतंत्र कृति नहीं है, अपितु लेखक की साधना, लेखक की दृष्टि, लेखक के जीवनदर्शन के साथ जुड़ी हुई है । साहित्य व्यक्ति की अनुभूति या अनुभव पर आधारित होता है, व्यक्ति के भाव या विचार साहित्य को रूपायित करते हैं, व्यक्ति की संवेदना, व्यक्ति की आशा–निराशा, व्यक्ति के हर्ष–विषाद, व्यक्ति के उत्थान–पतन की कहानी साहित्य का रूप धारण करती है । लघुकथा के मूल में व्यक्ति के ये ही भाव स्फुरित दीखते है, पर शिल्प की भिन्नता लघुकथा को साहित्य के अन्य रूपों से अलग करती है । लघुकथा साहित्य की एक विधा है, साहित्य का एक विशिष्ट रूप है, जो कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहती है, कम से कम समय में लक्ष्यवेध करती है, कम से कम स्थान में अधिक से अधिक कथ्य सामने रखती है । एक बिन्दु में सिंधु, एक कली में वसंत, एक रेखा में संपूर्ण चित्र–सार लघुकथा का स्वरूप है ।''[१६]

❀ लघुकथा : उद्‌भव और विकास :

हिन्दी लघुकथा हिन्दी गद्य–साहित्य की बिलकुल नवीन विधा है । शब्दकोशों में 'लघुकथा' शब्द का अभाव ही इसका सशक्त प्रमाण है । अतः लघु कथा को प्राचीन कथाओं, नीतिकथाओं, जातक कथाओं, लोक–कथाओं, बोध

कथाओं, हितोपदेश आदि की कथाओं से जोड़ना संगत नहीं है । कतिपय विद्वान आज लघुकथा को प्राचीन कथाओं से जोड़कर देखते है । प्राचीन कथाओं में लघुकथा के बीज अवश्य मिलते है, किन्तु स्वरूप की दृष्टि से तथा कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से आधुनिक लघुकथा प्राचीन कथाओं से बिलकुल पृथक है । लघुकथा के उद्भव के संदर्भ में महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक के प्रोफेसर डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा लिखते है – ''वास्तव में लघुकथा कोई आरोपित या अस्वाभाविक विधा नहीं है । यह आज के व्यस्त युग की मांग के अनुरूप सर्जनधर्मी मानस और विधि विसंगत सन्दर्भ की टकराहट के बीच से उपजी एक ऐसी समर्थ विधा है, जो देखने में छोटी होते हुए भी अपनी प्रभावकता में कहानी से कम नहीं है ।''[२०]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत की समकालीन परिस्थितियों को देखकर मानव का मोहभंग हुआ और उसके हृदय से दर्द की एक तरंग उठी जिसने लघुकथा का रूप लिया । अर्थात लघुकथा का जन्म स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही हुआ है । अतः हिन्दी लघुकथा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को प्राचीन धरातल पर विश्लेषित करना अनुचित है । डॉ. माधव सोनटक्के लिखते है – ''यद्यपि लघुकथा के उद्भव को लेकर आलोचकों में मतभेद है । कुछ विद्वान माधवराव सप्रे, माखनलाल चतुर्वेदी तथा प्रेमचंद को हिन्दी के पहले लघुकथाकार घोषित करते है, लेकिन प्रायः सभी आलोचक इस बात को लेकर सहमत है कि विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से सातवें दशक से 'लघुकथा' ने अपना परिचय स्पष्ट रूप में दिया तथा नवें दशक में एक अलग विधा के रूप में मान्यता प्राप्त हुई, अतः वर्तमान लघुकथा साठोतरी है और कहानी साहित्य तथा अन्य विधा के समान परिवर्तित परिवेश को अभिव्यक्त कर रही है ।''[२१] ऐसे ही डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ का कहना है कि ''हिन्दी में लघुकथा की शुरुआत को लेकर मतभेद है । कोई माधवराव सप्रे को आदि लघुकथा लेखक मानता है, तो कोई माखनलाल चतुर्वेदी को यह श्रेय देना चाहता है । सच पूछा जाय

तो जो पहली प्रभावशाली लघु कहानी हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह 'जुरमाना' (प्रेमचन्द) है ।''[२२]

वास्तव में हिन्दी की प्रथम लघुकथा या प्रथम लघुकथा–संग्रह के विषय में अभी भी मत–मतान्तर बना हुआ है । परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि हिन्दी साहित्य में पाँचवे दशक तक लघुकथा के स्वरूप को लेकर निश्चित धारणायें नहीं बन पायी । अतः पाँचवे दशक तक किसी भी कहानी को लघुकथा का उतना बहुमान नहीं मिला, जितना कि छठे दशक के बाद लघुकथाओं को मिला । इस विषय में श्री रमेश कुमार लिखते है – ''पांचवे दशक में आधुनिक लघुकथा के स्वरूप को निर्देशित करनेवाली कतिपय महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हुई है । इनमें इन्दोर से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'वीणा' सन १९४२ से ही प्रायः नियमित रूप से लघुकथाएँ छाप रही है । 'वीणा' में सन १९४४ में रामनारायण उपाध्याय की 'आटा और सीमेंट' प्रकाशित हुई । लघुकथा के स्वरूप की दृष्टि से इसे हिन्दी की पहली लघुकथा माना जा सकता है । सन १९४५ में सुदर्शन का 'झरोखे' नामक लघुकथा संग्रह प्रकाशित हुआ । वस्तुतः आधुनिक लघुकथा का आरम्भ छठे दशक से ही माना जाना चाहिए ।''[२३]

लघुकथा का विकास क्रमशः देखा जाय तो सर्वप्रथम छठे दशक से देख सकते है । आधुनिक लघुकथा का आरम्भ छठे दशक से ही माना जाना चाहिए । इस दशक में इन्दौर से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'वीणा' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । इस दशक के प्रमुख लघुकथाकारों में श्री रामप्रसाद रावी का नाम शीर्षस्थ है । श्री रावी को हिन्दी लघुकथा का उन्नायक कहा जाता है । उनके लघुकथा संग्रह में 'पहला कहानीकार', 'मेरे कथागुरु का कहना है भाग–१' प्रमुख है । इनके अतिरिक्त अन्य लघुकथाकारों में आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र ('पंचतत्त्व', 'उडने के पंख') , रामधारीसिंह दिनकर ('उजली आग'), अयोध्या प्रसाद गोयलीय ('गहरे पानी पेठ', 'जिन खोजातिन पाइया'), शरदकुमार मिश्र ('धुप और धुआ'), हरिशंकर परसाई ('तब की बात और

थी'), बैकुंठनाथ मेहरोत्रा ('ऊँचे और ऊँचे'), भृंग तुपकरी ('पंखुडिया') इत्यादि इस दशक के प्रमुख लघुकथाकार है ।

सातवा दशक हिन्दी लघुकथा साहित्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इसी दशक में लघुकथा एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई । सातवें दशक की लघुकथा के विषयमें श्री निशान्तर लिखते है – ''प्रतिपाद्य विषयों की विविधता एवं बिंदुत्व एकाग्रता तथा प्रभावान्विति के साथ कहानी एवं बोधकथा दोनों रूपों की वैकल्पिकता में उभरी सातवें दशक की लघुकथा ने न केवल अपने रूपात्मक सामर्थ्य को स्थापित किया, बल्कि उसकी मर्म बेधकता, वाग्विदग्धता ने प्रशासनिक, राजनीतिक एवं सामाजिक तथा वैयक्तिक अर्थात समकालीन जीवन व्यवस्था की तमाम विडम्बनाओं, विद्रुपताओं एवं अंतर्विरोधों के लघु प्रसंगों एवं अनुभव इकाइयों को व्यंग्यबोध के साथ पूर्वापर याचना से मुक्त एवं रचनात्मक लघु इकाई के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करने की सम्भावना भी जगाई । इस प्रकार सातवें दशक की लघुकथा जिसमें 'कथापन' एवं 'कहानीपन' का संतुलित आस्वाद एक साथ है, आठवें दशक की लघुकथा की भूमि–पीठ बनी जहाँ से समकालीन लघुकथा का आरम्भ होता है ।''[२४] सातवें दशक की पत्रिकाओं में 'सारिका' पत्रिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसके अतिरिक्त 'कादम्बिनी', 'माध्यम', 'दैनिक हिन्दी मिलाप' इत्यादि प्रमुख है । इस दशक के प्रमुख लघुकथाकारों में श्री रामप्रसाद रावी ('मेरे कथा गुरु का कहना है – भाग–२'), डॉ. ब्रजभूषणसिंह आदर्श ('आँखे, आँसू और कब्र'), श्यामनन्दन शास्त्री ('पाषाण के पंछी'), आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र ('मिट्टी के आदमी'), सुगनचन्द्र मुक्तेश ('स्वाति बूंद'), आनन्द मोहन अवस्थी ('इन्द्र धनुष का अंत') इत्यादि के नाम लिये जा सकते है ।

आठवे दशक में लघुकथा के विकास के संदर्भ में श्री रमेशकुमार लिखते है, ''हिन्दी लघुकथा के स्तरीय सर्जन एवं विकास की दृष्टि से आठवा दशक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इस दशक में जहाँ एक और लघुकथाकारों के एकल संग्रह तथा अनेक लघुकथाकारों के समवेत संकलन प्रकाशित हुए वहाँ दूसरी

ओर पत्र–पत्रिकाओं के लघुकथा–विशेषांकों ने भी लघुकथा के विकास में विशेष योगदान दिया । इसी दशक में विश्वविद्यालयों के पाठयक्रमों एवं शोध–विषय के रूप में इस विधा को मान्यता प्राप्त हुई । मेरठ विश्वविद्यालय ने लघुकथा को 'गद्य–विविधा' में संकलित कर एम.ए. के पाठयक्रम में निर्धारित किया ।''[२५] आठवें दशक में जहाँ लघुकथा–संग्रहों तथा लघुकथा संकलनों का योगदान सराहनीय है, वहाँ अनेक पत्र–पत्रिकाओं ने लघुकथा को स्थापित करने में विशेष योगदान दिया है । इनमें 'अन्तर्यात्रा', 'मिनीयुग', 'दीपशिखा', 'लघुकथा', 'प्रयास' 'समग्र', 'वीणा', 'सुषमा', 'सारिका', 'तारिका', 'कहानीकार', 'प्रगीतशील समाज', 'पूर्वा', 'प्रस्तुत', 'पवित्रा' 'शिक्षक संसार', 'स्वर्णदीपिका', 'साहित्यनिर्झर', 'कृत संकल्प' जैसी कई पत्र–पत्रिकाओं ने लघुकथा को विश्वास देने में अपना भरपूर योगदान दिया । इस दशक में लघुकथाकारों ने लघुकथा का अधिक मात्रा में सृजनकर लघुकथा को हिन्दी गद्य–साहित्य की अन्य विधाओं के समकक्ष लाकर खडा किया । हिन्दी लघुकथा साहित्य में आठवें दशक के लघुकथाकारों का विशेष योगदान रहा है । इनमें प्रमुख लघुकथाकार आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र ('ऐतिहासिक लघुकथाएँ'), डॉ. ब्रजभूषणसिंह आदर्श ('दो धाराएँ'), डॉ. सतीश दुबे ('सिसकता उजास'), रामनारायण उपाध्याय ('नया पंचतंत्र'), प्रो. कृष्ण कमलेश ('मोहभंग'), श्रीराम ठाकुरदादा ('अभिमन्यु का सत्ता–व्यूह'), दुर्गेश ('कालपात्र') सनत मिश्र ('एक ओर अभिमन्यु'), मनीषराय यादव ('अनावरण') सतीशराज पुष्करणा ('वर्तमान के झरोखे'), ईश्वरचन्द्र ('छोटा आदमी'), डॉ. रामसियासिंह ('बोधक लघुकथाएँ)' इत्यादि का स्थान महत्त्वूर्ण माना जाता है ।

हिन्दी लघुकथा साहित्य का नौंवा दशक उसका महत्त्वपूर्ण पड़ाव है । इस दशक के संदर्भ में श्री रमेश कुमारजी लिखते है – ''नौंवा दशक हिन्दी लघुकथा के इतिहास का स्वर्ण–युग कहा जायेगा । इस दशक की लघुकथाओं में जीवन के विभिन्न आयामों की अभिव्यक्ति की गयी है । राजनीतिज्ञों के दुहरे व्यक्तित्व, मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन, बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, दफतरी

जीवन की विसंगतियाँ, धर्म, नीति और अध्यात्म के आडम्बर, पुलिस का आतंक आदि इस दशक की लघुकथाओं के विषय है । इसके अतिरिक्त भुख, बलात्कार, तस्करी, अतृप्त काम–वासनाओं की अभिव्यक्ति, नारी मन की व्यथा, दहेज आदि कुप्रथाओं, आम आदमी की उच्च्य स्तरीय जीवन जीने की कामना आदि विषय भी इस दशक की लघुकथाओं के विषय है । इस दशक की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है – 'अक्तुबर, १९८३ को प्रकाशित लघुकथा के समीक्षा पत्र पर लिखी गयी सतीशराज पुष्करणा द्वारा सम्पादित पुस्तक 'लघुकथा : बहस के चौराहे पर' । लघुकथा के इतिहास, शिल्प, रचना–प्रक्रिया, भाषा, परिभाषा आदि पर आधारित ५० लेखों की यह पुस्तक लघुकथा के इतिहास की महत्त्वपूर्ण कडी है ।''[२६] इस दशक में बहुत–से लघुकथा संकलन प्रकाशित हुए, पर इस दशक में पत्र–पत्रिकाओं का योगदान आठवें दशक की अपेक्षा कुछ कम ही रहा । नोवें दशक की प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में 'आघात', 'दर्शनमंथन', 'रावीमां' 'ध्वनि', 'लहर', 'कथाबिम्ब', 'पारिजात', 'युवा प्रगति', 'आश्वस्त', 'आगमन', 'हरिगन्धा' 'आजकल' इत्यादि मुख्य है । इस दशक के प्रमुख लघुकथाकारों में विष्णु प्रभाकर ('आपकी कृपा है'), डो ओमानन्द रु. सारस्वत ('आज का अश्वत्थामा'), रामनिवास 'मानव' ('ताकि सनद रहे'), कमलेश भारतीय ('मस्तराम जिन्दाबाद'), चन्द्र भुषण सिंह 'चन्द्र' ('मिट्टी की गन्ध'), डॉ. नरेन्द्रनाथ लाहा ('प्रयास'), डो स्वर्णकिरण ('अपना पराया'), मुकेश जे. रावल ('मुट्ठीभर आक्रोश') आदि लघुकथाकार – लेखन कार्य में निरन्तर कार्यरत रहे है । इस तरह नोवां दशक हिन्दी लघुकथा के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

इस प्रकार लघुकथा के उद्भव और विकास पर एक दृष्टि की जाए, तो यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य की यह विधा क्रमशः धीमी गति से अपने लक्ष्य तक पहुँच गयी है । छठे दशक के करीब इसका अपने लघुरूप में आरम्भ होना, फिर क्रमशः सातवें दशक में संघर्ष करते हुए, आठवें दशक में लोकप्रिय हो जाना और नोंवे दशक में पहुँचते हुए यह विधा अपना स्थान बड़ा

ही मजबूत कर पायी है । प्रवर्तमान युग में इस विधा ने सभी स्थान पर अपना निश्चित मुकाम बना लिया है । बहुत ही कम समय में बहुत ही अधिक लोकप्रियता को प्राप्त करने का श्रेय लघुकथा को जाता है । समकालीन युग में कई साहित्यिक मंचो ने लघुकथा प्रतियोगिताओं का आयोजन करके लघुकथा के प्रसार प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी । लघुकथा के विकास में जहाँ व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक पत्र–पत्रिकाओं ने विशेष भूमिका निभायी, वहाँ लघुकथाकारों ने भी अपने दायित्व को समझते हुए अनेक लघुकथा संग्रह प्रकाशित किये तथा अनेक लघुकथा संकलन निकालकर इस विधा के विकास में विशेष योगदान दिया । श्री चक्रधर नलिन ने यथार्थ लिखा है कि ‘‘हिन्दी लघुकथा संसार नए नए रूपों में विकसित और समृद्धिमय हो रहा है । मानवीय चिंतन, नई–नई गतिधाराओं के साथ लघु कथाओं में परिलक्षित हो रही है । हिन्दी लघुकथाकार इस बीसवीं और इक्कीसवीं शती की सर्वाधिक सशक्त विधा को सृजनात्मक बोध से निरन्तर सशक्त बना रहे है, यह भारतीय गौरवशाली साहित्यिक परंपरा का श्रेष्ठ प्रमाण है ।’’[२७] निःसंदेह प्रवर्तमान युग में लघुकथा आम आदमी के जीवन से पूर्ण रूप से जुड़ी हुई है तथा निरन्तर विकासोन्मुख है ।

❀ लघुकथाकार हरिशंकर परसाई :

साठोतरी हिन्दी कथा–साहित्य में श्री हरिशंकर परसाई का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । उन्होंने अपने साहित्य में लघुकथा को भी उतनी ही महत्ता प्रदान की है, जितनी साहित्य की अन्य विधा को । उनकी लघुकथाएँ भी कहानियों की भाँति वैविध्यसभर है । परसाईजी ने बहुत–सी लघुकथाएँ लिखी है, जिसकी भाषा विविध स्तरों और अनेक पर्तो के भीतर चलनेवाली किसी करंट की अंतर्धार की तरह है । परसाईजी की लघुकथाएँ सहज, सरल और अत्यन्त धारादार तो है ही, साथ ही इसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं, स्थितियों, सम्बन्धों और घटनाओं के यथार्थ वर्णन की भी अद्भुत क्षमता है ।

परसाईजी द्वारा लिखीत कुल सत्ततर लघुकथाएँ प्राप्त होती है । जो उनकी रचनावली भाग–दो में संग्रहित है ।[२८]

❀ परसाईजी की लघुकथाओं का विषयगत अध्ययन :

परसाईजी मूलतः व्यंग्य लेखक है । अतः यह स्वाभाविक ही है कि उनकी प्रत्येक रचना व्यंग्य से परिपूर्ण हो । यही बात उनके संपूर्ण कथा साहित्य में भी देखी जाती है । उन्होंने अपने लेखन में व्यंग्य को सर्वाधिक महत्त्व दिया है । इसी कारण उनके उपन्यास, कहानियाँ, लुघकथाएँ इत्यादि सभी कथा साहित्य में व्यंग्य मूलाधार है । इसी बात का संकेत देते हुए श्री श्याम कश्यप लिखते है – ''परसाईजी के कथा–साहित्य का कितना युगान्तकारी महत्त्व है, इस बात का पता इस तथ्य से चलता है कि 'नयी कहानी' धारा के दोनों चोटी के कहानीकारों भीष्म साहनी और अमरकान्त की सफलता का रहस्य भी बहुत कुछ व्यंग्य ही है । व्यंग्य की ओर उनकी उन्मुखता ही उन्हें उनके आरम्भिक आदर्शवाद और रुमानियत से क्रमशः मुक्त करती जाती है । एकदम इधर की मिसाल ले तो युवा कहानीकारों में ज्ञानरंजन और काशीनाथसिंह के गद्य की शक्ति भी व्यंग्य की यह महीन बुनावट ही है । अन्य कथाकारों की अपेक्षा परसाईजी की अधिक सफलता और उच्चतर प्रतिष्ठा की एक वजह यह भी है कि व्यंग्य उनके गद्य में एक सहायक या गोण तत्त्व के रूप में नहीं, बल्कि उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण और कलात्मक पद्धति में घुला–मिला उसके मूलाधार के रूप में आता है ।''[२९]

यही बात परसाईजी की लघुकथाओं में भी सार्थक प्रतीत होती है । क्योंकि उनकी लघुकथाएँ संक्षिप्त होते हुए भी व्यंग्य के द्वारा बहुत से अर्थ प्रकट करती है । इन लघुकथाओं में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि कई परिस्थितियों की मार्मिक यथार्थवादी अभिव्यक्ति हुई है । विषयवस्तु की दृष्टि से परसाईजी की लघुकथाओं को देखा जाए तो, सर्वप्रथम 'बदचलन' कहानी है, जो एक सामाजिक लघुकथा हैं, जिसमें सभी व्यक्ति दुष्कर्म करते हैं और सभी

एक–दूसरे को बदचलन कहते हुए उसकी ओर ऊँगली उठाते हैं । 'सूअर' लघुकथा में दहेज के भूखे व्यक्तियों पर व्यंग्य कसा गया है । 'सर्वे और सुन्दरी' में व्यभिचार पर व्यंग्य करते हुए आज के मानव की राष्ट्र के प्रति गेरजिम्मेदारी का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है । ऐसे ही 'समाजवादी चाय' में जहाँ राजनीतिक नेताओं पर व्यंग्य है, वहाँ 'अफसर कवि' में ऐसे अफसर पर व्यंग्य किया गया है, जो कवि भी है । 'पुलिस मन्त्री का पुतला' में पुलिस के जुल्म पर तीक्ष्ण प्रहार है । वहीं छोटी सी लघु कथा 'कबीर की बकरी' में धार्मिक बाह्याचार पर व्यंग्य किया गया है । देखिए –

''कबीर–पन्थियों ने मुझे यह घटना सुनायी ।

कबीरदास बकरी पालते थे । पास में मन्दिर था । बकरी वहाँ घुस जाती और बगीचे के पते खा जाती । एक दिन पुजारी ने शिकायत की, 'कबीरदास, तुम्हारी बकरी मन्दिर में घुस आती है ।''

कबीर ने जवाब दिया, 'पण्डितजी, जानवर है । चली जाती होगी मन्दिर में । मैं तो नहीं गया ।''[३०]

परसाईजी की अन्य लघुकथाओं में 'अयोध्या में खाता–बहीं' में रामायण की कथा द्वारा व्यापारियों के भ्रष्टाचार का चित्र प्रस्तुत किया गया है । 'संसद और मन्त्री की मूँछ' में संसद में चलती नेताओं की बिलकुल ही व्यर्थ कार्रवाइयो और धमाल का चित्रण है । ऐसे ही 'अनुशासन' में अध्यापक और शिक्षा–विभाग के साहब द्वारा अनुशासन नियम का पालन करने पर व्यंग्य किया गया है । 'आफटर ओल आदमी' लघुकथा में ऐसे व्यक्ति की बात कही गयी है, जो सरकारी नौकर है और उसके लिए जिसकी सरकार बने, उसीकी जय बोलना ही परम कर्तव्य है । 'बाप बदल' लघुकथा में राजनीति के नेताओं की वृत्तियों और फिजुलखर्ची पर व्यंग्य है । 'स्वर्ग में नर्क' कथा में व्यापारियों की भ्रष्टाचार वृत्ति का चित्रण है, जिसमें मिलावट करनेवाला सेठ स्वर्ग में रहकर भी नर्क का दुःख भुगतता है । अर्थात स्वर्ग में भी नर्क की मिलावट करके सेठ को दुःख पहुँचाया जाता है । 'यस सर' कथा में सरकारी काम–काज की

कछुआ गति पर व्यंग्य है, जिसमें एक काम पूरा होने में सालों बित जाते हैं । 'क्रांतिकारी की कथा' में क्रांतिकारिता का नारा लगानेवाला युवक केवल बुर्जुआ बौड़म बनके रह जाता है, केवल क्रांतिकारी कहने से क्रांतिकारी नहीं बना जा सकता, इस बात पर परसाईजी ने व्यंग्य किया है । 'ईडन के सेब', भारतीय संस्कृति पर व्यंग्य है, जिसमें विज्ञापन देती हुई नारी के पीछे लोग दीवाने होते है और बिना सोचे–समझे उसीका अनुकरण करते है । जैसे देखिए इस लघुकथा के अंत में परसाईजी लिखते है, "विज्ञापन का असर होने लगा । पुरुष तो ईव की सिफारिश माननें को यों ही तैयार थे । स्त्रियों ने जब विज्ञानपन देखा, तो पहले तो जलकर कहा, 'अच्छा, हरामजादी ने फोटो भी छपा लिया !' फिर आखिरी वाक्य पर नजर पड़ी – 'इनसे मेरी त्वचा मुलायम और चमकदार होती है ।" तो पति को पुकारा – 'सुनते हो ! मैंने कहा, दफतर से लोटते एक सेर ईडन के सेब जरुर लेते आना !' एक महीने बाद ईव खुदा के पास आयी । बोली 'कहिए खुदाबन्द' खुदा ने कहा 'सब बिक गये ।'"[३१] 'नहुष का निष्कासन' में पौराणिक कथा द्वारा आधुनिक मानव की वृत्तियों पर प्रहार किया गया है । 'देव–भक्ति' में मानव मानव की धार्मिक संकीर्णता पर व्यंग्य है । 'जाति' लघुकथा में अपनी लड़की की परजाति में शादी करवाना मंजुर नहीं, पर व्यभिचार भले ही चलता रहे, क्योंकि व्यभिचार से जाति नहीं जाती, शादी से जाती है । ज्ञाति के भेद द्वारा लेखक ने करारा व्यंग्य किया है । ऐसे ही 'लिफट' में तरक्की के लिए अपनी पत्नी का भी उपयोग करने की मनोवृति रखनेवाले सरकारी बाबूओं पर व्यंग्य है । 'खेती' में सरकार की नीतियों पर व्यंग्य हैं, जो केवल कागजों पर ही चलती है । 'रोटी' में गरीबी की करुणता के द्वारा प्रशासन की नीतियों पर व्यंग्य है, तो 'दुख' लघुकथा में तरक्की पानेवाले व्यक्तियों से इर्ष्याभाव रखनेवाले लोगों का चित्रण है ।

परसाईजी की 'दण्ड' लघुकथा में ऐसे कलाकार की बात है, जिसके सामने दूसरे कलाकार की प्रशंसा करना उसके लिए सबसे बड़ा दण्ड है ।

'दवा' कथा में ऐसे लेखक पर व्यंग्य है, जिसको दवा से नहीं, उसकी रचनाओं से ही ठीक किया जा सकता है । 'होनहार' ऐसे लड़के की कथा है, जो ज्योतिषी के अनुसार प्रजातंत्र का नेता बनेगा । 'हृदय' कथा में एक कोलेज के प्रिन्सिपल की बात है, जो अपने हृदय की बात सुनकर सभी कार्य अनुचित रूप से ही करता है । 'उपदेश' लघुकथा में भाषण देनेवाले सेवकजी पर व्यंग्य है, जो नारी स्वतंत्रता की बात तो करते है, पर स्वयं अपनी पत्नी को स्वतंत्रता देना नहीं चाहते । 'अमरता' में ऐसे लेखक की स्वार्थीवृत्तियों का चित्रण है, जो दूसरों की प्रगति सह नहीं सकता । 'अश्लील पुस्तके' लघुकथा में परसाईजी ने आधुनिक युग की मानव मनोवृत्तियों पर प्रकाश डाला है कि सभी अश्लील पुस्तक का विरोध करते है और सभी उसी को पढ़ते भी है । 'प्रथम स्मगलर' लघुकथा में रामायण के प्रसंग द्वारा आज के युग के भाई–भतीजावाद पर करारा प्रहार किया है । प्रसंग प्राचीन है, अपितु इसकी कथा आज के युग के लिए सर्वथा सार्थक है । लेखक वर्णन करते है – "शत्रुध्न के कहा – भरत भैया, आप ज्ञानी हैं । इस मामले में नीति क्या कहती है ? शासन का क्या कर्तव्य है ? भरत ने कहा – स्मगलिंग तो अनैतिक है । पर स्मगल किये हुए सामान से अपना या अपने भाई–भतीजे का फायदा होता है, तो यह काम नैतिक हो जाता है । जाओं हनुमान, ले जाओ दवा । मुंशी से कहा – रजिस्टर का पन्ना फाड़ दो ।"[३२] इस तरह यह लघुकथा प्रवर्तमान युग की अनीतियों पर लिखी गयी है । ऐसे ही परसाईजी ने 'पाँच' लोक–कथाएँ' में पाँच लघुकथाएँ लिखी है, जिसमें अलग–अलग विषय वस्तु है, प्रथम 'दूसरा फरहाद' में आधुनिक युग के प्रेम पर व्यंग्य है, द्वितीय 'गुरु शिष्य' में आज की परीक्षा पद्धति में चोरी की वृत्ति पर व्यंग्य है, तृतीय 'वकील' में आधुनिक युग के वकील की बात है, चतुर्थ 'आधुनिक' कथा में भारतीय संस्कृति का आधुनिकीकरण दिखाया गया है, तो अंतिम 'खुदा का नूर' कथा में साहुकार का आम जनता पर इतना अत्याचार दिखाया गया है कि साहुकार नुरु उसे खुदा का नूर लगता है और वह बेहोश

हो जाता है । 'चौबेजी की कथा' और 'तिवारीजी की कथा' दोनों कथायें आधुनिक युग की दहेज की समस्या पर करारा प्रहार है । 'लड़ाई' कथा में ऐसे व्यक्तियों पर व्यंग्य है, जो कुत्तो के लिए आपस में लड़ते है । 'खून' लघुकथा में ऐसी बुढ़िया की बात है, जिसकी तर्कपूर्ण बात सुनकर सब उसे खुन देने के लिए तैयार हो जाते है । 'सुशीला' में सुशीला नामक लड़की भागकर दूसरी जाति के लड़के से विवाह कर लेती है, ताकि पिता को दहेज के लिए कर्ज न करना पड़े । इस सामाजिक लघुकथा में मानव के जातिवाद एवं पुराने विचारों पर करारा प्रहार है । 'आजादी की घास' लघुकथा में आजादी के बाद नेताओं ने स्वतंत्र भारत की क्या स्थिति बना दी है, उसका मर्मस्पर्शी चित्रर्ण है । 'मित्रता' में लेखकों की मनोवृत्तियों पर व्यंग्य है, जिसमें दो शत्रु लेखक आपस में मिलकर किसी तीसरे लेखक को उखाड़ फेंकना चाहते हैं । 'राम और भरत' में रामायण की बात लेकर परसाईजी ने वर्तमान युग के भाई–भाई कैसे एक दूसरे को पछाड़ते है, उसका उल्लेख करते हुए यथार्थ चित्रण किया है । 'खोटा रूपया' में एक खोटे रूपये की बात है, जिसे सब एक दूसरे को देकर जहाँ से आता है, वहीं पहुँचा देते है । 'साला पिये था' कथा में ऐसे व्यक्ति पर व्यंग्य है, जो स्वयं शराब पीकर अर्थहीन वाक्य प्रयोग करके झगड़े की बात करता है, पर उसे लगता है कि सामनेवाला पिये हुए था । 'शेर और कुता' में ऐसे नकली शेर की बात है, जो असली कुते से घायल हो जाता है और भाग जाता है । 'सलाहकार' लघुकथा हाँ में हाँ मिलानेवाले बाबू लोगों की है, जो अपने साहब की किसी बात का प्रतिकार नहीं करते । 'भगवान और ट्रेक्टर' में भगवान की भक्ति से बढ़कर आधुनिक विज्ञान बड़ा है, क्योंकि भगवान का रथ खींचने के लिए भक्तजन नहीं आये, तब ट्रेक्टर की मदद लेनी पड़ी । इस तरह विज्ञान की बात कहते हुए भक्ति पर व्यंग्य है । 'जनता की गोली' लघुकथा में परसाईजी ने संसद और मंत्रियों के अर्थहीन भाषणों पर व्यंग्य किया है । जैसे –

''राष्ट्र की संसद में किसी ने आलोचना की – 'पिछले महीने पुलिस ने २५ स्थानों पर जनता पर गोली चलायी जिसमें ५०–६० आदमी मारे गये.....' मन्त्री ने उत्तर दिया, 'हमारे यहाँ जनता के धन से ही गोलियाँ बनती हैं । उत्तरदायी सरकार के नाते हमारा कर्तव्य हो जाता है कि जनता के धन का उपयोग जनता के लिए ही हो । जनता की गोलियाँ जनता के ही काम आनी चाहिए । इसीलिए हम गोलियों का दूसरों पर अपव्यय न करके, जनता की चीज जनता को ही सौंप देते है ।' इस पर सरकारी पक्ष से तालियों कि गड़गड़ाहट हुई ।[३३]

ऐसे ही परसाईजी की 'शोक' नामक लघुकथा में हिन्दी के एक बड़े प्रसिद्ध लेखक एवं आलोचक के शोक का चित्रण है, जो जिस लड़की को हिन्दी पढ़ाते हैं, वही लड़की युनिवर्सिटी के किसी लड़के को प्रेमपत्र लिखकर उसी लेखक को लेटर–बोक्स में डालने के लिए देती है । 'क्षमावाणी' लघुकथा में जैन धर्म के पर्यूषण पर्व की बात कहते हुए परसाईजी ने जैनों की एक–दूसरे के प्रति द्वेष–भावना का चित्रण किया है । 'अपनेलाल की चिट्ठी' में लेखक ने मानव की स्वार्थवृत्ति पर प्रकाश डाला है । 'बधिर मुख्मन्त्री' भ्रष्टाचारी अफसर एवं नेताओं की कथा है । परसाईजी की अन्य लघुकथाओं में 'भक्तों में मारपीट' में धार्मिक व्यंग्य है, ऐसे ही 'गोडविलिंग' में विज्ञान और डोक्टरी पेशे पर व्यंग्य है, तो 'गधा और मोर' सामाजिक कुरूपता की लघुकथा है । 'पत्रकार' में आधुनिक पत्रकारिता में भ्रष्टाचार का चित्रण है । 'क्रान्ति हो गयी' में व्यापारियों की नीति पर व्यंग्य हैं । 'पुण्य' लघुकथा में आत्महत्या करनेवाले को स्वर्ग का पुण्य मिलने की बात है । 'मिठाई की मक्खी' में मिठाई की गंदकी का चित्रण देते हुए व्यंग्य है । 'साहब और चपरासी' में परसाईजी ने प्रशासकीय बातों का चित्रण किया है, तो 'मास्टर साहब पान खाते जाइए' लघुकथा में शिक्षा जगत में होनेवाले भ्रष्टाचार एवं रिश्वत पर करारा प्रहार किया गया है । 'भगवान को घूस' में स्वार्थ के लिए भगवान को पूजने की बात की गयी है, तो 'खैर, अब मैं आ गया हूँ' में समाज में सुधार लाने की

इच्छा रखनेवाले लेखक पर व्यंग्य किया गया है । परसाईजी ने अपनी 'संस्कृति' लघुकथा में यह यथार्थ प्रकट किया है कि मानव की भूख रोटी से पूरी होती है, संस्कृति के राग सुनाने से नहीं । ऐसे ही 'चन्दे का डर' लघु कथा में चन्दे देने से डरनेवाले व्यक्ति पर व्यंग्य किया गया है । 'वात्सल्य' में स्वयं को बचाने के लिए वात्सल्य का ढोंग करनेवाले ड्रायवर पर व्यंग्य है । 'धन्यवाद भाषण' में बड़े साहबों द्वारा छोटे चपरासी का अपमान हाने की बात कही गयी है । परसाईजी ने इस लघुकथा में बड़े आदर की भावनावाले मामूली चपरासी गनेश की व्यथा को वाणी दी है । अपने अफसरों से थोड़ा–सा सम्मान पाने को इच्छुक गनेश किस प्रकार अपमानित होता है, इसका वर्णन परसाईजी इस प्रकार करते है –

''बातूनी बाबु भाषण देने लगे, 'गनेश को हम बहुत धन्यवाद देते है । उसका इन्तजाम बहुत अच्छा था । आज उसे परमात्मा ने यह शुभ दिन दिखाया । मुझे मालूम है जब यह गनेश यहाँ आया था तब इसके पास खाने को दाना नहीं था, पहिनने को कपड़ा नहीं था । बेचारा भूखा मरता था । पर हमने यहाँ उसे नौकरी दी और अब वह मजे में है ।''

गनेश का मुख लटक गया था । वह जैसे रुआँसा हो गया था । वे रिश्तेदार भी उदास हो गये थे । गनेश उनकी और अब देखने के लिए सिर नहीं उठा सकता था । बातूनी बाबु जब उसकी भूखमरी और दीनता की पीठ पर बाबू लोगों का एहसान लाद चुके, तब गनेश काँपते हाथों से कप–बसी इकट्ठे करने लगा ।''[३४] ऐसे ही परसाईजी की 'अपना–पराया' लघुकथा में जिस स्कूल में नौकरी करनेवाला शिक्षक अपने बच्चे को उसीमें न पढ़ाकर दूसरी स्कूल में पढ़ाता है, उसी बात पर करारा प्रहार है । 'समझोता' कथा में दो साईकल–सवार के झगडे की बात है, तो 'रसोईघर और पाखाना' में मानव की संकीर्णता पर व्यंग्य है, जो अपनी झूठी प्रतिष्ठा भोजन में प्रदर्शित न करने पायेगा, तो मल–मूत्र को लेकर ही करेगा । 'एक बहिन की बात' में आधुनिक मानव की अपवित्र मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है । 'बात' लघुकथा में

ऐसी बात पर व्यंग्य है, जो किसी को न कहने की शर्त होने पर भी पूरे शहर में फैल जाती है । 'सहानुभूति' में राजनीतिक व्यंग्य है, तो 'नयी धारा' में साहित्यिक व्यंग्य है । ऐसे ही 'नदी को दान' में धार्मिक व्यंग्य का चित्रण है, तो 'दानी' लघुकथा में लोभी सेठ की प्रसिद्धि की चाह पाने की वृत्ति पर व्यंग्य है । 'सुधार' में सुधार करने के बहाने अपने स्वार्थ साधने की बात कही गयी है । परसाईजी की 'प्रतिष्ठा' लघुकथा में अफसरों की झूठी प्रतिष्ठा पर व्यंग्य है, तो 'पद-पूजन' लघुकथा में विद्वान का सम्मान करने के बजाय नेता के सम्मान में चार चाँद लगाये जाने की बात पर कटु प्रहार है ।

इस प्रकार परसाईजी की कुल ७७ लघुकथाएँ हैं, जो 'परसाई रचनावली' भाग-२ में संकलित है और ये सभी लघुकथाये विषय-वैविध्य से पूर्ण है । परसाईजी ने अपनी इन लघुकथाओं में एक अफसर से लेकर चपरासी, अध्यापक, मंत्री, भगवान को घूस देने वाले व्यक्ति नवयुवक-युवतियाँ, लेखक, पत्रकार, सेठ-साहुकार आदि समाज के सभी चेहरों पर से नकाब उतारकर उन्हे पाठक के सामने लाकर खड़ा कर दिया है । परसाईजी की लघुकथाओं की विषय-वस्तु आधुनिक भारत का सम्पूर्ण चित्रण है । अत्यन्त छोटे आकार में समाज की विडम्बनाओं एवं समस्याओं का चित्रण करना और हास्य-व्यंग्य के प्रभाव से पाठक की रुचिको बनाये रखना - ये इन लघुकथाओं की सफलता का रहस्य है । सारतः जिस प्रकार परसाईजी के उपन्यास एवं कहानियाँ जितनी रसप्रद एवं सार्थक है, उसी प्रकार उनकी लघुकथाएँ भी सचोट एवं सार्थक है । यही कारण है कि आज ये सभी लघुकथायें सफल मानी जाती है । लघुकथा होते हुए भी ये सभी कथायें अर्थ की दृष्टि से एवं समकालीन परिवेश की दृष्टि से बहुत ही विराट है । इन लघुकथाओं की लोकप्रियता एवं इनकी विषय-वस्तु का विशाल फलक देखते हुए निःसंदेह यह सत्य है कि परसाईजी एक सफल लघुकथाकार भी है ।

❀ परसाईजी की लघुकथाओं का स्वरूपगत अध्ययन :

परसाईजी एक प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे । उनकी लेखनी ने साहित्य की अनेकानेक विधाओं का स्पर्श किया है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि परसाईजी की कलम से निकली लघुकथाएँ भी सार्थक एवं सचोट है । आगे ऊपर हम लघुकथा के स्वरूपगत तत्त्वों का उल्लेख कर चुके हैं । उन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यहाँ हम परसाईजी की लघुकथाओं का मूल्यांकन करेंगे । इन विशेषताओं का कितना निर्वाह परसाईजी की लघुकथाओं में हुआ है और ये लघुकथाएँ इन विशेषताओं की कसोटी पर कहाँ तक खरी उतरती है, इसबात की चर्चा अब हम करेंगे ।

(१) लघुता :

किसी भी लघुकथा की प्रथम विशेषता उसकी लघुता है । आकार की दृष्टि से लघुरूप लघुकथा के लिए अनिवार्य है । लघुकथा के आकार के विषय में आलोचकों में मतभेद है । कुछ आलोचक शब्द संख्या को महत्त्व देते है और कुछ कथा के आधार पर आकार निश्चित करते हैं । श्री सतीशराज पुष्करणा के मतानुसार “इसके आकार को यों तो सीमा में बांधा नहीं जा सकता किन्तु मोटे तोर पर और विधागत अनुशासन को मदे नजर रखते हुए एक हजार शब्दों तक ही लघुकथा को स्वस्थ माना जा सकता है ।”[३५] तो दूसरी तरफ श्री कमल चोपड़ा के मतानुसार “लघुकथा के आकार का लघु होना उसके विशेष शिल्प विधान का परिणाम है । शब्द संख्या निर्धारित करना तो किसी भी विधा के सृजनात्मक पक्ष पर अंकुश लगा देना है । फिर भी अनिवार्य रूप से लघुकथा की शब्द संख्या या आकार का निर्धारण उसके कथ्य के आधार पर ही होना चाहिए ।”[३६] इस तरह लघुकथा के लिए लघुता का गुण महत्त्वपूर्ण माना गया है ।

जहाँ तक परसाईजी की लघुकथाओं की बात है तो परसाईजी की सभी लघुकथाएँ लघु आकार की है । उनकी प्रत्येक लघुकथा में लघुता का गुण छिपा

हुआ है । कुछ लघुकथाएँ तो केवल कुछ पंक्तियों में लिखी गयी है । जैसे 'कबीर की बकरी', 'दुख', 'दण्ड', 'दवा', 'रोटी', 'होनहार', 'हृदय', 'पाँच लोककथाएँ', 'मित्रता', 'जनता की गोली', 'वात्सल्य', 'सहानुभूति', 'नयी धारा', 'सुधार' इत्यादि लघुकथाएँ तो बिलकुल संक्षिप्त है । उनकी 'नयीधारा' लघुकथा को देखिए कुछ ही पंक्ति में लिखी गयी है ''उस दिन एक कहानीकार मिले । कहने लगे 'बिलकुल नयी कहानी लिखी है – बिलकुल नयी शैली, नया विचार, नयी धारा' हमने कहा, क्या शीर्षक है ? वे बोले, 'चाँद–सितारे– अजगर–साँप–बिच्छु–झीले ।''[३७] इस तरह परसाईजी की सभी लघुकथाएँ वास्तव में लघुकथा है । कोई भी लघुकथा लीजिए, उसे पढ़ने में अधिक समय नहीं लगता, सभी लघुकथाएँ एक ही समयान्तर में पूर्ण की जा सकती है । परसाईजी की लघुकथाओं में लघुता का गुण पूर्ण रूप से सँवारा गया है ।

(२) कथात्मकता :

लघुकथा के लिए जहाँ लघु आकार होना आवश्यक है, वहीं उसके लघुआकार में एक संक्षिप्त ही सही, अपितु सचोट एवं सार्थक कथा का होना भी आवश्यक है । क्योंकि कथात्मकता के बिना कोई भी कथा साहित्य अर्थहीन बन जाता है । 'लघुकथा' का नामकरण भी इस विधा में कथात्मकता की महत्ता को सिद्ध करता है । डॉ. पुष्पा बंसल लघुकथा में कथातत्त्व के महत्त्व को इस तरह व्यक्त करती है, ''लघुकथा हिन्दी की ऐसी विधा है, जो गद्य–वर्ग की है, कथा–वर्ग की है अर्थात इसके मूल में जो कथात्मक आधार होता है, वह कल्पना प्रसूत होता है तथा यह कहानी, लम्बी कहानी आदि विधाओं से स्वतंत्र उन्हीं की तरह एक अलग कथा विधा है ।''[३८] अतः लघुकथा में कथात्मकता होनी चाहिए ।

परसाईजी एक मेघावी साहित्यकार है । अतः उनका साहित्य कभी भी निरर्थक नहीं हो सकता, उनकी प्रत्येक लघुकथा में कोई–न कोई कथा प्रकट होती है, जो भले ही लघु होती है, पर उसका प्रभाव उसकी असर अत्यन्त ही

तीक्ष्ण एवं सचोट होती है । परसाईजी एक सफल व्यंग्यकार भी है । अतः उनकी लघुकथा कितनी ही संक्षिप्त क्यों न हो, पर उसमें से प्रकट हुए उनके विचार प्रत्येक परिस्थिति में समाज एवं राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्र को स्पर्श करते है । उनकी किसी भी लघुकथा को लिया जाए, भले ही उसकी कथा सामान्य हो, फिर भी उस कथा के मूल में रहे उनके विचारों का प्रभाव असामान्य होता है । परसाईजी की 'बदचलन', 'सुअर', 'सर्वे और सुन्दरी', इडन के सेब', 'देवभक्ति', 'लिफट', 'सहानुभूति' 'नदी को दान' इत्यादि लघुकथाएँ कथात्मकता की दृष्टि से उत्कृष्ट है । उनकी 'सहानुभूति' लघुकथा में लेखक ने संक्षिप्त कथात्मकता के साथ कितनी व्यंग्यात्मकता से प्रभावक विचारों को पाठक के सामने प्रस्तुत किया है –

"क्यों भाई, तुम्हारी किस राजनीतिक पार्टी से सहानुभूति है ? किस पार्टी को तुम सबसे अच्छा समझते हो ? 'मेरी सहानुभूति तो कम्युनिष्ट पार्टी से सबसे अधिक है ।' 'क्यों' ?

'इसीलए कि कम्युनिस्टों पर जासूसी करने के लिए मुझे पैसे मिलते है ।'"[३६]

परसाईजी की सभी लघुकथाओं में कथात्मकता की विशेषता दृष्टिगोचर होती है ।

(३) आधुनिकता बोध :

प्रवर्तमान युग में लघुकथा को आधुनिक बोध की विधा माना गया है । आज के युग का मानव अनेक विडम्बनाओं से घिरा हुआ है । समाज में सर्वत्र अराजकता, अत्याचार, भ्रष्टाचार छाया हुआ है । ऐसी परिस्थिति में मानव–जीवन की स्थिति कैसी है, इसकी सही पहचान लघुकथाओं में से मिलती है । श्री रमेश कुमार शर्मा लिखते हैं, "आज की लघुकथा आधुनिकता बोध को लेकर चलती है । समकालीन लघुकथा – लेखन न केवल सामान्य व्यक्ति की संघर्ष चेतना को साथ लेकर चलता है, अपितु उस संघर्ष को जन्म

देनेवाली परिस्थितियों तथा उन मुखौटों को भी बेनकाब करता है ।[४०] आधुनिक युग की यथार्थपूर्ण परिस्थितियों का सही चित्र लघुकथाओं में से पाया जा सकता है, क्योंकि लघुकथा आधुनिक बोध को व्यक्त करती है ।

आधुनिक युग की विसंगतियों की बात हो और परसाईजी का उल्लेख न आये यह असंभव बात है । क्योंकि परसाईजी ने अपने साहित्य में जितना प्रवर्तमान युग की विडम्बनाओं पर लिखा है, उतना शायद ही किसी ने लिखा हो । आधुनिकयुग में मानव की स्थिति का सही चित्रण परसाईजी की लघुकथाओं में भी देखा जा सकता है । उनकी सभी लघुकथा आधुनिकता बोध को व्यक्त करती है । उनकी 'अयोध्या में खाताबही', 'बाप-बदल' 'स्वर्ग में नर्क', 'चोबेजी की कथा', 'तिवारीजी की कथा', 'राम और भरत', 'भगवान को घूस', 'क्रान्ति हो गयी' 'रोटी' 'खेती', 'पाँच लोक-कथाएँ' इत्यादि बहुत-सी लघुकथाओं में लेखक ने इस परिस्थिति का चित्रण किया है । परसाईजीने अपनी 'पाँच लोककथाएँ' में से एक 'आधुनिक' लघुकथा में भारतीय आधुनिकता पर व्यंग्य से प्रहार किया है । देखिए -

''एक राजा वेश बदलकर अपने मन्त्री के साथ प्रजा की हालत देखने निकलता था ।

एक दिन राजासाहब एक खिडकी में से एक घर के भीतर झाँक रहे थे । वहाँ एक आदमी जनेऊ पहने, चन्दन लगाये बर्थ-डे केक काट रहा था । राजा ने मन्नत्री से पूछा - 'यह क्या है ?''

मन्त्री ने कहा - 'हुजूर, यह भारतीय आधुनिकता है ।''[४१]

इस प्रकार परसाईजी की प्रत्येक लघुकथा इस अत्याधुनिक युग की किसी-न-किसी विसंगति में फँसे आम मानव के जीवन की अभिव्यक्ति करती है । उनकी सभी लघुकथाओं में आधुनिकता बोध की अभिव्यक्ति पायी जाती है ।

(४) यथार्थ चित्रण :

यह लघुकथा की महत्त्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है । किसी भी लघुकथा में यथार्थ चित्रण होना चाहिए । केवल कल्पनाओं से रचा सुंदर जगत लघुकथा की सृष्टि नहीं है । लघुकथा की रचना ही संक्षिप्तता में सचोटता व्यक्त करने के लिए होती है । अतः यथार्थ चित्रण होने के कारण लघुकथा सचोट बन पाती है । लघुकथा के विषय में ऐसा भी हुआ है कि कभी–कभी यथार्थ के नाम पर कुछ लेखकों ने अश्लील चित्रण भी किया है । श्री रमेश कुमार शर्मा इस बात की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते है कि – ''आधुनिक लघुकथा की यह विशेष पहचान है कि यह जीवन के यथार्थ का चित्रण करती है, जिन्दगी के कटुसत्यों से साक्षात्कार करवाती है । परन्तु इसमे भी कोई सन्देह नहीं कि कतिपय लघुकथाकारों ने यथार्थ के नाम पर अश्लील चित्रण किया है । उदाहरणतः श्यामसुन्दर सुमन की लघुकथा 'वैश्या' देखी जा सकती है । जिसने लघुकथा के नाम पर अश्लीलता की चरम सीमा को छू लिया है । इसी प्रकार मातादीन खखार की लघुकथा 'भाव–ताव' भी अश्लीलता की सीमा में आती है ।.... जिस प्रकार प्रगतिवाद के नाम पर घासलेटी साहित्य रचा गया उसी प्रकार लघुकथा में भी यथार्थ के बहाने अश्लील साहित्य रचकर पाठक की भावनाओं को उत्तेजित करने का प्रयास किया जा रहा है । ऐसे साहित्य की घोर निन्दा की जानी चाहिए ।''[४२] लघुकथा अपने लघु आकार में समाज जीवन इत्यादि के कटुसत्य, विसंगतियाँ आदि यथार्थ को प्रस्तुत करती है । अतः यथार्थ चित्रण का होना लघुकथा की महत्त्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है ।

यथार्थ चित्रण की बात हो और इसमें भी परसाईजी जैसे यथार्थ चित्रण के लेखक की लघुकथाओं की चर्चा हो, तो निःसंदेह यह कहना पड़ता है कि इनकी प्रत्येक लघुकथा मानव जीवन के किसी–न–किसी पहलु का यथार्थ चित्रण प्रकट करती है । इनकी कोई भी लघुकथा को लिया जाय, उसमें मानव–जीवन की कोई–न–कोई विडम्बना का यथार्थ चित्रित किया हुआ मिलता है । फिर

चाहे वह 'बदलचन' हो, चाहे 'यस सर' हो, चाहे 'लिफट' हो या फिर चाहे 'अश्लील पुस्तकें' हो प्रत्येक लघुकथा में परसाईजी ने जीवन के किसी–न–किसी पहलु का यथार्थ चित्रण किया है । परसाइजी की 'रसोई घर और पाखाना' लघुकथा में उन्होंने हमारे समाज में फैले ऊँच–नीच के भेद–भाव का संपूर्णतः वास्तविक चित्र खींचा है । इस लघुकथा में लेखक ने एक गरीब नौकर लड़के के माध्यम से इस बात की और हमारा ध्यान आकर्षित किया है । जैसे "वह बोला 'वैसे तो मैं उनके चौके में सबके साथ ही बैठकर खाना खाता हूँ । पर जो घर में एक वृद्धा है, वे मुझसे कहती है कि बाहर की टट्टी में पाखाना जाया करो । घर में एक तो बड़ी और प्रमुख टट्टी है, जिसमें घर के लोग जाते हैं, और हैं जिसमें नोकर चाकर जाते हैं । मुझसे वे कहने लगी कि बाहरवालों के लिए वह बाहरवाली टट्टी है । मुझे चौके में तो प्रवेश मिल गया है, पर टट्टी में प्रवेश नहीं मिला ।' सोचता हूँ – वाह रे ! हिन्दू समाज ! अगर तुझे चौके में अपना पराया, भीतर–बाहर का भेद निभाते नहीं बनेगा तो पाखाने में भेद निबाहेगा ।

अगर तेरी झूठी प्रतिष्ठा भोजन में प्रदर्शित न हो पायेगी तो तू मल–मूत्र में ही प्रदर्शित करके रहेगा । अगर मेरे रसोईघर में ऊँच–नीच कोई नहीं रहेगा तो तू सँडास, में ऊँचा बनकर दूसरे को नीचा बनायेगा ! शाबाश !"[४३]

परसाईजीने अपनी सभी लघुकथाओं के द्वारा तत्कालीन समाज की यथार्थता को प्रकट किया है । ये यथार्थता प्रवर्तमान युग में भी दृष्टि गोचर होती है ।

(५) तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता :

लघुकथा ही एक ऐसी विधा है जिसमें तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता का सर्वाधिक प्रभाव देखने को मिलता है । लघु आकार होते हुए भी पाठक के मनः मस्तिष्क को जकझोर देने का कार्य लघुकथा करती है, क्योंकि इसमें बड़ी ही

तेज, सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता होती है, जो पाठक के आंतरिक मानस पर गहरा प्रभाव छोड़ती है । डॉ. शंकर पुणताम्बेकर लघु कथा के विषय में यथार्थ ही लिखते है कि – ''लघुकथा में अनुभूति की तीव्रता इतनी घनी होती है कि वह हमे बिजली के तार की भाँति झटका दे जाती है । हमारी चेतना को एकदम झकझोर देती है ।''[४४] लघुकथा का विषय ही आमतौर पर समकालीन समाज एवं मानव–जीवन की विसंगतियाँ या फिर विद्रुपता होता है । फलतः इसकी कथा में लघुता होते हुए भी तीक्ष्णता होती है, जो बड़ी ही प्रभावोत्पादक होती है । इसी कारण श्री रमेशकुमारजी लिखते है कि ''लघुकथा में कथारस नहीं है, जेसा कि गद्य की अन्य विधाओं कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में पाया जाता है । सभी नव–रस भी इसमें नहीं है । इसमें केवल आधुनिक या बौद्धिक रस है, विवशता रस है, क्षोभ–रस है । लघुकथा में रस के स्थान पर व्यंग्यात्मक क्षोभ है ।''[४५] इस प्रकार संक्षिप्तता के साथ तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता का गुण लघुकथा को अन्य विधा से अलग करता है ।

परसाईजी का तो सम्पूर्ण साहित्य ही तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता का उत्तम उदाहरण है । अपितु यहाँ हमारा लक्ष्य केवल उनकी लघुकथा ही है । परसाईजी के अन्य साहित्य की भाँति ही उनकी लघुकथाओं में तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता पायी जाती है । परसाईजी की कलम तीक्ष्ण साहित्य का सृजन करने में संपूर्णतः सफल रही है । उनकी लघुकथाओं में उनका युग झलकता है । उनकी सभी लघुकथायें बिलकुल संक्षिप्त आकार की होते हुए भी हम पर बड़ा ही नुकीला प्रभाव छोड़ती है । उनकी 'हृदय', 'देवभक्ति', 'उपदेश', 'प्रथम स्मगलर', 'पाँच लोककथाएँ', 'चौबेजी की कथा', 'भगावन को घुस', 'संस्कृति', 'वात्सल्य', 'अपना पराया', 'बात' इत्यादि लघुकथाएँ तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता का उत्तम निर्वाह करती है । परसाईजी की 'देव भक्ति' लघुकथा अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी पाठक पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है । जैसे – ''एक शहर की बात है । शहर में गणेशोत्सव बड़ी धूम से मनाया जाता है । प्रथा कुछ ऐसी चल गयी है कि हर जाति के लोग अपने अलग गणेशजी रखते

हैं । इस तरह ब्राह्मणों के अलग गणेश होते हैं, अग्रवालों के अलग, तेलियों के अलग, कुम्हारों के अलग । पचीस–तीस तरह के गणेशोत्सव होते हैं, और नव–दस दिनो तक खूब भजन–कीर्तन, पूजा–स्तुति, आरती, गायन–वादन होते है । आखिरी दिन गणेश–विसर्जन के लिए जो जुलूस निकलता है, उसमें सबसे आगे ब्राह्मणों के गणेशजी होते हैं । इस साल ब्राह्मणों के गणेशजी का रथ उठने में दैर हो गयी, इसलिए तेलियों के गणीशजी आगे हो गये, जब यह बात ब्राह्मणों को मालूम हुई, तो वे बड़े क्रोधित हुए । बोले – ''तेलियों के गणेश की ऐसी–तैसी हमारा गणेश आगे जायेगा ।''[४६]

इस प्रकार परसाईजी की प्रत्येक लघुकथा के अंतर्गत कम–से–कम शब्दों में अधिक–से–अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है ।

(६) *व्यंग्यात्मकता :*

लघुकथा के द्वारा लघुकथाकार समाज की परिस्थितियाँ, मानव–जीवन की विविध अनुभूतियों को वाणी देते हैं । इसी कारण श्री रमेश कुमार शर्मा लिखते है – ''लघुकथा मानव–जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं और विद्रुपताओं का चित्रण करती है । मानव की उद्विग्नता एवं छटपटाहट ने जनमा है लघुकथाओं को । छटपटाहट व्यंग्योन्मुखी होती है । इसीसे आज लघु कथाओं में व्यंग्य का स्वर मुखरित हो रहा है । व्यंग्य लघुकथा का तत्त्व नहीं है । किन्तु व्यंग्यात्मकता लघुकथा की विशेषता है ।''[४७] व्यंग्यात्मकता के कारण लघुकथा का प्रभाव तीव्र बन जाता है । किसी भी लघुकथा में व्यंग्य होने से वह धारदार बनती है । बहुत से आलोचक लघुकथा में व्यंग्य को प्रधानता देते हुए उसकी अनिवार्यता को मानते है । डॉ. शंकर पुणताम्बेकर लिखते है – ''व्यंग्य का सहयोग पाकर तो लघुकथा पुनर्जीवित हुई... रुढ हुई ।''[४८] ऐसे ही लघुकथा में व्यंग्य के महत्त्व को स्वीकार करते हुए डॉ. पुष्पा बंसल लिखती है – ''धधकती मानसिकता की अभिव्यक्ति आज अधिकांश में लघुकथा के माध्यम से

हो रही है । मानसिक छटपटाहट व्यंग्योन्मुखी होती है । इसी मानसिकता में से आज के व्यंग्य लेख एवं व्यंग्य–तन्त्र जन्म ले रहे है । किन्तु व्यंग्य लेखो में भाषा पर शब्द प्रयोग पर एवं लाक्षणिकता पर अधिकार होना आवश्यक है । यों भी अनेक व्यंग्य लेख या तो बृहदाकार लघुकथा होते है या एकाधिक लघुकथाओं का संग्रह ।''[४६] इस तरह लघुकथा में व्यंग्यात्मकता होने से उसकी प्रभावकता बढ़ती है और व्यंग्य के द्वारा किसी भी अनुभूति को तीव्रता मिलती है ।

व्यंग्य और परसाईजी परस्पर अभिन्न है । अतः परसाईजी की लघुकथा ही नहीं, उनका समग्र साहित्य व्यंग्य की स्पिरिट से युक्त है । परसाईजी ने व्यंग्य का प्रयाग करके हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की है । उनकी लघुकथाओं में भी व्यंग्यात्मकता का भरपूर प्रयोग देखा जा सकता है । अपनी छोटी सी कथा में व्यंग्य का संक्षिप्त स्पर्श देकर परसाईजी ने उसमें गहरा अर्थ गांभीर्य प्रस्तुत किया है । परसाईजी की प्रत्येक लघुकथा में कहीं न कहीं व्यंग्य का पूट अवश्य देखा जाता है । उनकी 'बदचलन', 'समाजवादी चाय', 'इडन के सेब', 'नहुष' का निष्कासन', 'जाति', 'लिफट', 'दुख', 'अमरता', 'अश्लील पुस्तकें', 'सलाहकार', 'अपनेलाल की चिट्‌ठी', 'अपना पराया' 'बात', 'पद पूजन' इत्यादि सभी लघुकथाएँ व्यंग्यात्मकता का उत्तम उदाहरण है । इन सभी लघुकथाओं में राजकीय स्थिति सामाजिक रीत–रिवाज, धार्मिक पाखण्ड, उँच–नीच के भेदभाव, आर्थिक विषमतायें, सांस्कृतिक पतन, शैक्षणिक भ्रष्टाचार इत्यादि कई विषय को लेकर परसाईजी ने व्यंग्य से प्रहार किया है । उनकी 'बदचलन' लघुकथा में सामाजिक व्यंग्य है, तो 'समाजवादी चाय' में राजकीय व्यंग्यात्मकता है । 'देव भक्ति' में धार्मिकता पर व्यंग्य हैं, तो 'रोटी' में आर्थिक व्यंग्यात्मकता दृष्टिगोचर होती हैं । परसाईजी की सभी लघुकथा में व्यंग्यात्मकता का गुण अवश्य देखा जाता है, क्योंकि परसाईजी एक सफल व्यंग्यकार है । परसाईजी की 'अपना–पराया' लघुकथा में उन्होंने शिक्षण–संस्था एवं शिक्षक पर व्यंग्य के द्वारा उनकी वास्तविक स्थिति का घटस्फोट किया है । जैसे –

“ ‘आप किस स्कूल में शिक्षक है ?”

‘मैं लोकहितकारी विद्यालय में हूँ । क्यों, कुछ काम है क्या ?’

‘हाँ, मेरे लड़के को स्कूल में भरती कराना है ।’

‘तो हमारे स्कूल में ही भरती करा दीजिए ।’

‘पढ़ाई–वढ़ाई कैसी है ?’

‘नम्बर वन ! बहुत अच्छे शिक्षक है । बहुत अच्छा वातावरण है ।’

‘बड़ा अच्छा स्कूल है ।’

‘आपका बच्चा भी वहाँ पढ़ता होगा ?’

‘जी नहीं, मेरा बच्चा तो ‘आदर्श विद्यालय’ में पढ़ता है ।’ ”[५०]

इस प्रकार लघुकथा में व्यंग्यात्मकता होने से उसकी चोट गहरी होती है और परसाईजी की लघुकथा में इसका पूर्णतः निर्वाह देखा जाता है

(७) नवीन विधा :

लघुकथा का जन्म हमने देखा कि साठ के दशक में हुआ और आठवे तथा नवें दशक में उसका विकास चरमसीमा तक पहुँचा । इसका अर्थ होता है कि यह विधा अत्यन्त नवीन है । फलतः लघुकथा में प्राचीन कथाओं की विषयवस्तु न होकर बिलकुल नवीनता का सौन्दर्य है और यह नवीनता है प्रवर्तमान युग की विषमताओं का चित्रण । आधुनिक युग के संत्रासभरे जीवन की पीड़ा से फूट पड़ी है यह लघुकथा । अतः लघुकथा में प्राचीनता न होकर नवीन अनुभूतियों का चित्रण मिलता है । श्री रमेशकुमार इसी कारण लिखते है, “हिन्दी लघुकथा, हिन्दी गद–साहित्य की बिलकुल नवीन विधा है । प्राचीन लघु कहानियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है । प्राचीन बोध–कथाओं, जातक – कथाओं, प्रचतंत्र, हितोपदेश की कथाओं, किस्सा तोता–मैना, सिंहासन–बतीसी आदि की कथाओं को तथा दूसरी ओर लैला–मजनू, शीरी–फरहाद, पूरण भक्त, आल्हा–उदल आदि की कथाओं को लघुकथा के इतिहास में नहीं गिनाया जा सकता ।”[५१] ऐसे ही डॉ. नामदेव उतकर लघुकथा को नवीन विधा के रूप में

स्वीकार करते हुए लिखते है, ‘‘इस कम्प्यूटरी युग में पाठक के पास लम्बी–लम्बी कहानियों को पढ़ने और उसमें सिर खपाने की फुर्सत नहीं है । गति तीव्रतम और आकार न्यूनतम होने लगा है । अतः मिनी कविता तथा लघुकथा का प्रादुर्भाव हुआ है । धीरे–धीरे इसका प्रभाव बढ़ता जा रहा है । .... लघुकथा इस सदी की नवीन विधा है, जिसमें जीवन और समाज के संवेदनात्मक यथार्थ का चित्रण देखा जा सकता है । ‘देखन में छोटी लगे, घाव करे गंभीर’ की विशेषता होती है ।’’[५२] वर्तमान समय की इस नवीन विधा लघुकथा में विभिन्न संस्थाओं में फैली अव्यवस्था, व्यक्ति, दल, सरकार, झूठ, मक्कारी, दम्भ, ढोंग एवं अनाचार इत्यादि विषय को लेकर लिखा गया है ।

परसाईजी की सभी लघुकथाएँ साठ के दशक में लिखी गयी है । यह समय लघुकथा का शैशवकाल रहा था । परसाईजी की बहुत–सी लघुकथा उस समय वसुधा एवं प्रहरी पत्रिका में छपी भी थी, जिसका समय एवं उल्लेख ‘परसाई रचनावली भाग–२’ में पाया जाता है । परसाईजी की लघुकथा का रचनाकाल साठवाँ दशक है, यह समय लघुकथा का शैशवकाल होते हुए भी परसाईजी की लघुकथाओं में आज के युग की वास्तविकता एवं समसामयिकता देखने को मिलती है । परसाईजी का साहित्य युगीन साहित्य है । इसी कारण उनकी लघुकथाएँ आज भी हमें स्पर्श करती है, आज के प्रवर्तमान युगकी विडम्बनाओं की झाँकी उनकी लघुकथाओं में पायी जाती है । तत्कालीन युग की जो समस्याएँ एवं विसंगतियां थी, वही स्थिति आज भी महसूस होती है । इसी कारण उनकी लघुकथाएँ नवीन लगती है । ऐसा लगता ही नहीं है कि यह लघुकथा आज के समय में नहीं लिखी गयी, अपितु इतने वर्षो पूर्व लिखी गई होते हुए भी ये सभी लघुकथाएँ समकालीन प्रतीत होती है । इसका कारण केवल यही है कि लघुकथा का जन्म ही मानव की समुची उद्विग्नता, छटपटाहत, विवशता एवं आक्रोश इत्यादि के कारण हुआ है । यही सब आज भी मानव जीवन में देखने को मिलता है । इसीलिए परसाईजी की लघुकथाएँ पाठक के हृदय को स्पर्श करती हुई नवीन महसूस होती है । परसाईजी की ‘क्षमावाणी’

लघुकथा को देखा जाए तो इसमें मानव का बाहरी दिखावा एवं पाखण्ड दिखाई देता है, पर हृदय से वह कितना स्नेहहीन एवं प्रेम से रिक्त हो गया है, इसका पता चलता है । यह लघुकथा आज के समय में भी नवीन लगती है, क्योंकि यही बात आज भी देखी जाती है । यथा–

''विगत दिनों पर्यूषण पर्व में एक धार्मिक जैन सज्जन से मुलाकात करने गये ।

वे बड़े व्यस्त थे । कहने लगे, 'कल 'क्षमावाणी' उत्सव है । उसका इन्तजाम कर रहा हूँ । सब काम माथे पर आ गया है । ११ दिन से व्रत चल रहे हैं और आज तो दम लेने की फुरसत नहीं मिली ।' साथी ने पूछा, 'यह कैसा उत्सव है ?' वे बोले, 'भैया इस उत्सव में सबलोग प्रेम से गले मिलते है, एक–दूसरे को क्षमा कर देते हैं । बड़े प्रेम और सदभाव का उत्सव होता है यह ।' वे प्रेम–विभोर हो गये ।

हमने कहा, 'बड़े भैया कहाँ है ? उनसे भी मिल लेते । बुला दीजिए ।'

वे बोले – 'बगल के हिस्से में रहने लगे हैं । जाकर पुकार लो । अपनी तो बोलचाल नहीं है ।'

वे 'क्षमावाणी' के काम में लग गये । मेंने बाहर जाकर देखा, उस मकान के बीच जो हिस्से की दीवाल उठायी गयी थी, वह ऊपर ८ फुट तक आसमान में चली गयी थी । 'आकाश तकबाँट लिया भाइयों ने । आपस में बोलचाल नहीं, पर दोनों भाई 'क्षमावाणी' में उत्साह से लगे है ।''[५३]

परसाईजी की सभी लघुकथाएँ ऐसी ही नवीनता लिए हुए है । उनकी लघुकथा का प्रतिपाद्य आज भी समकालीन लगता है, यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है ।

(८) *स्वतंत्र विधा :*

लघुकथा न केवल नवीन विधा है, बल्कि वह स्वतंत्र विधा भी है । लघुकथा की यह विशेषता इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है, क्योंकि लघुकथा अपने आप में स्वतंत्र होती है । इसका पूर्वापर सम्बन्ध कहीं भी नहीं होता । कुछ विद्वानों ने इसे कहानी का संक्षिप्त रूप कहा है, इसका विरोध करते हुए श्री रमेशकुमार लिखते है, – ''हिन्दी लघुकथा हिन्दी गद्य–साहित्य की एक स्वतंत्र विधा है । कतिपय विद्वान इसे कहानी का छोटा रूप मानते हैं । किन्तु यह स्पष्ट हो चुका है कि लघुकथा कहानी का छोटा रूप नहीं है । इसे कहानी की उपविधा भी नहीं कह सकते ।''[५४] यही बात डॉ. पुष्पा बंसल इस प्रकार कहती है, ''यह कहानी, लम्बी कहानी आदि विधाओं से स्वतंत्र उन्हीं की तरह एक अलग कथा विधा है...जैसे कहानी उपन्यास की उप–विधा नहीं है, जैसे लम्बी–कहानी उपन्यास का लघु संस्करण अथवा कहानी का बड़ा संस्करण नहीं है, इसी प्रकार लघुकथा कहानी, लम्बी कहानी अथवा उपन्यास का न तो लघुतम संस्करण है और न ही उप–विधा । लघुकथा अपने आप में एक स्वतंत्र – स्वतः पूर्ण हिन्दी–साहित्य रूप है ।''[५५] लघुकथा में न उपन्यास की तरह विस्तार वर्णन होता है, न ही कहानी एवं लम्बी कहानी की भाँति विशेष वर्णन । इसमें तो छोटे–छोटे कथन में बड़ी बड़ी अर्थपूर्ण बातें लिखनी होती है । लघुकथा में कबीर जैसे संतो के दोहे जैसा चमत्कार होता है । बिलकुल संक्षिप्त एवं सरल वाक्य रचना में भी अनेक अर्थो से भरे वर्णन लघुकथा की स्वतंत्रता सिद्ध करते हैं । इसलिए लघुकथा न तो कहानी का संक्षिप्त रूप है और न ही इसे छोटी कहानी कहा जा सकता है । क्योंकि कहानी और लघुकथा में कुछ अंतर है । लघुकथा तो स्वयं में पूर्ण रचना होती है, जिस कारण यह पूर्णतः स्वतंत्र विधा मानी जाती है ।

परसाईजी ने बहुत कम लघुकथाएँ लिखी है, पर जितनी भी लघुकथाएँ उन्होंने लिखी है, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है । वे सभी लघुकथाएँ पढ़ने से यह महसूस होता है कि सभी लघुकथाएँ संपूर्णरूप से स्वतंत्र है ।

उनकी कुछ लघुकथा तो केवल कुछ वाक्यों से ही बनी है । फिर भी ये लघुकथाएँ पढ़ने के पश्चात जब उनका अर्थ गांभीर्य प्रकट होता है तब इसकी स्वतंत्रता स्वयमेव ही सिद्ध हो जाती है । परसाईजी की प्रत्येक लघुकथा में न कहीं बिनजरुरी विस्तार–वर्णन है, न ही कहीं अर्थहीन वाक्यों की भरमार । जितनी भी लघुकथाएँ परसाईजी ने लिखी, सभी की सभी अर्थ की दृष्टि से उत्कृष्ट एवं समसामयिक दृष्टि से उत्तम साबित हुई है । उनकी 'जाति', 'लिफट', 'खेती', 'रोटी', 'दुख', 'दण्ड', 'दवा', 'होनहार', 'हृदय', 'उपदेश', 'मित्रता' 'खोटा रूपया', 'वात्सल्य', 'सुधार', 'पद–पूजन' इत्यादि सभी लघुकथा बहुत ही संक्षिप्त रूप में लिखी गयी है, परन्तु सभी लघुकथा संक्षिप्त होते हुए भी स्वतंत्र है एवं अर्थ की दृष्टि से पूर्णतः सफल बन पायी है । उदाहरण के रूप में उनकी 'होनहार' लघुकथा को देखा जाए, तो इस लघुकथा में परसाईजी ने नेताओं के जीवन की वास्तविक स्थिति का परिचय सामान्य मनोरंजनप्रद संवाद के द्वारा बताया है । जैसे –

"एक स्त्री अपने लड़के को एक ज्योतिषी के पास ले गयी और बोली, 'पंडितजी, इस लड़के का भविष्य बतलाइए । आगे चलकर यह क्या होगा ? ज्योतिषि ने कहा, 'माता ! तू इसके कुछ लक्षण बता । इसमें तूने क्या विशेष बात देखी ?' स्त्री ने कहा, यह रात को एका एक चिल्ला पड़ता है, जागो ! जागो ! आगे बढ़ो ! आगे बढ़ो ।" ज्योतिषी ने पूछा, 'अच्छा, जब यह ऐसा चिल्लाता है, तब स्वयं क्या करता है ?' स्त्री बोली, 'यह तो सोया रहता है – पत्थर–सरीखा । नींद में चिल्लाता है ।'

ज्योतिषी ने तनिक सोचकर उत्तर दिया, 'माँ, तेरे बेटे का भविष्य बहुत उज्ज्वल है ।'

'क्या बनेगा यह, पण्डितजी ।'

'यह किसी प्रजातन्त्र का नेता हो जायेगा ।'"[५६]

संक्षेप में परसाईजी की प्रत्येक लघुकथा ऐसे ही अपने आप में स्वतंत्र है, जो लघुकथा की सभी विशेषताओं से युक्त एवं नवीनता लिए हुए है ।

❀ निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि लघुकथा हिन्दी गद्य–साहित्य की अन्य विधाओं के समकक्ष होते हुए भी उन सबसे भिन्न एक स्वतंत्र एवं स्वतः परिपूर्ण विधा है । लघुकथा की अपनी एक विशिष्ट पहचान है । इसकी विशेषताएँ ही इसे अन्य विधाओं से अलगाती है । यह नवीन विधा आधुनिक बोध को लेकर चलती है । लघुता, कथात्मकता, व्यंग्यात्मकता, तीक्ष्ण सम्प्रेषणीयता आदि इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं । लघुकथा आज के युग की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सफल विधा मानी जाती है । इसी सफल विधा पर अपनी तेज कलम चलानेवाले लेखकों में परसाईजी का भी योगदान रहा है । वैसे तो परसाईजी निबन्ध लिखना अधिक पसंद करते थे, फिर भी उन्होंने अन्य विधाओं में भी लिखा है । इसमें लघुकथा भी अछूती नहीं रह पायी है । उनकी लघुकथाएँ संक्षिप्त, सरल, व्यंग्यपूर्ण एवं अर्थगांभीर्य से युक्त है । उनकी लघुकथाओं में यथार्थवाद का खुरदरा और पैना दृष्टिकोण दिखाई देता है और इन लघुकथाओं की विषयवस्तु वास्तविक जीवन की यथार्थता का चित्रण है ।

परसाईजी ने अपनी लघुकथा में चौतरफा समाज की बनत और रंगत, तत्कालीन राजनीतिक साजिशों, प्रशासन की अमानवीयता और धर्म तथा अध्यात्म के पाखण्डों से छले जाते समकालीन आदमी की रोजमर्रा तकलीफ को वाणी दी है । उनकी लघुकथा के पात्र सजीव, स्थितियाँ वास्तविक, प्रसंग जलते हुए और घटनाएँ होती हुई हैं । वो अनुभव की सम्भावना से अधिक उसकी वास्तविकता की लघुकथाएँ है । अर्थात परसाईजी की लघुकथाएँ अनुभव की प्रामाणिकता से अधिक प्रामाणिक अनुभव की लघुकथाएँ हैं । परसाईजी ने अपनी लघुकथाओं के द्वारा आधुनिक मानव–जीवन में व्याप्त विसंगतियों को व्यंग्यात्मक मुद्रा में प्रस्तुत करके पाठक को झकझोर दिया है । उनकी सभी लघुकथाएँ एक–साथ पढ़ने के लिए प्रत्येक व्यक्ति लालायित हो उठे, ऐसी आकर्षक एवं सचोट हैं । व्यंग्य के कारण परसाईजी की लघुकथाएँ अत्यन्त ही हृदयस्पर्शी बन पायी है । परसाईजी ने भले ही कम लघुकथाएँ लिखी है, फिर भी प्रत्येक लघुकथा

लघुकथा की दृष्टि से सफल बन पायी है । परसाईजी की भाषा भी सरल एवं अर्थपूर्ण बन पायी है । ऐसे ही उन्होंने इन लघुकथा में संवादात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली का भरपूर प्रयोग किया है, जिससे ये सभी लघुकथाएँ रसप्रद बन पायी है ।

संक्षेप में कहे तो परसाईजी की लघु–कथाएँ साठके दशक में लिखी गई होते हुए भी आज के युग में भी सार्थक सिद्ध होती है । संक्षिप्तता के साथ सरलता, व्यंग्य के साथ अर्थगांभीर्य, विसंगतियों के साथ वैशिष्ट्य उनकी लघुकथा की सफलता अभिव्यक्त करती है । परसाईजी की लघुकथाओं में जहाँ सामाजिक अनुभव की सपाटता है, वहीं व्यक्तिगत अनुभव की सघनता भी है । अर्थात परसाईजी की लघुकथाओं में जगत के प्रत्येक क्षेत्र तथा जीवन की सभी घटनाएँ, प्रसंग एवं अनुभूतियों का सार्थक तादृश्य चित्रण सफलता से हुआ है । परसाईजी की लघुकथाएँ अपने आप में अनुठी एवं सटीक है ।

सन्दर्भ–सूची :

क्रम		पृ.नं.
१	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिव कुमार शर्मा	६४५
२	हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास – श्री रमेशकुमार	१३
३	लघुकथा – सर्जना एवं समीक्षा – डॉ. सतीशराज पुष्करणा	१४
४	श्रीविलास गुप्ते 'लहर' लघुकथांक	५.६
५	'साहित्य साधना की पृष्ठभूमि' – श्री बुद्धिनाथ झा कैरव	२६७
६	'लघुकथा' : बहस के चौराहे पर' सं. सतीशराज पुष्करणा – डॉ. ओमानन्द सारस्वत	
७	'आगमन' – सं. तरुण जैन	६
८	'हरिगन्धा' – डॉ. श्रीमति पुष्पा बंसल	२१
६	'ताकि सनद रहे ।' – राम निवास 'मानव'	६
१०	'तत्पश्चात' – सं.सतीशराज पुष्करणा (कुलदीप जैन)	५६
११	हिन्दी साहित्यकोश भाग–१ – सं. धीरेन्द्र वर्मा	७४०-४१
१२	'वनप्रिया' प्रवेशांक – श्री विक्रम सोनी	६२
१३	'लहर' लघुकथांक – श्री धरेन्द्र शर्मा	१०
१४	'लघुकथा–बहस के चौराहे पर' – सं.सतीशराज पुष्करणा	३
१५	लघुकथा : सर्जना एवं समीक्षा – सं.सतीश पुष्करणा (कुमार अखिलेश्वरीनाथ)	१३५
१६	हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास – श्री रमेश कुमार	३७
१७	लघुकथा : सर्जना एवं समीक्षा – सं. सतीश पु. सुकेश साहनी)	१२४
१८	हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास – श्री रमेशकुमार	३१-३६
१६	लघुकथा सर्जना एवं समीक्षा – सं. सतीश पु. (डॉ. स्वर्णकिरण)	११६

२०	'लघु आघात' (अंक) – डॉ. हरिशचंद्र वर्मा	८०
२१	हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. माधव सोनटक्के	४४७
२२	हिन्दी कहानी के सौ वर्ष - डॉ.वेदप्रकाश अमिताभ	७५
२३	हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास – श्री रमेशकुमार	४७
२४	लघुकथा : सर्जना एवं समीक्षा – श्री निशान्तर, सं. सतीश पुष्करणा	८७
२५	हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास	५३
२६	हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास – श्री रमेशकुमार	६०
२७	लघुकथा : सर्जना एवं समीक्षा – सं. सतीश पु. (चक्रधर नलिन)	८२
२८	परसाई रचनावली भाग–२ – सं. कमला प्रसाद आदि	
२६	परसाई रचनावली भाग–२ – श्री श्याम कश्यप	३
३०	परसाई रचनावली भाग–२ – 'कबीर की बकरी' लघुकथा	३१८
३१	परसाई रचनावली भाग–२ – 'इडन केसेब' लघुकथा	३३०
३२	परसाई रचनावली भाग–२ – 'प्रथम स्मगलर' लघुकथा	३४२
३३	परसाई रचनावली भाग–२ – 'जनता की गोली' लघुकथा	३५७
३४	परसाई रचनावली भाग–२ – 'धन्यावाद भाषण' लघुकथा	३७३
३५	'आगमन' – सं. सतीशराज पुष्करणा	१२
३६	'आगमन' – सं. सतीशराज पुष्करणा (श्री कमल चोपड़ा)	११
३७	परसाई रचनावली भाग–२ - 'नई धारा' लघुकथा	३७८
३८	'हरिगन्धा' – डॉ. पुष्पा बंसल	२१
३६	परसाई रचनावली–२ - 'सहानुभूति' लघुकथा	३७८
४०	हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास – श्री रमेशकुमार	३३
४१	परसाई रचनावली–२ 'पाँच लोक कथाएँ' – लधुकथा	३४४
४२	हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास – श्री रमेशकुमार	३३

४३	परसाई रचावली–२ 'रसोइघर और पाखाना' – लघुकथा	३७५
४४	'हिन्दी साहित्य : आठवा दशक' – डॉ. शंकर पुणताम्बेकर	१२८
४५	'हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास' – श्री रमेश कुमार	३४
४६	परसाई रचनावली–२ - 'देवभक्ति' लघुकथा	३३२
४७	'हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं इतिहास' – श्री रमेश कुमार	३४
४८	'कुरुशंख' – डॉ.शंकर पुणताम्बेकर	२८
४९	'हस्ताक्षर' – डॉ. पुष्पा बंसल	२१
५०	परसाई रचनावली–२ - 'अपना पराया' लघुकथा	३७५
५१	'हिन्दी लघकथा : स्वरूप एवं इतिहास' – श्री रमेशकुमार	३५
५२	'हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृतियाँ' - डॉ. नामदेव उतकर	४४४
५३	परसाई रचनावली–२ - 'क्षमावाणी' लघुकथा	३५८
५४	'हिन्दी लघुकथा : स्वरूप एवं समीक्षा'+– श्री रमेश कुमार	३६
५५	'हरिगन्धा' – डॉ. पुष्पा बंसल	२१
५६	परसाई रचनावली–२ - 'होनहार' लघुकथा	३३७

❀❀❀

उपसंहार

उपसंहार

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग स्वातंत्र्योत्तर काल साहित्य सम्बन्धी कुछ नई दिशाओं का उद्घाटन काल रहा है । इस युग में आविर्भूत निराश, कुण्ठा, वितृष्णा, शोषितों की पीड़ा, महँगाई, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी आदि का उद्घाटन कभी नये प्रतीकों के माध्यम से, तो कभी व्यंग्य और विनोद के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ । युग की भावनाओं को वाचा देनेवाले तत्कालीन साहित्यकारों में एक थे हरिशंकर परसाई । परसाई प्रेमचंदोत्तर युग के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे । एक सफल व्यंग्यकार होने के साथ साथ कथा लेखक के रूप में भी उनकी उपलब्धियाँ विशेष हैं । हिन्दी के जनपद मूलक कथाकारों में उनका एक विशिष्ट स्थान है ।

परसाई नैतिकता के विश्वासी थे । समाज का खोखलापन उनके लिए असह्य था । अपनी स्वस्थ जीवन-दृष्टि के कारण वे अपने परिवेश से असंतुष्ट थे । समाज की मूल्य हीनता ने उन्हें कलम चलाने के लिए मजबूर कर दिया था । उनकी कथाओं में मूल्य हीनता के प्रति जबरदस्त आक्रोश व्यक्त हुआ है । परसाई के कथा-साहित्य में जहाँ समाज के शोषण तथा अन्याय के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है, वहाँ मानव के प्रति आस्थावाद भी । वे स्वयं मानवीय गुण सम्पन्न व्यक्ति थे तथा मानवमूल्य के विश्वासी थे । परसाई के लेखन में अनुभवजन्य परिपक्वता है । उन्होंने कबीर की तरह दुनिया को अच्छी तरह जाँचा परखा है । उन्होंने समाज के हर कोने में व्याप्त विसंगतियों और पाखण्ड से साक्षात्कार किया, आम आदमी के दर्द को अनुभव किया और उसकी बेहतरी के लिए अपने ढंग से प्रयास शुरु किया । स्वतंत्रता के बाद का त्रासमय यथार्थ ही परसाई के कथा साहित्य की जमीन है । वर्षो बाद प्राप्त स्वतंत्रता और नेहरु के नेतृत्व से लोगों ने आशा की थी कि अब हालत सुधरेंगी, किन्तु आजादी का पूरा फायदा एक खास वर्ग ने ही उठाया ।

मेहनतकश जनता गरीबी और शोषण से मुक्ति नहीं पा सकी । राजनीति मनुष्य के जीवन में अहं भूमिका निभाती है, अतः परसाई जैसे लेखक मानव मूल्य और मानवीय संवेदना का प्रश्न लेकर राजनीति से जुड़ते हैं । हिन्दी साहित्य को परसाई की एक देन है – राजनीति और साहित्य का अटूट सम्बन्ध । परसाई ने दिखा दिया कि राजनीति और लेखन दो विरोधी बातें नहीं है । जो शासक यह सलाह देते है कि लेखक को राजनीति से अलग रहना चाहिए, वे चालाक राजनीति बाज हैं, जो लेखक जैसे बुद्धिजीवी वर्ग को अपने स्वार्थ साधन में बाधक समझते हैं । परसाई ने सही राजनीति से परिचय कराया है ।

इसे परसाई के लेखन की विशिष्टता ही मानी जायेगी कि उनकी लघुकथाएँ, कहानियाँ या उपन्यास किसी एक निष्कर्ष पर नहीं टिके है । वे हर पाठक को अलग–अलग रूप से आकर्षित करते हैं । कोई उनके कथ्य की तरलता पर मोहित होता है, तो कोई घटना विहीनता पर । कोइ उनकी भाषा पर मुग्ध है, तो कोई उनकी व्यंग्य–विधा पर । इससे स्पष्ट है कि परसाई के कथा–साहित्य में बहु आयामी विशिष्टता है । परसाई मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित है । उन्होंने अपनी कथाओं में पूँजीपति और निम्नवर्ग की कश्मकश पर प्रहार किया है तथा आम आदमी में संघर्ष की भावना को चेताया है । परसाई अपनी कहानियों द्वारा वर्ग – चेतना पर विशेष प्रकाश डालते है । वे समाज में पूँजीपति यानि शोषक वर्ग के खिलाफ लिखते हैं । परसाईजी मूलतः सामाजिक चेतना के रचनाकार है । इसलिए उनके कथा साहित्य में सामाजिक सन्दर्भो की प्रामाणिकता और चिन्तन की विश्वसनीयता बड़ी ताकत के साथ उजागर होती है और युग–सत्य सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों को हमारे सामने प्रस्तुत करती है ।

परसाई अपने अनुभवों को खुद भोगे हुए यथार्थ को और अपने आसपास मौजूद एक बहुत करीबी और आत्मीय दुनिया को अपने विचार का विषय बनाते हैं । जमाने की सारी समस्यायें परसाई की कथा–यात्रा के विभिन्न

विचार – बिन्दु है और मूलतः यह समस्यायें सामाजिकता या आर्थिकता है । निरन्तर एक ही दृष्टिकोण से और एक ही यथार्थ को उजागर करते–करते परसाई का गद्य कहीं कहीं कमजोर हो जाता है, लेकिन वह कहीं भी ऊबाऊ नहीं होता । शिल्प सम्बन्धी कोई बड़ा आग्रह लेकर चलना इस मामले में ठीक न होगा । क्योंकि उनका रचना–कर्म प्रबल मानवीय संवेदनाओं की जमीन पर खड़ा है । लोग यह जरुर कहते है कि यह मानवीय संवेदना परसाई के वामपंथी सोच का परिणाम है, लेकिन ''वसुधैव कुटम्बकम'' वाले भारत में यह मानवीय संवेदना सामाजिक परिस्थितियों की सहज उपज है । इसलिए हमे यह स्वीकार करना ही होगा कि परसाई का रचनाकर्म लेखकीय चिन्ता का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है ।

परसाईजी सामाजिक बुराइयों और जातिवादी रुढियों के खिलाफ एक लम्बी लड़ाई लड़ते हैं और प्रत्येक स्तर पर होनेवाले अन्याय तक पहुँचाते है । वे नये जाति–वर्गहीन समाज की रचना का सत संकल्प लेकर चलते है और जन सामान्य की हित–चिन्ता उनका मूल लक्ष्य है । परसाई यथार्थवादी कथाकार हैं, तो जीवन की सच्चाईयों को उजागर करनेवाले व्यंग्यकार भी हैं । व्यंग्य की दृष्टि की निरन्तर परिपक्वता ने उन्हें जीवन का एक ऐसा वैज्ञानिक किन्तु मार्मिक व्याख्याकार बनाया है, जिसकी दृष्टि की परिधि में नितान्त दैनिक अनुभव से लगाकर अन्तर्राष्ट्रीय शीत–युद्ध की विकट परिस्थितियों तक शामिल है । उनका कथा साहित्य उनके बहुआयामी व्यक्तित्त्व का सबूत है । सामाजिक नवनिर्माण की अपनी विशिष्ट चेतना और रचनात्मक उद्‌देश्यपरकता परसाईजी पर एकरसता का आक्षेप जरुरी लगाती है, किन्तु रचना के उद्‌देश्य को देखते हुए यह स्तुत्य है कि परसाईजी की रचनायें जातिवादी, धनाढ्य, राजनेता और शिक्षित वर्ग के नैतिक एवं सांस्कृतिक स्खलन को उनके सम्पूर्ण घृणित परिवेश के साथ प्रस्तुत करती है । परसाईजी की दृष्टि, चिन्तनशक्ति तथा व्यंग्य शैली से शायद ही जीवन का कोई क्षेत्र छूटा हो । उनकी हर कथा के भीतर कोई न कोई उद्‌देश्य अवश्य समाया रहता है । उनकी कहानियाँ उनकी विचारशैली

की द्योतक है । परसाई एक प्रतिबद्ध कथाकार है । एक कथाकार अपनी कहानियों से किस तरह सामाजिक चेतना ला सकता है, इसका उदाहरण स्वयं परसाईजी है । सामाजिक चेतना लाने के प्रयास में परसाईजी ने जो यागदान दिया है, उसे देखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि परसाईजी का स्थान सफल साहित्यकारों में स्थित हैं ।

परसाईजी की अधिकांश कहानियाँ लघुकथाएँ एव ंउपन्यास मध्यम वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं । उन्होंने अपने कथा–साहित्य में मध्यमवर्गीय अनुभूतियों पर आधारित सन्दर्भो को ही उठाया है । मध्यम वर्ग के व्यक्ति की वैयक्तिक समस्याओं व उसके जीवन के घात प्रतिघातों का जितना सहानुभूतिपूर्ण चित्रण परसाई ने किया है उतना अन्य कथाकार ने शायद ही किया हों । अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में परसाई लम्बे संवादों का प्रयोग करने से बचते हैं । उनके यहाँ कथा सीधी गति से न बढ़कर छोट–छोटे खण्डों और वक्रताओं में बढ़ती और विकसित होती है । वे संक्षिप्त संवादों का प्रयोग करते हैं । इन संक्षिप्त संवादों में जो गहराई होती है, वह अत्यधिक प्रवाहपूर्ण और प्रभावी है । यहाँ उनकी कहानी–कला का उत्कर्ष दिखलाई पड़ता है । कम–से–कम शब्दों में हास्य–व्यंग्य के द्वारा अधिक–से–अधिक कहना परसाई की कलात्मक सजागता का परिचायक है । ऐसे ही परसाई के पास भाषा का अपना अलग संस्कार है । यही संस्कार उनकी विशिष्ट पहचान बनाता है । वे भाषा को एक माध्यमभर नहीं, सत्य को पाने का जरिया मानते है । इसलिए वे भाषा के प्रयोग में काफी सतर्कता बरतते हैं । परसाईजी शब्दों का अधिक प्रयोग नहीं करते । इस मामले में वे असाधारण लाधव से काम लेते हैं । वे शब्दों को बेहद सलीके से प्रयोग करते है । कम से कम शब्दों से अपनी बात कहने की कला परसाईजी जानते हैं ।

परसाईजी असंभवतः अद्वितीयता के लेखक नहीं, वे सम्भव सामान्यता के साहसी कलाकार है । उनके कथासाहित्य के इस विश्लेषण और मूल्यांकन के सन्दर्भ में यह उल्लेख करना जरुरी है कि कई बार बहुत छोटे से मुद्दे को,

जिसे हम प्रायः महत्त्वहीन मानकर टाल देते हैं, इन कथाओं में न केवल उठाया जाता है, बल्कि उसके बहाने प्रायः जीनव की किसी बहुत बड़ी अर्थ व्याप्ति तक उसे ले जाया जाता है । अर्थ व्याप्ति का यह विस्तार परसाईजी के व्यंग्य की अन्यतम विशेषताओं में से एक है । उनकी कहानियों में एक छोटी–सी दैनिक घटना, परिस्थिति, अन्तर्विरोधी भाव इतने दूर तक एक महान अर्थ को ढ़ोते हुए ले जाते है और अनुभव या विचार की जिस स्थिति अथवा जिस बिन्दु पर वे पहुँचते है कि उससे किसी भयानक सामाजिक विद्रुप का नंगा साक्षात्कार अथवा विचार की कोई बहुत उच्च भूमिका या किसी अन्तर्विरोध का मार्मिक उद्‍घाटन होता है ।

परसाईजी एक कथाकार की हैसियत से जीवन में जो कुछ महान और सुन्दर है, उसकी रक्षा करना चाहते हैं । वे ही संसार की सारी असुन्दरता का विरोध करने का साहस प्रदर्शित कर सकते हैं, जो मनुष्य के भीतर और जीवन में चारों ओर जो कुछ भी महनीय है, उसे बचा लेने को आतुर है । वे ही मनुष्य के अन्दर और जीवन में फैली क्षुद्रता के खिलाफ खड़े हो सकते है, (जो कुछ जीवन में विद्रुप है, उसके विरुद्ध होने का अर्थ ही है कि मैं असंगति असमानता के खिलाफ हूँ) जो मानव के सबसे चमत्कारिक गुण–जीने की उसकी सहज इच्छा का सम्मान करते है तथा जिजीविषा की महानतम शक्ति के विरुद्ध हिंसा और अमानवीयता का विरोध कर सकते है; जो मनुष्य को संवेदनशील देखने की इच्छा से भरे है, वे ही क्रूरता के विरुद्ध हो सकने का साहस प्रदर्शित कर सकते हैं । परसाई का कथा–साहित्य मनुष्य जीवन के सबसे महानीय तत्त्वों के पक्ष में, इस अर्थ में ही विद्रुप असंगति, क्रूरता और हिंसा का रचनात्मक विपक्ष है । परसाई समाज में फैली गन्दगी को साफ करना चाहते है, जिससे कि समाज भयानक बिमारियों की लपेट से बच सके, क्योंकि यही गन्दगी संक्रामक रोग फैलाने का कार्य करती है । परसाई यह कार्य केवल निबन्ध लिखकर भी कर सकते थे, पर उन्होंने कथा–साहित्य का सृजन किया, क्योंकि निबन्ध के अतिरिक्त कथा के माध्यम से परसाई अपने

विचारों को आम मानवी तक पहुँचाना चाहते थे । यही कारण है कि परसाई के साहित्य में कथासाहित्य का विशेष महत्त्व है । परसाई का कथा साहित्य इस जड़ हो गये परिवेश पर, इस मानवीय निराशा पर, लूट खसोट और भोग पर, किसान और मजदूर की दुर्दशा पर छात्रों की अराजकता और दिशाहीनता पर, धार्मिक पाखण्ड और शोषण पर, इंसानी रिश्तों की समाप्त होती गरिमा पर, गरीबी और भूख पर, अकाल और मौत पर, पूँजीवादी समाज रचना की बुराइयों पर और इससे पैदा सांस्कृतिक वैचारिक जड़ता पर निर्मित हुआ है । उनके कथा साहित्य का आधार हमारा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जगत है, जिसमें आज के मनुष्य का कर्म निषेध हो गया है और चारों ओर अँधेरा छाया हुआ है ।

अपने कथा–साहित्य में लोगों को उनके असली यथार्थ से साक्षात्कार कराने के लिए परसाई उन विकृतियों को उजागर करते हैं, जो आज की वास्तविकता है । उनकी कहानियों का महत्त्व एक इसी तथ्य में कहा जा सकता है कि हिन्दी कथा साहित्य में घनघोर रुमानियत के दौर में वही अकेले ऐसे कहानीकार नजर आते हैं, जिन पर इस रुमानियत का हल्का सा भी असर नहीं दिखाई देता । इसके विपरीत वे इस रुमानियत पर अपने तीखे व्यंग्य प्रहार करते हैं । यथार्थवाद का खुरदरा और पैना दृष्टिकोण एक क्षण के लिए भी धुँधला नहीं पड़ता । परसाईजी के कथा–साहित्य का कितना युगान्तकारी महत्त्व है, इस बात का पता इस तथ्य से चलता है कि ‘नयी कहानी’ धारा के दोनों चोटी के कहानीकारों – भीष्मसाहनी और अमरकान्त की सफलता का रहस्य भी बहुत कुछ व्यंग्य ही है । अन्य कथाकारों की अपेक्षा परसाईजी की अधिक सफलता और उच्चतर प्रतिष्ठा की एक वजह यह भी है कि व्यंग्य उनके गद्य में एक सहायक या गौण तत्त्व के रूप में नहीं, बल्कि उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण और कलात्मक पद्धति में घुला–मिला उनके मूलाधार के रूप में आता है ।

परसाई ने भारतीय समाज की वर्ग–विसंगति को पहचाना है और उसे अपने कथा साहित्य में खोल–खोलकर पर्दाफाश किया है । खूब उघाड़ा है तथा उसके मर्म स्थलों पर चोटें की है । इस दृष्टि से परसाई ने भारतीय जीवन–दर्शन की मार्क्सवादी मीमांसा की है । उसकी क्षुद्रतापूर्ण असलियत को निर्ममता पूर्वक सामने रख दिया है । परसाई के कथा साहित्य में प्रेमचंद की तरह विविधता और विस्तार भी है । लेकिन अन्तर यह है कि प्रेमचंद ने शोषण के दुष्परिणामों से भावात्मक हल निकाले है, क्योंकि प्रेमचंद के समय तक आस्था विद्यमान थी, जबकि परसाई की वर्ग दृष्टि परिपक्व उसी की अगली कड़ी है, अतः इन्होंने शोषण की व्यवस्था और उसके परिणामो का चित्रण आलोचनात्मक ढंग से किया है, जो युगानुरूप यथार्थवादी है । उनके कथा साहित्य के अध्ययन से एक सुखद अनुभूति यह भी होती है कि उनकी दृष्टि जीवन, समाज और आज की राजनीति में व्याप्त लगभग उन समस्त असंगतियों की ओर गयी है, जिससे आज का सामान्य जन पीड़ित और त्रस्त है ।

इस तरह परसाईजी का कथा साहित्य हमारे आसपास के वर्तमान जीवन का वास्तविक इतिहास है । इसमें छिपा हुआ जीवनमूल्य है, जो इसको केवल कथा कहानी के रूप में पढ़कर, मन बहलाव कर रख देनेवाला नहीं, वरन् वर्तमान और भविष्य के जीवन दर्शन का झरोखा बना देता है । कहने का तात्पर्य यह है कि परसाईजी का कथा–साहित्य फिल्मी या काल्पनिक नहीं, वरन् वास्तविक, यथार्थ और विश्वसनीय एवं तथ्य–सत्य की भावना से ओत–प्रोत है । इस कथा–साहित्य को पढ़कर हम अपने आसपास के जीवन को साक्षात कर सकते हैं । परसाईजी ने अपने कथा साहित्य द्वारा मानव समाज के कलुष और अशिव को क्षत विक्षत करने की भरसक कोशिश की है । व्यक्तिगत पारिवारिक, सामजिक जीवन के सभी क्षेत्रों से अनुभवों को बटोरते हुए, अपनी जागरुक और वैज्ञानिक विश्व दृष्टि द्वारा उन्हें एक तर्क संगत परिणति प्रदान करते हुए और अपनी प्रतिभा का उत्तरोत्तर विकास करते हुए कथा साहित्य के क्षेत्र में परसाईजी ने एक सिद्धावस्था प्राप्त कर ली है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि परसाईजी हिन्दी के सफल कथाकार हैं । परसाईजी ने हिन्दी लघुकथा को एक ठोस एवं प्रौढ रूप प्रदान किया है तथा हिन्दी कहानी एवं उपन्यास के परम्परागत दायरें को तोड़ा है । उनकी कथायें हिन्दी कथा–साहित्य के रुमानी दौर का अतिक्रमण करके जीवन की विडम्बनाओं का यथार्थ प्रस्तुत करती है । परसाईने अपने कथा साहित्य में आम मानव के जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति के नये आयाम निरुपित किये है । इसीलिए उनका कथा साहित्य विशिष्टता की सीमा तक कथा साहित्य की प्रचलित धारा से अलग है । कथ्य के साथ शिल्प के स्तर पर भी जो प्रयोगधर्मिता परसाईजी ने दिखाई है, उसे हिन्दी कथा साहित्य की उपलब्धि माना जा सकता है । निर्विवाद रूप से यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि यह परसाईजी की लेखकीय प्रतिबद्धता का ही प्रमाण है कि उन्होंने अपने लेखन से हिन्दी कथा–साहित्य को समृद्ध ही नहीं किया, वरन् एक नयी दिशा भी दी है ।

❀❀❀

परिशिष्ट

परिशिष्ट

(१) आधार ग्रन्थ

१. परसाई रचनावली–१ : सं. कमला प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८५, प्रथम संस्करण

२. परसाई रचनावली–२ : धनन्जय वर्मा इत्यादि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८५, प्रथम संस्करण

३. परसाई रचनावली–३ : धनन्जय वर्मा इत्यादि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८५, प्रथम संस्करण

४. परसाई रचनावली–४ : धनन्जय वर्मा इत्यादि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८५, प्रथम संस्करण

५. परसाई रचनावली–५ : धनन्जय वर्मा इत्यादि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८५, प्रथम संस्करण

६. परसाई रचनावली–६ : धनन्जय वर्मा इत्यादि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८५, प्रथम संस्करण

७. ऐसा भी सोचा जाता है : हरिशंकर परसाई, वाणी प्रकाशन दिल्ली, वर्ष १९९३, प्रथम संस्करण

८. ज्वाला और जल : हरिशंकर परसाई, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, वर्ष २००३, प्रथम संस्करण

९. तुलसीदास चंदन घीसे : हरिशंकर परसाई, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, वर्ष १९८६, प्रथम संस्करण

१०. हम इस उम्र से वाकिफ है : हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८७, प्रथम संस्करण

११. कहत कबीर : हरिशंकर परसाई, नेशनल पब्लिशींग, दिल्ली, वर्ष १९९४, प्रथम संस्करण

१२. जाने पहचाने लोग : हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष १९९३, प्रथम संस्करण
१३. आवारा भीड के खतरे : हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९९८, प्रथम संस्करण
१४. हरिशंकर परसाई–चुनी हुई रचनाएँ भाग–१ : सं. कमलाप्रसाद प्रकाशचन्द दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष २०००, प्रथम संस्करण
१५. हरिशंकर परसाई चुनी हुई रचनाएँ भाग–२ : सं. कमलाप्रसाद प्रकाशचन्द दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष २०००, प्रथम संस्करण
१६. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ : हरिशंकर परसाई, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष १९८७, चतुर्थ संस्करण
१७. और अंत में : हरिशंकर परसाई, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९९८, प्रथम संस्करण

(२) संदर्भ ग्रंथ

(अ) हिन्दी संदर्भ ग्रंथ

१. तुम्हारा परसाई : कांतिकुमार जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष २००४, प्रथम संस्करण

२. आँखन देखी : सं. कमला प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८१, प्रथम संस्करण

३. युगसाक्षी : हरिशंकर परसाई, सं. कमला प्रसाद, रमाकान्त श्रीवास्तव, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, वर्ष २००१, प्रथम संस्करण

४. हरिशंकर परसाई – व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डॉ. मनोहर देवलिया, साहित्यवाणी, इलाहाबाद, वर्ष १९८६, प्रथम संस्करण

५. हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई : डॉ. मदालशा व्यास, विश्वविद्यालय, वाराणसी, वर्ष १९९९, प्रथम संस्करण

६. हिन्दी व्यंग्य साहित्य : डॉ. ए.एन.चन्द्रशेखर रेड्डी, शबरी संस्थान – शाहदरा, दिल्ली, वर्ष १९८९, प्रथम संस्करण

७. व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य : डॉ. अर्चनासिंह, साहित्य संगम, इलाहाबाद, वर्ष २००१, प्रथम संस्करण

८. हरिशंकर परसाई और नागफनी की कहानी : डॉ. नन्दलाल कल्ला, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, वर्ष २००२, प्रथम संस्करण

९. हरिशंकर परसाई – व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि : प्रो. राधेमोहन शर्मा, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९९२, प्रथम संस्करण

१०. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. माधव सोनट हक्के, विकास प्रकाशन, कानपुर, वर्ष २०००, प्रथम संस्करण

११. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा,अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९९४, चौथा संस्करण

१२. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य : डॉ. महेन्द्र भटनागर

१३. हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष : सं. डॉ. रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष १९८४, प्रथम संस्करण
१४. द्वितीय महायुद्धोतर हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजपाल एन्ड सन्स, दिल्ली, वर्ष १९८२, प्रथम संस्करण
१५. विवेक के रंग : सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, वर्ष १९९५, प्रथम संस्करण
१६. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास : राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, वर्ष १९८६, पंचम संस्करण
१७. हिन्दी साहित्य का प्रवृति परक इतिहास : रामप्रसाद मिश्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, वर्ष १९९०, द्वितीय संस्करण
१८. समकालीन हिन्दी व्यंग्य – एक परिदृश्य : सुदर्शन मजीठिया, शांति प्रकाशन, आसन रोहतक, हरियाणा, वर्ष १९९२, प्रथम संस्करण
१९. परसाई की सृजनात्मकता : डॉ. मालमसिंह, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, वर्ष १९९९, प्रथम संस्करण
२०. हिन्दी के प्रतिनिधि कहानीकार : द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, वर्ष १९८५, प्रथम संस्करण
२१. हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ : जयकिशन खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, वर्ष १९८५, प्रथम संस्करण
२२. साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, वर्ष १९८७, बीसवा संस्करण
२३. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : श्री गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९९४, पंचम संस्करण
२४. कहानी स्वरूप और संवेदना : राजेन्द्र यादव, नेशनल पब्लिशींग हाउस, नई दिल्ली, वर्ष १९९८, प्रथम संस्करण
२५. आठवे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य : डॉ. रमेश देशमुख, विद्या प्रकाशन, कानपुर, वर्ष १९९४, प्रथम संस्करण

२६. आठवें दशक की हिन्दी कहानी : डॉ. प्रतिभा धारासूरकर, विकास प्रकाशन, कानपुर, वर्ष १६६८, प्रथम संस्करण
२७. परसाई की दुनिया : सं. मनोहर देवलिया, साहित्यवाणी, इलाहाबाद, वर्ष १६८५, प्रथम संस्करण
२८. हिन्दी साहित्य – समीक्षा : डॉ. रामनिवास गुप्त, आधुनिक प्रकाशन, भौजपुर दिल्ली, वर्ष २००१, प्रथम संस्करण
२६. नई कहानी प्रकृति और पाठ : श्री सुरेन्द्र
३०. नये साहित्य का तर्कशास्त्र : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, द. मैकमिलन कंपनी ओफ इन्डिया लि., वर्ष १६७५, प्रथम संस्करण
३१. कथाकार निर्मल वर्मा : श्री नरेन्द्र इष्टवाल, श्याम प्रकाशन, जयपुर, वर्ष २००१, प्रथम संस्करण
३२. कबीर : डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाराणसी, वर्ष १६६२, प्रथम संस्करण
३३. रिमझिम : डॉ. रामकुमार वर्मा , साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, वर्ष १६५३, प्रथम संस्करण
३४. व्यंग्य क्या ? व्यंग्य क्यों ? : डॉ. श्याम सुन्दर घोष, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, वर्ष १६८३, प्रथम संस्करण
३५. हिन्दी साहित्य में – हास्यरस : डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, वर्ष १६५७, प्रथम संस्करण
३६. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य मूल्यांकन : डॉ. सुरेश माहेश्वरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, वर्ष १६६४, प्रथम संस्करण
३७. हिन्दी लघुकथा स्वरूप एवं इतिहास : रमेशकुमार, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष १६८६, प्रथम संस्करण
३८. लघुकथा सर्जना एवं समीक्षा : डॉ. सतीशराज पुष्करणा, अयन प्रकाशन – नई दिल्ली, वर्ष १६६०, प्रथम संस्करण
३६. साहित्य साधना की पृष्ठभूमि : श्री बुद्धिनाथ झा 'कैरव'

४०. लघुकथा बहस के चौराहे पर : श्री सतीशराज पुष्करणा, विवेकानंद प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष १९८४, प्रथम संस्करण
४१. ताकि सनद रहे, रामनिवास 'मानव' : आरती पब्लिकेशन, अम्बाला, वर्ष १९८२, प्रथम संस्करण
४२. तत्पश्चात : सं. सतीशराज पुष्करणा, विवेकानंद प्रकाशन, पटना, वर्ष १९८६, प्रथम संस्करण
४३. हिन्दी कहानी के सौ वर्ष : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, मधुवन प्रकाशन मथुरा, वर्ष १९८७, प्रथम संस्करण
४४. हिन्दी साहित्य आठवाँ दशक : डॉ. शंकर पुणताम्बेकर, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष १९८४, प्रथम संस्करण
४५. हस्ताक्षर : डॉ. पुष्पाबंसल, हस्ताक्षर प्रकाशन कुरुक्षेत्र, वर्ष १९८२, प्रथम संस्करण
४६. हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृतियाँ : डॉ. नामदेव उतकर
४७. समकालीन हिन्दी व्यंग्य उपलब्धियों के नये आयाम : डॉ. भगवानदास कहार, दर्पण प्रकाशन, नडियाद, वर्ष २००१, प्रथम संस्करण
४८. हरिशंकर परसाई के व्यंग्यो में वर्गचेतना : कु. आभाभट्ट, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९९४, प्रथम संस्करण
४९. देश के इस दौर में : डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, वर्ष १९८९, प्रथम संस्करण
५०. हिन्दी व्यंग्य विधाशास्त्र और इतिहास : डॉ. बापूराव देसाई, चिंतन प्रकाशन कानपुर, वर्ष १९९०, प्रथम संस्करण
५१. हिन्दी उपन्यास सौ वर्ष का सफरनामा : डॉ. अब्दुर्रशीद ए. शेख, पार्श्व पब्लिकेशन अहमदाबाद, वर्ष १९९९, प्रथम संस्करण
५२. हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ : डॉ. नामदेव उतकर, चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर, वर्ष २००२, प्रथम संस्करण

५३. उपन्यास का स्वरूप : डॉ. शशिभूषण सिंहल, आधुनिक प्रकाशन दिल्ली, वर्ष २००३, प्रथम संस्करण
५४. नयी कहानी की भूमिका : कमलेश्वर, अक्षर प्रकाशन दिल्ली, वर्ष १९६६, प्रथम संस्करण
५५. हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार : डॉ. स्मिता चिपलूणकर, अलका प्रकाशन कानपुर, वर्ष २००१, प्रथम संस्करण
५६. हिन्दी साहित्यकोश : सं. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, वर्ष २०००

(ब) अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ :

१. एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका : गार्नेट, खण्ड–१६, वर्ष १०८६
२. द आईडिया ओफ कामेडी : जार्ज मेरेडिथ, लंडन, वर्ष १९४३
३. सटायर : मैथ्यू हागर्थ, लंडन, वर्ष १९७०
४. इंगलिश सटायर : जेम्स सदरलैंड, लंडन, वर्ष १९५८

(क) पत्र–पत्रिकाएँ

१. लहर, अजमेर
२. आगमन, रेवाडी
३. हरिगन्धा, चण्डीगढ
४. वनप्रिया
५. लघु आघात, इन्दोर
६. कुरुशंख, कुरुक्षेत्र

❀❀❀